



भीरि

महाकवि 'नददास' प्रणीत

# भ्रमर-गीत

( टिप्पणी भीरु ममभाय-घोलक सृष्टिर्यामटित )

मपाक :

जवाहरलाल नेहरू

रघोपरा

प्रकाशक :

गीताप्रेस गोरखपुर

सर्वक कथा प्रकाशक  
संस्कृत वाक्य  
गीताप्रस, गोरखपुर

मूल्य १ ५० ( एक रुपया पचास नये पैसे )

पता—गीताप्रस, पा० गीताप्रस (

## मपादकीय

हिंदी जननी प्रबन्धावा-महाद्वय" में अमर-रहित वा "भैरव-गीत" रूप काव्य-मूत्रनर्क परंपरा उमर श्रीमद्भागवत महापुराण" में भारी त्रिमक प्रति—

'निगमकल्पतरुर्गलित फलं

गुरुमुखाद्मृतद्रयसयुत ।

विषल भागवत रसमासय

मुद्गहो रमिका भुविभावुक्त्वा ॥

—मा १ १ ३।

श्रेयं साकानंददायिनी अनेक मरम-सूक्तिर्वा रनुनि-रूपमें कही-मुनी जाती है । अतः हिंदी-महाद्वयमें सम्भृतसे उचार किया गया यह महाद्वय शैलीक रूपमें उस मूलमें कही अथिक्त कल्प-मूत्रा यह विम्वरेह कहा जा सकता है । अन्त-कविपोंने ता इस हीरे त्रमे उचरते विषयमें अपनी अपनी प्रतिभा-द्वारा 'अर चौद' ही मंगा दिए । उदाहरणक लिये यह धीमंददायिनी" प्रणीत 'अमर वा "भैरव-गीत" प्रस्तुत है । यों तो इस श्रुत्य विषयपर अष्टाव' क मुप्रसिद्ध माहाद्वय-मूत्र मूरदायिनी" एवं "परमानंददायिनी"क मय-मय शैलि-कालके भीर भी महात्मन्व कविपोंने त्रिमकी रूपमें वैगमियोंपर नहीं गिनायी जा सकती। कल्प कलावी है इस पावन विषयसे उहोंने कमकया भी लूट है किन्तु श्रेय धीमंददायिनीन मुक्तगालक तप पंखी गगरमें सम्पूर्ण भाषोंका 'आगर' भग है अता हमरे कविपोंने नहीं बन पड़ा है । मय ता यह है कि पर विरह-विम्वित-काव्य-विषय धीमंददायिनीका मरममर्था मुपाधेश्वर ब्रह्मपाधे काकर मुगदित-रूपमें इतना ऊँच उठा हुआ है कि उचकी ममगरी कोर्ह भी कवि नहीं कर सता है । तभी ता माहाद्वय-ममर्जीव भारके प्रति—

और कवि यक्षिणा नन्ददास जक्षिणा ।

कहा है । बाक्यमें महाकवि श्रीबंदासजी सङ्गीत और भाषाके मन्त्र जक्षिणा ही थे ।

### “श्रीनन्ददासजी-कृत ग्रन्थ”

महाकवि श्रीनन्ददासजीकृत निम्नलिखित ग्रन्थ देखने और सुननेमें आते हैं— पौष मंत्ररिषी ( रसमञ्जरी चिरहर्मञ्जरी रूपमञ्जरी अनेकप्रथमञ्जरी काममञ्जरी ) रासपञ्चाव्यापी अमर-गीत हक्सिजीमंगल, मातहत वसमसङ्घ पूर्वाह्न ( बबुचाद् ) इवामसगङ्गा सिखातपञ्चाव्यापी शीवर्षनक्षत्रीका जगन्नीका शानक्षीका बेलुमीत सुवामाचरित्र हृष्यमंगल, स्वानमञ्जरी वास्तकेत पुराण प्रबोध चन्द्रोदय नाटक पूरुमञ्जरी शशीभगा विज्ञानार्थ प्रकाशिका द्वितीयदश ( राजनीति द्वितीयदश—भाषा ) बार पुष्टक पदाक्षरी । इस नामाक्षरीमें—पौषी मंत्ररिषी रासपञ्चाव्यापी अमर-गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और अनेक भजनोंसे अनेक बार प्रकाशित भी हुए हैं । बाकीके आपके ग्रन्थ-रत्न यम-तत्र बिलेरे हुए पक्ष के अर्धे मंदाक्षरी बड़े परिश्रमसे मंजूर किया है । अतएव इत सभी रत्न रचनाओंमें भाषाका आदित्य कहनेका उग विषयानुसृत कथाबर्णनी उद्यम “विषयानुसृतविचारियोगम्—रमणियनि ” अर्थात् रसोक्त मरस रूप मञ्जरी रमि-अज्ञाना-इत्यादिका उद्भव और विचार आपके पद-पद और शब्द-शब्दसे पूर्य पड़ता है ।

### “कवि-जीवनी”

अहम्रपके श्रीसूरदास इत्यादि ऋतःत्तरनीच महाकवियोंकी जीति भाषा-सङ्घाद श्रीनन्ददासजीका ‘जीवन-चूना’ भी अभी तथ्य रूपमें सामने नहीं आया है । यह ग्रन्थके पुंशके पृष्ठोंपर लेक रहा है फिर जी श्रीगोकुलदासजीकृत कर्ता तथा उसपर श्रीहरिरायजीकृत भाष प्रकाशिका” टीकाके अनुसार कहा जा सकता है कि आपका ग्रन्थ ‘मीरो’ (पुराण-प्रसिद्ध—शुद्धरत्न) के पाम रामपुरा ग्राममें पं आम्भारामजी मुक्त सिनाथ ब्राह्मणके घर में “१५ वि ” क सम्पत्त हुआ था

भार कीस्यप्रवेश ( निबन्ध ) 'स०—१९०२ वि० में गोवर्धन ।  
 सर्वदाव-प्रवेशका समय भी स०—१९ १ वि० " कदा-मुदा जाता ह ।  
 अस्तु ये शब्दके अन्मादि-सूचक संबन्ध जब आपकी रचनाओंका अंतर-  
 अनुशीलन करते हैं तो वे कुछ उचित प्रतीत नहीं होते—अगो-वीठ इच्छे-मे  
 नभर आते हैं किन्तु अन्मादि-समय कुछ ऊपर ऊपर भके ही हो पर यह  
 निश्चित-सा है कि आप "सोती—रामपुर" के निबन्धी सम्पन्न शास्त्रण  
 आचार्यजीके पुत्र भार्गव प्रसिद्ध साहित्य-शास्त्रि तो तुलसीदासजी तथा  
 आपके पुत्र "कृष्णदास ये-इत्यादि । हम वहाँ उपर्युक्त अन्मादि  
 सूचक विवरणके साथ आपके पुरातन प्रसिद्ध "धीमादाशब्दी तथा  
 "धीभुवदाशब्दी की व सरस सुन्दरिणी देविका स्तोत्र संबन्ध नहीं कर पा  
 रहें हैं जो उन्हींनि धीमदाशब्दीके अन्मादिक प्रति ही नहीं उनके  
 हाथके प्रति भी कही हैं जैसे—

† य एव-शास्त्र-प्रति-संभार-रचनाम मगर ।

गग कि गग-शुक्ति भक्ति-सन्धान गग ।

प्रभु गग-शब्दे गुणम गगपु शक्ति-निदान ।

गग भुवदा संबन्धित गग-प-जन शक्ति ॥

गग-प्रद्वय गगद पति-प्रम गग मे पति ।

प्रद्वय प्रम निधि गगि गग-गु-न-मन-गग-गग ॥

— गग-गग

गग-गग गग गग गग गग गग गग ।

गग गग गग गग गग गग गग गग ।

गग-गग गग-गग गग गग गग गग गग ।

गग गग गग गग गग गग गग गग ॥

गग गग-गग गग गग गग गग गग ।

— गग गग गग गग गग गग गग गग ॥

— गग-गग

इत्यादि । धीमदाशब्दीय गग गग-संबन्धित प्रति पर गग गग

बह बह कि जैसा ऊपर लिख आये हैं—“भाप ( नन्दनाम ) प्रसिद्ध “श्रीराम-चरितमालस”-रचयिता भक्त-प्रवर “गा तुलसीदासजी”के छोटे भाई थे।” इस बातकी पुष्टि भक्तमाल—रचयिता नामादासजीसे आदि लेकर अन्य सभी भक्त-जीवनी लेखकोंने की है। श्रीगाकुलताव-कृत ‘वार्ता’ तथा उसपर टीका-कर्ता श्रीहरिरावजी मी यही कहते हैं। साथ ही ये सभी पुस्तिकर्ता श्रीनरदासजीके सम-साम्यिक मी हैं जिनके उन्हें अपनी कल्पनासे सुलभता हुआ आख्या संकृषित हृदय साहित्यिक इसे स्वीकार नहीं करता। क्यों ? इसका समुचित उत्तर उसके पास नहीं है। वह इन मत्प-नमुक्त साधियोंको न मानकर बिना आचारके अपनी अमत्य-मात्स्यताके प्रथम देता चकर जा रहा है।

### “अमर-गीत”

अमर-गीत एक विरह-विभूषित काव्य-कथाका विषय है किंतु उसे विशेष-रूपसे मत्प, शृंगार और कलम रमोका रम्य आगमर विगुण-सगुण उपसना-तत्त्वोका प्रभावसम्बन्धी विस्तृत सागर तथा ज्ञान-भक्तिका मध्य भंडार मी कहा जा सकता है। कारण भक्त-रचयितोंने जहाँ इस ‘नेत्र कुसुमा’ मिश्रणके सहारे “श्रीकृष्णममसिद्धिः -रूप ‘मुक्ति-वस्तुत्व’ जमे मदान् पदार्थको दुकराकर अपने उपात्म्यमे “विरहीविकीर्षे’ की वाचक की है वहीं ‘नीति-रचयितों’ ने इस विषयके द्वारा शृंगार रम्यके पूर्व बनाने-का अत्युत्तम उपक्रम किया है। अस्तु, जैसा पूर्वमें कहा है इसका मूल-कथामक ‘श्रीमद्भागवतमें’ इस प्रकार है—

‘अजमें जब अपनी जनेक रम-भाद-अरी करिज लीकरें रचकर—  
 “जते चाँदककाः पुनः कृष्णस्तु मगदान् स्वयं” हर कर्मक कुम्भकेपर  
 भद्रके साथ मिथुर भाग्यवत् हो मधुरा पधारे और कंमारिक-मसुरोंका  
 संहार कर अपने माता-पिता ईश्वरी-अमुरेवतीको बही-गृहस पुत्र।  
 महाराज उपमेनके पुनः मधुराकी राजगरीपर बैठाक दिया तब आनेमे  
 विसुहे उन प्यारे ब्रजवास्तिनी तथा “श्रीमपुत्रा-रमरूपी’ प्रक-व्यनाभोकी  
 वाद आबी जिन्होंने—

“संस्यस्य सर्वविष्यांस्तप पाप्मूखं”

इस मूख-संज्ञके विरंतर अपकर अपने बीबनोंको अपपर उस्तार कर दिया था अतः तद्भव-विशेष होकर भावने—

“भूमीना प्रररा मंभी कृष्णस्य दयित सभा ।

गिप्या वृहस्पत सायाहुदया बुद्धितत्तम ॥”

—मा १ १६ १

जो उन लोगोंके सम्भवकार्य था अपने इस निर्गुणकारी गये मन्त्राको अपने-ब्रैया रम-मन्त्रागा बनाने कीरे ज्ञान-गर्भीके उद्भवको पुनीत प्रसीमें परिणत करनेके लिये मन्त्र भेजा । अतः मन्त्र पहुँचकर भीउद्भवने पहले बाबा भीर्मन् और माता बरपेश तथा स्वस्-वालोंके साथ मिल कर उन्हें भगवान् कीकृपाका प्रिय संदेश दिया । उसके बाद आप मन्त्रवाक्योंमें मिल कर और उन्हें आप मन्त्रमन्त्रार्थ ज्ञानार्थके कवच काफेको प्रिय-संदेशकी मिमरीमें मिस्कर विन्मना खाहा तो बात बड़ गरी फलम्बरूप ज्ञान और भक्तिका मपर्वमय संवाद कर पड़ा । जब वह जय-वराजपकी मुकामें इपर-उपर लुहक ही रहा था कि कहींसे उदता हुआ एक रम-कपड भँवरा जो अपने रूप-गुणोंके कारण गोरियोंको कृष्णक समान जैसे—

भेरी तन घनस्वामि स्वामि घनस्वामि उतै सुनि ।

नेरी तुर्जन सुनि मधुप यत मधुर मुरस्ति-सुनि ॥

एत-नेम तन इति-क्यै उत ईताम जाद ।

विनि क-विन्ती दाउ इमत एकै रूप मुखा ॥

—सुगक रस के कथा

—वहाँ का पहुँचा और बिह-बसुलित मन्त्र-यन्त्रियोंके अरुम-कमल-दृक्क समान पाद-वर्णोंपर गुन गुन कगता हुआ बैठने अपना उन्हें ज्मनेकी ईश्वरान कगा तो प्रेम-रम-विद्वन्म गोप-कल्पनाओंके भीमुख गुरु गये तथा इस रूपभित्त धमरकी ओरमें छिपे प्रेमक हीन रहनेजाले मधुरिपा कृष्णके प्रति ओ-ओ लीने फिर भी मधुरमे मधुरता तीर छोड़ गये वही “धमर”



वा 'मैंबर गीत' के विषय रूपमें बंदूबीच बना । अस्तु - 'अधिवा  
 नंदवासरीने इस भागवत-अर्पित शृंगार-रससे सिंघिन मण्डि वा प्रेम अथवा  
 श्रावके विस्तृत शौचमने श्रावी उद्वह और प्रेम-योगिनी गोविचौ-इरा  
 किर्तुन-मगुनकी गोरीसे लेके गये इस अथवाकी धरने इरसे अथवाका भार  
 उसे वैद्व सजावा—तर्क-वितर्कके इववहारी अटकारोंसे तोर-तोकर मपूर्ण  
 सरस अणत इस अयोनी भौतिते प्रस्तुत क्रिया कि जन जनके सुटीके  
 इववौका हार बन गया ।

### संपादन कथा

इस प्रेम कपटे अटपटे" मध्य भावोंसे मेरे अमर-गीत -संपादन  
 प्रकाशककी भी अनेक दुष्प्र-सुखोंमें पत्नी एक विसद कथा है जिसे फिर  
 प्रेक्षित प्रकाशकके समय कहना नहीं चाहता फिर भी उस गौड-गरीबी  
 अकम-कथाके प्रति इतना तो अचरम कहा जा सकता है कि 'अभिर्नवासरी'के  
 इस युगकाक्यके प्रथम प्रकाशन अत्र दो पुर्णोंके बाद हो रहा है । प्रेम  
 कपी वचों इव-उव अनेक माय्य किर्तनोंके करकमकीमें लेकती हुई  
 उनके मय्यिचरोंसे भी अकहण और पलित होती रही । इन माय्य  
 महासुभाओंमें पहलेके 'बान्जी' और उनके 'राजकिं' श्रीपुष्पाचमदासकी  
 ] ईडन, श्रीहरिमाऊकी उवाप्याव पंडितप्रवर श्रीसावरमठ शर्मा तथा  
 वा श्रीवासुदेवशारकी अत्राक प्रमुक हैं अता संवाक—

अग्ने चारि महामागः महाया प्रथ-निर्निवै ।  
 ते सर्वे मुप्रपीदथ नाम्ता न स्मृता ममा ॥

क साथ इनका अति अर्थी है । साथ-ही परम मल विद्वद्वर श्रीहनुमान  
 प्रपादको पोशर अंगक—'अथवा' किन्तु हम जैसे भुत्र लोग प्रेम-अप  
 अथवा" अकनके सिधे 'मार्जी' कडा करते हैं के भी अति आभारी हैं  
 किन्तु इन अनेक-वार कद्व उकाहनोंके सहकर भारतके सुप्रसिद्ध प्रम—  
 'गीताप्रेम'में सुदित करा सुदर रूपमें प्रकाशित किया है ।

संपादनकी आचार-भूत धीमीं इन अतिम तथा सुदित प्रतिवींका  
 केका अरस भी अत्र प्रकाशकके समय स्मृति-परम्ये औपम्य हा गया ह

जिनका हमें स्मृति है। न मास्टर किने म्यानीमे भूमरूप इत्यन्वित तथा  
 मुद्रित प्रतियाँ एकत्रित की गयी थीं। उनमें तीन ग्रंथ—  
 भरतपुर-राज्य पुस्तकालयकी सबसे प्राचीन और सुदृढ़ प्रति तथा  
 वा त्वाकृष्णदास संपादित 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' में धार या पालमुकुंद  
 गुप्त संपादित 'भारत-मित्र' दत्त कलकत्तासे प्रकाशित प्रतियोंको नहीं  
 भुक्तया जा सकता। अंतिम दोनों धारणोप मुद्रित प्रतियाँ सबभाषाक  
 साक्षरमे—ग्याकरलय प्रकाश ई फिर भी नमन-योग्य हैं क्योंकि धार  
 कागजिसे इसे मुद्रणका अदृष्ट विस्मयक विहृत-रूपमें नहीं —अतिरिक्त रचना  
 है। साध-ही संपादक उक्त महानुभावों कवियों तथा प्रबंध-रचयिताओंका भी  
 बहुत-बहुत ध्यान है जिनकी योग्यतांत पत्रावलिपों एवं विद्वत्ताभरे  
 विचारोंसे विभूषित कर इसे इतना पतुवित किया गया है। और अंतमें  
 यह भी कि मुद्रणमे पूर्व प्रम-कापी देखनेमें न भाषी सा न भाषी।  
 प्रक भी विरापकर अगोचर हीन कर्मोंका जिनमें मूल उपा है तप देरनमें  
 आया जब संपादक अधिक जग या अतः उमने गन्तियोंका रह  
 कावा कोई आशय प्रक नहीं। उदाहरणके लिए गृ — ३५" पर  
 मूलकी अंतिम पंक्ति 'सुनीं दिद-कादिने' के स्थानपर "सुनीं दिद-स्यदिने"  
 तथा गृ — ८३ पं ११—१२ धींपी" के स्थानपर— 'नैधी' तथा  
 द्दमी अंतिम गृ०—२३९ प — ० पर द्वै त्रिगुनी क स्थानपर द्वै  
 त्रिगुनी" छत्र गया है। इस प्रकारकी और अंतियों भी होना संभव है  
 अतः संपादक उनके सिधे क्षमा प्रार्थी है विप-पादक उन्हें उचित रूपमें  
 परिष्कृत कर लेने कमी आशा है।

मथुरा  
 'शाम-भयमी'  
 संवत् २०१० वि०

—जवाहरलाल चतुर्वेदी

## अनुक्रमणिका

उद्घृत पद-सूची-१ संस्कृत	१
२ हिंदी	१७
३ उर्दू	२७
१-अमर-गीत ( मूळ )	१
२-टिप्पणी और समझने-योग्य शक्तियों	४१
३-परिशिष्ट ( क )	
अमर-गीत : भीमदूमागवात्	१४९
४-परिशिष्ट ( ल )	
अमर-गीत भीसूरदास	१७१
५-परिशिष्ट ( ग )	
शुक्ति-समूह : मत्त शिक्षाए	१७८



---

## उद्धृत पद-सूची

---



भीहरि

# उद्धृत पत्र-सूची



“संस्कृत”

	शृङ्खला-संख्या		शृङ्खला-संख्या
अ		अनपद्य-शुचिर्दश	१६७
अहं पञ्चपि सद्योऽह्निरे अयनिधे	११७	अनिर्यञ्जनीयं प्रेमस्वरूपं	५८
अंगानि मे दहतु	१४	अनुदिनमसि तीनं	२९३
अंगेर्बेदेवर्भकारैः	१२८	अम्बदेबाहुर्विगया	२१२
अपन्नाम प्ररिगमि	२१२	अर्चावामेव हरये	१६७
अंशानो मे प्रकाशति	२८७	अपागुत्सस्तपमि स्पू	९६
अद्यमो भीरो अमृत	५	अभुष्टयेन मुहयो	२९५
अदहतु इडिमात् आवने	११४	अद्यबेष रमा नादये	४९
अगसं तित्तमं चैव	१४७	अम्मत्प्रपागलमम	२९४
अय शोपनिपष्टम्बो	१८	अम्य महता भूतस्य	११०
अय गापीरमुक्याय	३३	अर्दं किञ्चो देवानो	२८२
अधस्तां मन्दिबिद्यागा	३०	अहमिडा दि देवाना	२८२
अगतो मन्दिं इनायास्याम	३५	भा	
अगावरात् भगरान्	७३	आकाशवागीमितपुंडरीकं	१६
अद्वैतं मुगदुभय	६	आपुंनितं कमण्डलं	७०
अदृश नयभूताना	१६०	आगमिभ्यस्वदीर्घेण	७९
अथा न धीयत	१४	आग्नेयमहमं चैव	१८१
अभाभूते दस्यद् प्रगहितं	०१७	आहारीयं गुणात्प्रा	१६८
अभाभूते द्यधग	०१७	आत्मानं गौरदद्	३१
अनम्यपरा द्विरिथा	१६६	आत्मा कण्ठरे पने	१७०

	पृष्ठ-संख्या		पृष्ठ-संख्या
आत्मनिक्रमुभ्यनिवृत्ति	१५१	ए	
आसामहो चरचरेणुजुया	१५१	ऐश्वर्यस्य समग्रस्य	२ ६
इ		ओं	
इंद्रः सुरर्षिभिः ताक	२८३	ओंईशावात्यमिदं	११
इच्छाद्वेषप्रवृत्त	१७९	क	
इति शेष्यः प्रगावन्त्यः	२८८	कर्मणा चापते सर्वे	१५४
इति संस्मृत्य सस्मृत्य	६७	कर्मैव हि संसिद्धिः	१६४
इत्वं कर्मगती गच्छन्	१५९	कर्मण्यकर्म या पत्नेद्	१५८
इष्टे त्वास्तिष्णे रामा	२ ९	कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं	१८८
ई		कर्मनिर्हारमुद्दिश्य	१५४
ईश्वरे तदधीनेषु	१६७	कर्माणि कर्माणिः कुर्वन्	१५९
ईर्ष्याद्विघ्नसि नवन	७३	कर्माणि दुःश्लोत्रकर्माणि	१५९
ईर्ष्याद्विघ्नसि नवने	७२	कर्मेन्द्रियं तु पाप्मादि	१६२
ख		कर्मेन्द्रियाणि तयम्	१५३
ऊत्यादि प्रकृत्यं चैव	२ ६	कलिकर्मवरमककमन्	१९६
ऊदाखीनकदासीनो	२ ५	कान्तिमपुकरं हृद्वा	२४८
ऊदाखी देवभागस्य	४२	काम एव क्रोध एव	१५५
ऊषेपवर्गं सामीप्ये	१८	कामरहतबीर्दन्तो	१६६
श्रु		कुरु करे गुस्मेकमपाभनं	१९०
श्रुतेऽप्यं यद् प्रक्षिपेत्	२८७	कुर्वन्नेवेह	१ २
ए		कृपणकृतकृत्याह	१६८
एतन्मत समासिद्य	१८७	कृप्याभक्तनवा सिद्धा	१६५
एतन्मते तुनिष्पन्नं	८७	कृप्याय प्रणिरुपाद्	३३४
एतन्नरेव विद्यास्य	२८७	के कने एववाभ्युत्थि	२८७
एवं त्वां पर विद्यान्	१५९	केशं केचिन्नवाति	२८७
एव शोभेन साधुकर्म	१८७	केशान्कितानुपाति	२८५

केचो म्मरुद्रौ  
को ब्रह्मा ईश ब्रह्मः  
को ब्रह्मेति नमाज्जघत  
ग

पृष्ठ-संख्या  
२८६  
२८६  
२८६

अ

पृष्ठ-संख्या

अम्बुप्रसङ्गास्मि  
अग्लान्छादवति मायवेनि  
आह्वयं धिया हरात  
आनाम्पदं शेषधि  
कुण्डे मुद्रासमुत्पन्नं प्र  
उपेयानां स्मितहानिने

१४५  
२१४  
१२४  
२११  
५३  
७२

त

गमयत्यस्तमभेद  
गर्भं सिद्धता म्मायता  
गां वेदकलायां वाणी  
गात्रं वपु नन्दनन घरीर  
गार्पत्य प्रियवर्माणि  
गुणमहाग्भ्यामस्मि  
गुणरहितं कामनाधरितं  
गुणाः सुवन्ति कर्माणि  
गृहीत्वावीर्यैर्बैरवां  
गोप्यन्तु धुक्तयो  
गोभिरेव स्तो वया  
गोभिर्गोमीमिरेण्यस्त  
गोत्री विधा गुण भश  
ग्रीनादित्य बस्योरे  
ग्रीरेषा तु वतो पाणी  
गो म्मर्गे पत्नीररे

११  
२८४  
२८४  
३४९  
२८८  
२११  
७९  
१५०  
१६६  
३९  
२८४  
२८३  
२९  
२८३  
२८५  
२८३

त प्रभवयायनता  
तं भीममुद्रक वरे  
तन्वीर्यवकिष्टिण्ये  
तत् कुमुदनायेन  
ततला कृष्यसदेशे  
तयाधीतिगदित  
तस्यं चित्तय तातं  
तस्ववित्तु म्मावाहा  
तवैकानम्यपूराध  
तदुद्भागू क कृष्या  
तद्भूरिमाग्यमिह  
तयन्विम्याजधिको यग्ने  
तम्मादतच्छ तानं  
तम्माद्यशान्तदुव  
तुल्यामलयेनायि  
तुम्बनिशास्तुतिर्मान्नी  
तीह पदूयगु कर्म

७६  
३९९  
१७८  
१९६  
४३  
१८  
३६८  
१८८  
१६५  
२८४  
६४६  
३७  
१८८  
१  
३२३  
१६७

घ

गिता तु रमुतिरायानं

ङ

३१ वासि अम्बुत्तर  
आरवासि अम्बुत्तरं

२१४  
२१४



	पृष्ठ-संख्या		पृष्ठ संख्या
बसुदेव देवभाग	४१	संतुष्टः सततं योगी	१६७
बाष्पान्गुहा प्रपते मस्य चित्त	१६८	संमोहानंद समेदो	३८
बापई प्रादरी वैव	१८१	सम्बद्धमद्युषित	६
बासनासर्बभूयाना	२१४	सखाः कर्मण्यविहासा	१५८
विषहकप्यपाद् व्यास्यस्यसाद्	२२५	स्यपि मेदापगमे नाप	१४९
विष्णुकिंमनादेवो	२८४	समदु ससुस	२५
विस्तुव शिरसि पादं	२९	सम द्यौ न मित्रे च	१६७
बिता संगः द्यवन बसुन	३१९	सवपाऽऽर्त्रेवामरम्या	१९
बीधीपु बीधीपु विष्मकिनीनां	१९६	सर्गश्च प्रतिसर्गश्च	१८१
बीर्यं तेभ्यो बर्षं चास्यं	१७९	सर्गभूतेषु न पश्येद्	१६६
बृष्णीना प्रवरो मत्री	४१	सत्त्वस्मिन्परमप्रेमकृपा	१९
बेदगुमस्य मैत्रेय	१७९	स्यत्विशो ठामठी वैव	१६६
बेदोक्तमेव कुर्वाणा	१६४, २१२	सा न कामवमाना	६६
बेजवः सादिरो बांठ	९६	साकेजवसादिषमनीप्व	१४९
मृत्तानि बखरुच्छन्दासि	३२३	सुस्वरं करुण दीर्घस्वरे	२८८
श		मुम्बरं निसंभ्रतया	२८८
शंकरार्धतनुस्य पार्श्वी	१९६	सृष्टिर्बुग्भ समुद्रतो मगक्तः	२०३
शरीरेन्द्रिबाम्बामाम	१५१	शौचार्णशृंगाटकहर्म्य	५३
शाकस्य शमक्यभ्यस्ता	४९	स्वर्धैर्धमानर्धैर्ध्वं	९६
शिखाकस्यो व्याकरणं	१७५	स्वरिपुतीरव सुदशनविभ्र	१९७
शीर्षां गोकुळ मंडळी	३१९	स्रक्कस्यसामर्ध्याग्नि	११
शुचिसिन्धुः क्रोधमपीय्य	७५	स्वर्गेषु पशु बाम्बत्र	२८३
शुद्धाईतपदे हेय	८८	स्ये स्वे कर्मण्यमिततः	१५३
शूररस्मापि मारिष्य	४२		
शृंगारहास्यकरुण	४९		
भवनं कीर्तनं विष्णो	१६५ २१	हस्तदवाधिकामाने	९६
स			
मख्यनामानि गायत्र्यां	२८५	शतबाह्यास्वाय	१६८



## उद्धृत पत्र-सूची

"हिंदी"

पृष्ठ-संख्या			पृष्ठ संख्या
	अ		भा
अंग विभंग किये मन मोहन,	१०२	अस्तित्व में छापी अस्तुरग	३३६
अंगूठ देने समय में	२१६	अँगन में मत्त लावैठी राधे	१९७
अंगूठ जो देखि गरपी	२१	माए कहा करिके करिदे	२०२
अबौ तरौना ही रहौ	१५	आए दौरि दौरि ल्ये अबरि	३४३
अति सुष्ठम कोमल अति०	१	आए माई कुरंग स्वैम के संगी	२६७
अति सुपौ गनेर को मारग है०	१८	आए छोटि सज्जननवाए नैन	३३६
अति ही भेन-का बंदिहा मुपा०	१८	अगि जयइ सके नहिं	१३३
अनर-आत हरि के परत	१३	आउ मज कोऊ भाषी दे	७६
अधिक बधिक से मुबान रीति	२७६	आदि भंड लाके नही०	१३३
भाने सगुन गुगल्ये मार	१७	आपु लगति बेघलि मनहिं०	५
भाने स्यारय के सप कोऊ	२४४	आपुन के बिछरें मन मोहन	२९७
अब अति बकितरत मन मेरी	३०४	आरज्य भईता	१२७
अब अति बंगु मसौ मन मेरी	३१२	अबल उगाठी कुरा लगै	२७१
अब नीके के जानि परी,	२७४		
अस्ये ह्यहम मड भरे	२९७	इक भंगी बिन काटवें	६
अरधामन रे	७४	इक दिन मान्ता बेराज	१४७
अरी बैसुरिया बौलबी०	१०३	इदि अंतर मसुहर इक भाषी	२१८
अरधत-अरध इन हमैन हो	१९१		
अधीश्वर लच्छ अति०	१९७	उ	
अरो इन लदेन मेदि मुलापी	१६०	अपरि आए बौन्द बगट की कान	२६९
		उठि गइ निदला सिगरी	
		उतरेन	३४६

	पृष्ठ-संख्या		पृष्ठ-संख्या
उद्वव विच्छन्न विसोक्ति वं	१४६	ऊषी, हमहिं न जगत्तिलेये	१३६
उद्वव वेगिनी प्रथ	४३	ऊषी, हरि कश्चिं प्रतिपासक,	२२६
उद्ववपठ्टी करदु	५८	ऊषी हे नृ हरि के हित को	१८७
ऊ		ए	
उद्वव एक संदेही इहे	२५४	ए भक्ति जनम-करम गुंन गाए	१२
ऊषव के वल्लत	४३	एक बरी आभी बरी	३२९
ऊषी, ग्राए ग्राए	६८	एरे मतिमं चैद०	२२
ऊषी ऐसी भल मोहि भाव	१६८	एहो नैद-नैद अरदिन मुषी	३११
ऊषी और कष्ट करिबे का	१५	एहो वं क ध्येकन विद्येकनि	३४२
ऊषी, करि रहीं हम योग	१३६	ए	
ऊषी, कष्टी सिहारीई कीबो	१३८	ऐसे नंदरख के बारे	२७८
ऊषी करे छवि बुरे	२७९	ऐसी कब करिह मन मेरी	३१६
ऊषी करन करीम बाइ १९१	२७३	ऐदि उर हरि ग्ध पुरि गयो	१३९
ऊषीयू सुषी गहौ बह मारग	२५६	औ	
ऊषी, तुम न जौनल प्रेम	१३७	और विप जठ तेते प्रॉन के	१
ऊषी, तुम प्रथ वंति करी	२७	और रगन छे जान-ही	१५
ऊषी बार-बार सिर नाथक	३२१	क	
ऊषी ब्रूया करत सकनाद	२७	कंठन के विच्छ परे कंठन	११३
ऊषी, बैगि मधुर्न बाहु	२६९	कष्टुक बेरि करि कं विच्छमें	३३५
ऊषी, मयै ग्वांन समहापो	३४५	ककणी अलिपन में	५७
ऊषी मुलहि अकलि यरि	१३७	कदत निछकर दिवाकर ली	१९९
ऊषी, मोहि प्रथ विसरत नौही	३४५	कईम की छौह हो जगुना अ	३१८
ऊषी, मोहि प्रथ भूख नौही	३४५	कईम-कुच हे हो कबे	२१४
ऊषी, मे ग्वांन का बग्नौन	१४१	कंथ कश्चिरी कूठ की	३१७
ऊषी सर्वेन समोधि	४४	कब तुलदा होइ गौ	३१७
ऊषी, सुखे नैक निहारै	२७५	कब बृदावैन-बजनि में	३१७
ऊषी मो मूल हम देखी-	१९	कबहुं क हंसि उठि मृत्य	३८
		कपीरु चैदन अ विदा	३२८

पद्य संख्या	पद्य	पद्य संख्या
३२७	कवीर संगत साध की	२७२
३२८	कवीर संगत साध की जोड़ी	१८
३२९	कवीर संगत साध की उषो	१३३
३३०	कवीर संगत साध की बेगि	१८
३३१	कवीर संगत साध की हरे	३९
३३२	कवीर गद्य नि भक्ता	१३
३३३	कवीर गुण मो अर का	१३
३३४	कवीर किन केमो गाव	१३
३३५	कवीर कुहाड़ा अंग पन	२
३३६	कवीर प्रपान बिल्य रथ	३३२
३३७	कवीर प्रमु नलिमई मेपरागार	३३१
३३८	कवीर हनुमंत	३३३
३३९	कवीर श्रीगुरु के कहिना	०
३४०	कवीर दयापिन के रिठे	३
३४१	कवीर नाम भाए कही	३
३४२	कवीर दिया पबिठ खरेगना	३
३४३	कवीर सख्त गोरी अगे	३
३४४	कवीर भरेठ कहीसे भापौ	३
३४५	कवीर ल दूमरी नाम मुनो नहि	३
३४६	कवीर कुंमर क कर पलाय वे	३
३४७	कवीर बौंद दूत केसो ब्रह्म दूत	३
३४८	कवीर बौमपेनु ऐंममे भपनो रहें	३
३४९	कवीर कौं पानी की मुंदा	३
३५०	कवीर कौं के कपड गण मधुप	३
३५१	कवीर कौं न कांठ मुन-दुग	३
३५२	कवीर कौं न दाना	३
३५३	कवीर कौं शीकन मारत लुके	३
३५४	कवीर गरीनाय कदायला	३
३५५	कवीर कृपा इ बधीकर की	३
३५६	कवीर किरि पटे छीबे महो	३
३५७	कवीर श्रीमै ग्वोन भोगु की प्रथम	३
३५८	कवीर केकी जो फनाभौ लौ	३
३५९	कवीर कौन ठगारी भी हरि भयज	३
३६०	कवीर कोठ पिन मरन तरिदे नहि	३
३६१	कवीर कौऊ कहे है कणक	३
३६२	कवीर कौऊ पये कौरि संय	३
३६३	कवीर कौऊ कोरि हाप कौऊ	३
३६४	कवीर कौ गेरास कही की कमी	३
३६५	कवीर कौटे कौनमे कितित ल्यो	३
३६६	कवीर ल	३
३६७	कवीर ल	३
३६८	कवीर ल	३
३६९	कवीर ल	३
३७०	कवीर ल	३
३७१	कवीर ल	३
३७२	कवीर ल	३
३७३	कवीर ल	३
३७४	कवीर ल	३
३७५	कवीर ल	३
३७६	कवीर ल	३
३७७	कवीर ल	३
३७८	कवीर ल	३
३७९	कवीर ल	३
३८०	कवीर ल	३
३८१	कवीर ल	३
३८२	कवीर ल	३
३८३	कवीर ल	३
३८४	कवीर ल	३
३८५	कवीर ल	३
३८६	कवीर ल	३
३८७	कवीर ल	३
३८८	कवीर ल	३
३८९	कवीर ल	३
३९०	कवीर ल	३
३९१	कवीर ल	३
३९२	कवीर ल	३
३९३	कवीर ल	३
३९४	कवीर ल	३
३९५	कवीर ल	३
३९६	कवीर ल	३
३९७	कवीर ल	३
३९८	कवीर ल	३
३९९	कवीर ल	३
४००	कवीर ल	३

शुद्ध संख्या		शुद्ध-संख्या	
	घ		
पैनऑनर बीकन मूरि मुऑन	२९२	आके रूप परन वपु	११२
पहरि-पहरि पैन सपैन चहुधौ	२९८	आ-आ रेमेंबर वूरि-वूरि	२४९
	च	आदब को पैरी०	७६
पंदम छगाइ ई-नंदन को	२६७	आदिन छंत पाहुँने आकठ	३२५
परन किरत कॅटिन ले	३१५	आन्त सब कपु प्रेम	५९
चक कितपारद की दम	३३७	आने कहा हम मूद स्यै	२५२
पसे न प्रैन बनिठौन के	३३	आक परें अठ आति बहि	२३१
बहिऐ इन बरौन छो प्रेम	२८	आचो हरि निरमोहिदा रे	२६१
आठक गुरक पहुँभोर बौरे	२२२	आहि क्यो तुम्ह	१३१
आब बद्रिका छिनु में	२	आहु बू आहु बू, वूरि हटौ	२७१
पुप रहौ ऊचौ सुधौ पप	१४	कित बेलौ कित स्वाम	
	छ	मई है	१ ६, २५
कित-पति मोस पमु	२१६	जीवो बमुषा पूव निहारी	११८
किन-हि क्ये किन उतरो	६१	जेठे सुर सीने उर	०
झिनी छवि मृग-मीन की	९५	जेसैं ईल रम की मिठारै	९२
छ्दे छिगुनी पहुँचौ	२३९	जेम भवो बॉमन अबतार,	२३५
	ज	जेते कौन्द तैठे-ही उदब	१२२
बगमागत है हानि कौं	२ १	जेने कौं तेतो मिने	२६७
बगतफनौ छौ	१८८	जेकपु उरकठ भाइ उर	९५
अदपि म्हास न अर्ब गति	३१३	जेग को रमारै भौ समाधि०	१४१
अम्य को पत्रा है	१२१	जेग-उग्रेपी ब्रब न बिडे है	२७
अब सुधि अये तर	१३८	जेग देंन गवौ होबियेग	२९१
अनी अइ-बंस ध	८	जेगिनि की भगिनि की०	१७२
अबे हबें दीनदवाक	३२६	जेगी पारै जोग ध	१७१
अठ-रस म्भुर छुनारै	२९	जेखी होइ सो जोग बलौन	१७
अमोषार्ने कापी अँबेरी०	५५	जेइ की लोब अक, करिये,	२२४
आके मुँदें माषा नरी	११२	जेति लपपी आत्मा	११२

शब्द-संख्या	शब्द-संख्या
जा हासी क बर मयो	२१३
जो मुण होत मगत पर आयें	१६९
जो मयुध इति आइ यते	२५२
जो वे ईस्वर सौंको बॉन	२१३
जो रदीम करिबो हुयो	२२५
ज्यो-दी कपु करेन मदेतो	३३६
तचे वाग बैराज है	३१
तप्या भाष अति विरह की	२४
तत्र पर इट जानें बी	२६
तत्रि ब्रह्म-वाकनि बी मयुध	१७१
तत्र गजवरपेन नर धरयो	२२६
तत्र तें बहुरि दरग म	२७४
तत्र पोसी ब्रह्म-वाक	६७
तस्मिन्-सट बंसीबट	१७
तस्मिन् पुनि मात मिले	३१९
तस्मिन् अरपार्ग-मुण	३२६
तीन पैग पुहुमी सर्	२३९
तुम बो करी, मा बोड	३०४
न करे	३२८
तुमही संवत् राध की	२८९
तेरा तन पनरयोम	१२९
थ	१९८
संभन पुहुमि दिवो	२१४
वी चाल-संद की बौन्द गिली	२३४
वेगपीन हरी ऊपे	
द	
दहा वर भाए गोडभ-	२३४
दकरम सा रिपि बौनि कबौ,	२३२
दादू पाती प्रेम की	१७१, २७६
दादू रत्ता राम का	१०१ २७६
दावि-दावि छाती	३३२
दिन दस खेग पको गंगाक,	३४
दीन मए जल मीन भर्बीन,	२९
दीन्ना प्रेम-नैम गजपार्	३३२
दुरी, दुरायें हूँ स्त्रिं	१३
देमिरी भाजु वे गण बपू	३११
देख्यो देगमो सव ही महर	११
दे करि अरप ल्य भीतर तें	७४
दारे ठाढ़ है दिव्य काम,	२३६
ध	
धन, कबम रूपारितें	३९
धीरे बिग खिततें बिचारें हेत	३३१
भाइ पौम-पौम तें	६७
भिक कौन बो वूमरी वात	१३९
भूरी उहापत सीस वै	१३६
म	
नंद का पाण्डु हो पहिलें	२५०
नंद लल नौऊ उपन-नौऊ	३४१
नंद महर सँ बरखि जसेटा	११५
नमा नि/जन निरंकार	१३३
नय-सुरना होइ न्य	१३३
न टाक तीन छोड़ की	३०८
नौम नदी औ कौम लय	१२१
नारद परातर	४८
नानिगा की नयी लौन	१२१

पद्य-संख्या	पद्य-संख्या		
नाहिन रही मन म ठारु	१७१	पारसे परसि ओह	१३
न्हाव-ही न्हाव	५६	पिक, केकी, कोकिछ कुहुकु	११७
निदुर बनि पन्वो हे म्याप म्या	२३८	पिय देमैन मानो रमौ ठछफी	२०
निच बिचारन ओग	६१	पियारी ऐपे बेजल प्रेम् छे	१९१
निपट झडीझी नकछ सिय	११	पुच्छि रोम सब अँग-अँग झाप	६७
निरगुन बने देस कौ बस्ती	११९	पूरव हँसित बनिता कौ मुल	२२
निराकरु माकार सव	११२	पोर-पोर तन आपनो	१३
निमलिन बरसउ नैन हमारे	२९३	प्रथम कस पूतना पनारै	२२७
नीर भरि भरिप अनेक कट	२	प्रथम सुने भ्रातृगत	१६९
नीक सुनो स्यौम सुबोन	३४	प्रथमे परस्य ध्यामे	१२९
नैन-नैन रहत नएक धरी	२९१	प्रात-ही बसोपा-नंद मू ल	३३१
नैन इबे असभार बह	३१५	प्रीति कुडीनन नौ निबरे	२५४
नैनम भयों देखिदे	११२	प्रीति बु हे मा पीब की	१७१ २७६
नैन, बरत संजम के पीकरै	२१७	प्रीति प्रबंध छगे परबडा-दि	३२९
नेति नेति कहि निगम पुनि	१३३	प्रेम नैन गह नेद	२२३
प		प्रेम-समुद्र अयाह हे	६२
पंगुन क्य प्यु हउत	१	प्रेम हरी कौ रूप हे	६१
पंच सख में आ सखिदानद	९३	प	
पठिबौ पठाए असुनात	२१७	पिर-पिर बहा बनाबति बाठे	१२
परतरुम बमहमि-कर	२४	पुंकि के आह तरे बन को	१२
पछनि प्रपट बस्तीन बनि	३११	पूखन की सुम गेद नई	१०
पहिले बनभौनद तीनि	२१९	प	
पहलें-ही जाइ मिसे गुन में	१७	बंसी बंसी नाम ठव	१३
पौह-निन घाबे, करै	१२१	बंसी हम तो धेर	८
पौन किऐ हू बवानस	१२	बनि पदि मुख-समठा कर	२९
प्राची मयुवन हीरि भा	६९	बतिरैन सब बोळ कमशाबै	२१६
प्राची किय ऊपी कर	४९	बर, उन कुबरा मटौ किबौ	२६६

पृष्ठ-संख्या		पृष्ठ-संख्या	
बलि गद् नास्तिका में बरन	१ ८	भ	
बौनी को फट्टा करि	५८	भूलहि तैं कि विवाह तैं	१९८
बौम वमातो करि री	३ ९	भूमति हो, किन मीनी बाठन	२५८
बौमुरी पिछारो ना तो	१	भूमे बोग-छेम प्रेम नेम	३३३
बाबा गायरधेन पूखे अ्याब	११५	भेजे मन-भावन के	१८
बिपुलनि मोहन अरपरतें	१ ३	भोर ही भाफत नर दिखारु	१
बिधि ब्रह्म कुच्छल को चक्र	२ २	म	
बिन गुन कवन रूप धन	१	मधुकर जाके दारिका	३२०
बिन गत कग न इरि कथा	३२६	मधुकर उनकी पात	१
बिन गत संग ध्याति नहि	३२६	हम भीनी	२४५
बिन रूप संग विवेक न होई,	३२६	मधुकर जाके मीति भए,	६९
बिन छठ गंग मति बेग	३२७	मधुकर जाके मीति भए,	
बिरह को अरीमतमध मधोर	२ ४	मिगत	२६२
बिरह विवस कामदि तें	३१	मधुकर, अ निरगुन ह्यो गाबी	२८
बिस्मि किन मात्रो ऊभी प्यारे,	२७	मधुकर जाठ जहाँ तें आय	२६४
बिष्णु मगाइन कृष्ण को	२११	मधुकर अदि फरो मुनि मेरै,	२६४
बूमिने भूमि दस्त ऊभी	१३८	मधुकर तुम रम-कण्ट ह्यग	२६३
बृहस्पति बीपिन में संकीरत		मधुकर, अति बचन कत बोले-	१६२
छोड़	३	मधुकर मनें भाए दीर,	६५५
सगो भाये प्यार बनबारी	२२	मधुकर, मरे दिन किन भाइ	२७
धन व जाने कोन	२१	मधुकर, के बारे की ०ति-	६७८
देठे मंगलोनति भनग अरि	१ १	मधुकर, एभि ब्रह्म की पात	२५५
ब्रह्म क ल्यागता मदि कीबे	३२२	मधुकर बर अनी तुम सोई	११
ब्रह्म बन लारस लोम ब्रह्म		मधुकर हम होकबोममहाबत	२६०
पानी	२७५	मधुकर तुम करो करो	
ब्रह्म कोन भो न को		ते अ्याए,	२५८
गदिया	१०१	मधुकर, लर कृतान धामीने	२७३



पद्य-संख्या		पद्य-संख्या	
मन-मोहिनी सुरति ए भिन्न	११३	र	
मन यह नीच संगी नीच	१२७	रससौनि यह मुनि क	
मन हरि सीन्ही स्पैम	८३	गुनि क	२६६
मोक्षन चेरी सा अरी	२२६	रसनिधि कार कौन्द पे	२५६
मात-पिता बाके नहीं	१३३	रसनिधि महान नाम की	८
माधव, भाग्य सदा के करि	१३७	रसमसे नद-मुथरे	५६
माधव, गुमहुँ मए वै-साय	१३८	रसमें स्वाभाविक बिना	६
माजै सु, रासौ अपनी ओट	११७	रहत रनि-रिन हरि-हरि	
मागुन होठ तौ बही रससौन	११४	हरि रट	३४
मिस्त्री भाइ हर्दे-सिधु	२७७	रसिम्न ठकनी प्रकृति की	२८
मुरली, कौन तप तै किमौ	९७	रौं क्यों एक म्यौन अति-होइ	२७७
मुरली, हरि कौ	९७	रथिका के मिळरे कौं गुकिंद	२५४
मुरली, हरि तौन बूटति है	९७	राम बुझवा मेभिवौ	३२९
मूळ मछ्यब के समूळ करि	२ ४	रबरे कहे तें हो गम्यै हो	३३३
मेहन सौं बोझे मुर-नाई,	११६	राहु गिछै ज्यो पंद कौं	१५९
मेरे कशि होइ जण	३२७	रिद्धि-सिद्धि मींगू नौं	३२८
मेरी मन तोहि चोई है तुन	२२१	रिपि संग हरति बछे	३३१
मैं तुम पै ब्रह्मनाथ पठावौ,	१३२	रुम ठगोरी डारि क	११३
मोहन तेरे नाम कौं	८	रुम तें पत्ता क०	१२८
मोहन रेहु मयाकर	२२	रुम बरन पाके नहीं	१३३
मोहि गोपी-जन नहिं सिखत	३४	रुप-रेख बरना कता	११२
मादे मत सुम्नों मनौ	२८१	स	
य		स्यत्र कौं छेप पदाइ के भग	२७६
यह तन जो कोऊ धरि बनारै	२७	स्यतन न भंजन स्यात्त न	२५
यह तन, आरौ डार के	३१६	व	
या अनुरागी पित की	५६	यह मुठिधनि यह मृदुपतरनि	१ ७
बा विधि तुच्छि निद नेद	३३४	बाशी सुख महुस	१४

शुद्ध-संख्या	शुद्ध-संख्या
वे तो ऊपों, परम पुनीत पुन्न	मुनि मुनि मुरली पात्रे
वे तो फल बरेंन रैगावै मन	मुनि-मुनि ऊपों भावत होमी
वे हरि राक्षस टार क बाधी	सुनो नंद तपनंद कथा पे
म	सुम अरु अमुम करम-
कंठ ब्रह्मे लग की	अनुहायी
गंधी हैं छद्मी हैं	सुमन-पाटिका पिपिन में
कम्पी इन नैनन से घन हाठे	सुमरत का के रसन कों
कम्पी-नी क्यौंम मरै इकसाठ	छेत पठार अमार मए
कय श्रोटे मधुघन के लोग	तोइ स्यौंम मुनहुँ
कय सुग-स्यौंम सरनें गए	तोच ना हमारे कछु त्वागे
कमरी मधुप कान्ठि की	स्यौंम के पठाए भाए
कवि-ज्ञान लो प्याल-कास लो	ह
कवगन खौंटे अरपग-हृन खौंटे	हैतनि कुसक्ति नहिं
कदमो, उपने ना मरै	हैतनि मिलनि बोधनि
की छीत-नीत परता लप	हम एखु सिहारिए टेहु गोहै
किये, कपारें की हेम से	हम परतपुष्ट में प्रमौंन अमुगौंनि
का ही से आरत दद्यावत	हमारें कौंन बेद-विधि तापै
कापुन्य मुची क्यौं	हमारें नैन कही नै-पा
कादिए बिापी दन्ठी आर	हमाथै कौंर कदे सो पोते
कापु की कपुग गन	हरण-भोग मानामान
कागरे-निन पारि-हार-भमेण	हरत क्रिधर का बरकरन की
काेर कागीरन की दर मुक्ति	हा हा ऊगे कदिरे यत्त
का र कानन । कामा	हरे कष्ट पर का परि
कापु दुग में निा एकरे	गत, टात दानि हो
का के-न न देन	हा गण स्यौंम दुग्ध गन
	होपान भयान

# उद्धृत पद-सूची

“उर्दू”

	पृष्ठ-संख्या		पृष्ठ-संख्या
अ		न	
अपूरव भक्ति यह दुस में	६६	निकल जाय टम तेरे	३१८
अरफ औन्तोमे पस महीं		प	
यमता	२१७	पुष्पज कृषिने भक्त	२१६
औलें वो बुक रही हैं	३१८	फ	
औलें नहीं हैं पहरे पर	१३६	प्यार करने लूब खिदमत सी	२५
औलें मैरी लडकेंते	३१७	ब	
इसको-मुहम्बत क्या जानें	५९	याम पर नंगे न आओ	५७
घ		म	
घर मेरा घर मैं न रोखा	२९६	मन्ना करतात का देना	२९७
ग		मुँह में गर पानी बुझावे	३१७
तमाम रात हुए	७७	मेरे आँसुओं में है का	२९५
खिल्ले-अरफ देख गिया	२९५	घ	
तू न होबे तो नाम	६१	यहाँ तक गिरिबा मैं राप	२९७
गूर पर कैसे किमी	७७	श	
द		घाफर इलीका नाम है	५
दफन करना मुक्त को	३१७	ह	
		हम तीरे-दरख से ता	५९
		इसिसे-दीर मिटी	६२





# भ्रमर-गीत

( महा-कवि 'नददाम' प्रणीत )

१  
 ऊधौ फौ उपदेम सुनों ब्रज-नागरी ।  
 रूप, सील, लावन्य मर्ष गुँन भागरी ॥  
 प्रेम घुजा रम-रूपनी, उपजावँन मुख-पुंज ।  
 सुंदर-स्याम-बिलासिनी, नव पृदामँन कृज ॥  
 —सुनों, ब्रज-नागरी ॥

२  
 कहँन-स्याम-संदस-एक मं तुम्ह पं आयौ ।  
 कदत मर्ष सँफेल कहँ औमर नहिं पायौ ॥  
 जाचत-ही मन मं रसौ, कष पाऊँ इक-ठाँउँ ।  
 दि-सँदेम नँदलाल कौ, बाँहारि मपूपुरी जाँउँ ॥  
 —सुनों, ब्रज-नागरी ॥

३

सुनति स्वॉम कौ नाँम, कौँम, भर की सुधि भूली,  
भरि आँनद-रस हृदै, प्रेम-बेली-हुम-फुली ।  
पुलकि-रौम सब अँग छए, भरि आए अल-नेन,  
कठ घुटौ गद-गद-गिरा बाले जात न बेन ॥

—बिबस्था-प्रेम की ॥

४

अरपासन बैठाइ बौहौरि-परिक्रमा दीन्हा,  
स्वॉम-सखा-निख-जौनि, बहौत हित-सेवा कीन्ही ।  
भूमति सुधि नंदलाल की, बिहँसति-मुख ब्रज-बाल,  
नीके हैं बल-बीर जू, बोलत-बचैन-नसाल ॥

—सखा सुन स्वॉम क ॥

५

कुसल स्वॉम आँ रौम, कुसल संगी सब ठेन्हके,  
अदु-कुल सिगर कुसल, परंम आँनद सबेन्ह क ।  
भूँन-भज-कुसलाव फों, होँ आयौ तुँम्ह-सीरै,

पाठ्यान्तर—

१—१ ( क ) सुनति स्वॉम कौ नाम कौँम भरकी सुधि भूली ।

( ख ) सुनति स्वॉम कौँ नाम कौँम एदकी सुधि भूली ।

—अति हृदय ।

४—५ ( ग ) सखा-स्वॉम का अति बहुत सेवा सुधि कीनी ।

५—३ ( घ ) मैं पठ्यौ तुम्ह ।

मिलि ई थोर-दिनेन में जिन्ह जिय होहु अधीर ॥

—सुनों, प्रव-नागरी ॥

६

मुनि मोहैन-संदेस, रूप-सुमरैन हूँ आयौ,  
पुलकित आनन-कमल, अंग आवेस जनायौ ।

बिहबल हूँ धरनी परी, प्रज-बनिता मुरझाइ,  
दैं जल-छीट-प्रबाध-ही, ऊधौ-बैन-मुनाइ ॥

—सुनों, प्रज-नागरी ॥

७

ष तुम ते नहिं दूरि, ग्याँन फी आँखिन-दस्वौ,  
अखिल-बिम्ब-भरपूर, रूप सब उनहिं बिसेखौ ।

पाठांतर—

१—१ ( ल ) मुबत लीम की नाम

( प ) मोहन-मुनि संदेश " " "

२ ( ब ) पुलकित आनन-कमल "

अपवा—

( ल ) पुलकित आनन अंग-अंग आवेस जनायौ ।

( प ) " अंग मरकट "

३ ( क ) ऊधौ-बात मुनाय

४ ( घ )—प्रेम तुल ग्याम ई ।

७—५. ( ग ) ( प ) ( ब ) मझ में रूप बिसयो

अपवा—

( २ ) मझ मझ रूप बिसयो



लोह, दाह, पासाँन में, बल, धल, मही, अकास,  
सुधर अधर धरतत सबै, जोति-मल्ल-परकास ।

—सुनों, ब्रज-नागरी ॥

८

कोन ब्रम्ह, कां वाति, म्याँन कासों कहँ ऊभों, ?  
इमर सुंदर-स्याँम, प्रेम कौ मारग-सुधौ ।  
नेन, बेन, स्रति, नासिका मोहँन-रूप लसाइ,  
सुधि-सुधि-सबै मुरली-हरी, प्रेम-उगोरी छइ ॥

—मसा, सुन स्याँम के ॥

९

यै सब सगुँन उपाधि, रूप-निरगुँन हे उँन्ह कौ,  
निरबिकार, निरलेप, लगत नहिँ तीन्हों-गुँन कौ ।  
हाथ-पाँइ नहिँ नासिका, नेन, बेन नहिँ कौँन,  
अच्युत जोति प्रकास हीं, सकल बिस्व के प्राँन ॥

—सुनों, ब्रज-नागरी ॥

प्रत्यक्ष—

१—१ ( क ) प, द, त—सगुँन सबै उपाधि रूप-निरगुँन  
के उपाधी —

२ ( ख ) निराकार निर्वेष, कौँन वा तीनों-गुँन कौ ।

३ ( ग ) हाँइ व हाथ व नासिका बँध बँध नहिँ काय

४ अच्युत जोति प्रकासिका सबै बिस्वके प्राँन ।

अपवाद—

ज्योति-वि-ज्योति प्रकास के अद्विक बिरप के प्राँन ।

१०

आ मुख नाहिन हुता, कइौ किन्ह-मांखन-खायौ,  
 पाँइन-बिन गो-संग कइौ, बन-बन को धायौ ।  
 आंखिन में अंजन दियौ, गोबरघेन लियौ हाथ,  
 नंद-असोदा पूत है, कुंवर कान्ह भ्रज-नाथ ॥

—सखा, सुन स्यामके ॥

११

आहि कही तुंम्ह कान्ह ! ताहि कोठ पिता न माता,  
 अखिल-अह-अम्हंड सकल उन्ह-ही सौ जाता ।  
 लीला कौ अवतार छै, धरि आए तँन-स्याम,  
 जोग-जुगति ही पाइए, परमम्ह-पुर-धाम ॥

—सुनों, भ्रज-नागरी ॥

पाठ्यांतर—

११—१ ( ब ) ( ब ) कही आहि तुम कान्ह  
 ताहि कोठ पिता नहि माता ।

२ ( उ ) मन्त्र अह अम्हंड विन्व उन्ही तै जाता

अथवा—

( उ ) मरे अह अम्हंड-कोक उन्ही भी जाता

३ ( त ) जुगति जोग की पाइए परमम्ह बद-धाम ।

अथवा—

( क ) ( ब ) जोगी-जीमी बहूबल बरमन्त्र-पर-धाम

१२

ताहि बत्ताओ जोग, जोग ऊधौ जहाँ पावौ,  
 प्रेम-सहित हँम-पास, नंद-नंदन-गुन गावौ ।  
 नैन, बँन, तँन, प्रॉन में, मोहँन-गुन रखौ पूरि,  
 प्रेम-पियूषै छौदिके कौन समेटै धूरि ॥

—सस्त्रा, सुन स्याम के ॥

१३

धूरि धुरी ओ होइ, ईस क्यों सीस-बढ़ावै,  
 धूरि-छेत्र में आइ, करँम-करि हरि-पद पावै ।  
 धूरि ते ये तँन भयो, धूरि ते अगहँड,  
 लोक-चतुरदस धूरि ते, साठ-दीप नौ-खँड ॥

—सुनों, ब्रज-नागरी

१४

करँम-धूरि की बात, करँम-बधिकारी खँनि ।  
 करँम धूरि क्यों आँनि, प्रेम अमृत में सँनि ॥

पाठ्यस्तर—

११—१ (क)(ख) ताहि बत्ताओ जोग  
 जोग ऊधव ताहि भावै

१ " प्रेम-सहित ओ पास स्वाम-सुंदर गुन गावै

१ (१) नैन बँन मन प्राण में मीहँन-गुन भरि-धूरि

११—२ (क)(ख)(घ) लोक-चतुरदस धूरि ते, सठ-  
 दीप नव-खँड ।

तब ही लों सब करम हई, जब लों हरि उर नाहि ।  
करँम-बंध सब बिल्व के, जीब बिभुन ह्ये आहि ॥

—सखा, सुन स्याम क ॥

१५

करँमहि निर्दा कहा ? करँम सों मदगति होई ।  
करँम-रूप ते बली नाहि, त्रिभुवन में काई ॥  
करँमहि त उतपधि ह, करँमहि ते सब नास ।  
करँम-कर ते मुक्ति होइ, परब्रम्ह-पुर-वास ॥

—सुनौ, ब्रज-नागरी ॥

१६

करँम पाप औ पुन्य, लोह-सोने की बेरी ।  
पौदन पर्वन दाऊ, कोऊ मानो बौहसरी ॥  
ऊँच करँम ते सरग हई, नीच-करँम ते भोग ।  
प्रेम बिनौ सब पधि मर, बिपै-बसनाँ-राग ॥

—सखा, सुन स्याम क ॥

पाठान्तर—

- १५—१ (१) (१) तुम करमहि कम निम्नत जाती सरगति होई  
अपवा—( २ ) ( २ ) कस तुम करी निम्नत सत्तति जायौ होई ।  
अपवा—( ३ ) तुम निम्नत वा करी सत्तति जातौ होई ।  
१ ( १ ) ( ३ ) बली करम सँ नाहि बहो त्रिभुवन में  
२ " " " कम बिप ते मुक्ति हँ परब्रम्ह-पुर-वास ।  
१६—४ ( ४ ) ( १ ) बिना प्रेम सब पधि सुख बिपव  
वासना-भोग  
अपवा—( २ ) बिना प्रेम सब पधि सुख

१७

करम बुरे जो होई, भोग क्यों फिरि कोठ धारै ।  
 पदमासन सों द्वारि-रोकि, ईर्द्विन्द कों मारै ॥  
 ब्रह्म-अग्नि सों सुद्धि है, सिद्धि-समाधि उगाई ।  
 लीन होइ सायुज्य में, आति-ई-जाति समाई ॥

—सुनों, ब्रह्म-नागरी ॥

१८

जोगी भोगहिं भबै, भक्त-निष्ठ-रूपहिं अनि,  
 प्रेम-पीपुपहिं प्रपट, स्वाम-सुंदर-उर-अनि ।  
 निरगुंन गुंन जो पाइये, लोग कहें ये नौहिं,  
 पर आएँ-नाग-न-पूर्विये, बाँसी-पूर्वन सौहिं ॥

—सखा, सुन स्वाम के ॥

पद्याम्बर—

१७—१ (ग) (घ) करम बुरी जो होइ भोग कोठ काहे धारै,

अथवा—(क) (ख) बुरे करम जो होई भोग काहे कोठ धारै

२ ब्रह्मसम सब द्वार-सुद्धि इच्छित्त क्यों धारै ।

३ (ख) ब्रह्म-अग्नि-उरि सुद्धि है

४ (ग) होइ लीन सायुज्य में जोते जोति उगाई ।

१८—५ (द) (ड) (ढ) जोगी भोते भबै भक्त निष्ठ कबै जानै ।

अथवा—(च) (छ) (ज) जोतहिं भोगते भक्तहिं भक्त निष्ठ  
 कबहिं जानै ।

६ (क) (ख) भोग न पर आएँ पूरै पुनि बाँसी पूरै धारि ।

१९

जो हरि के गुन होंहि, बह ज्यों नेत्रि-शराने,<sup>१</sup>  
 निरगुन, सगुन, आतमाँ कहि उपनिषद जु गाने ।  
 वेद-पुराँनन-खोजि के, नहि पायाँ गुन-एक,  
 गुन-ही के गुन होइ जो, कहि अकस कहँ टेक ॥

—सुनौ, ब्रज-नागरी ॥

२०

जा उन्ह के गुन नाहि, और गुन भए कहां तें,<sup>२</sup>  
 भोज विनो तरु जमे डंमे तुम्ह कहां कहां तें ।  
 वा गुन की परछाँहि-री माया-दरपैन-बीष,  
 गुन तें गुन न्यारे नहीं, अमल-बारि ज्यों कीच ॥

—सुखा, सुन म्याम क ॥

पाठान्तर—

१९—१ (ग) (घ) जो इनहै गुन कहि नेत्रि ज्यों वेद-ब्रह्मवै

अवगा—(ग) गुन उन्है जो कहि - - -

१ " निरगुन सगुन आत्मा एहि द्वार मुख-द्वारे

२ " जो गुन ही के होइ गुन, कहु अकस कहिँ टेक ।

१ —४ (क) गुन इनहै जो कहि भए गुन बार कहां तें

२. (क) किय बीष तद जमै कहि गुन बदल कहां तें ।

अवगा—(घ) जोर किय तरु जमै मोहि गुन कदा कदा तें ।

१ (घ) गुन तें गुन भए कहु म्याम-वारि निजि बीष

२१

माया के गुंन और, और गुंन हरि के जानों,  
 ठंन्ह गुंन कों इंन्ह मोंहिं औंनि काहें कों सांनों ।  
 चाके गुंन औ रूप कौ, औंनि न पायी भेद,  
 चासों निरगुंन-मंन्ह कों, कदत उपनिषद्-बेद ॥

—सुनों, ब्रह्म-नागरी ॥

२२

बेदहु हरिके रूप, स्वांस-मुन्य सों आ निचरे,  
 करंम-क्रिया-आसक्ति सबै पिछली-सुधि विसरे ।  
 करंम-मध्य इंद्रति सबै, किन्ह-हैं न पायी दस्ति;  
 करंम-रहित ही पाइये, चासों प्रेम-विसेस्ति ॥

—सत्वा, सुन स्वांस क ॥

२३

प्रेम जु कोह बस्तु, रूप इखत लों लागे,  
 बस्तु-दृष्टि-बिन कहां, कहा प्रेमी अनुरागे ।

पाठ्यस्तर—

- २१—१ ( क ) चाहें निरगुन मंन्ह कहि बहें उपनिषद्-बेद ॥  
 २२—२ ( क ) ( ग ) ( ब ) बेद हु हरि के रूप स्वांस-मुन्य सें विकरे  
 ३ करंम-मध्य इंद्रें लकठ तबहुं न पायी देखि  
 ४ ( ब ) ( द ) ( प ) करंम-रहित हें पाह्यें चाहें प्रेम-विसेस्ति ।  
 २३—५ ( क ) ( ग ) ( द ) प्रेम न कोह बस्तु तु इखत में  
 बहु लागे  
 अथवा—( इ ) प्रेमहि का कोह बस्तु, - - -

तरनि-चंद्रके रूप को गुन नहीं पायी जानें,  
 तौ उनको कहा जानिये, गुनाँतीव-भगवान् ॥  
 —सुनों, प्रज-नागरी ॥

२४

तरनि, अकास-प्रकास, जाहि मँ रहौ दुराई,<sup>१</sup>  
 दिव्य-दृष्टि-बिन कहाँ कौन पै देख्यौ साईं ।  
 जिनकेँ वे जानै नहीं, तबे क्यों पै रूप,<sup>२</sup>  
 तिन्ह सौँध क्यों ऊपचै, जे पर करैम के कूर्प ॥  
 —सखा, सुन स्याँम के ॥

२५

वे करिण नित करैम, भक्ति हूँ आमैं आइ,<sup>३</sup>  
 करैम रूप तैं कहाँ कौन पै छ्यौँ जाइ ।

पाठ्यन्तर—

- १ ( ४ ) तरनि-चन्द्र के रूप को नहीं पायी गुन जान।  
 २ ( ५ ) उनको तौ जाने कहा गुनाँतीव भगवान् ॥  
 अथवा— ( ५ ) जाने उनको कोट कहा " " " " "  
 २४—१ ( ५ ) ( ५ ) तरनि प्रकास अकास तेज में रहवा दुराई  
 ४ , दृष्टि-दिव्य बिन कहाँ कौन पै देख्यौ साईं ।  
 ५ जिनको वे जानै नहीं कय देखै कह रूप,  
 ६ तबो उपचै विन्नाम जे परे करैम के रूप ।  
 २५—० ( ५ ) ( ४ ) ( ५ ) जब करिवै नित करैम  
 अथवा— ( ४ ) ( ५ ) करिवै नित कह करैम



क्रम-क्रम करैम-हिं कियेँ तें करैम-नास है जाई,  
तप आतम निहकर्म सौं निरगुन-अम्ह समाइ ॥

—सुनों, अज-नागरी ॥

२६

आ हरि के नहिं करैम, करैम-बर्षेन क्यों आवै,<sup>१</sup>  
तौ निरगुन हूँ वस्तु मात्र, परमान बतवै ।  
ओ उन्ह कौ परमान है, तौ प्रभुता कहु नाहिं,<sup>२</sup>  
निरगुन मए अतीत के, सगुन सकल जग माहि ॥

—सन्धा, सुन स्याम के ।

२७

जे गुन भाषे दृष्टि मौहिं नखर ते सारे,<sup>१</sup>  
इन्ह सषहिंन तें वासुदेव अच्युत हैं न्यारे ।

पाठान्तर—

- १ (क) (क) क्रम-क्रम करै किये तें नास करम है जाइ ।  
२ आतम तप विष्कर्म है अम्हहि-अम्ह समाइ ।  
२६—३ (क) (प) हरि केँ ओ नहिं करम करम-बर्षेन क्यों आवै  
४ तौ निरगुन हूँ वस्तुमात्र परमान बतवै ।  
५. " उनकौ अदि परमान है प्रभुता फिरि कहु माहि  
२७—६ (र) (प) गुन भाषेँ ओ दृष्टि मौहिं ते नखर सारे  
७ (र) (प) इह सब ही तें वासुदेव अच्युत हैं न्यारे ।

इद्री-दृष्टि-बिम्बर ते रहित अभोछज-आति,<sup>१</sup>  
 मुद्द-सरुपी-ग्याँन की प्रापति तिन्ह कों होति<sup>२</sup> ॥  
 —सुँनों, अज-नागरी ॥

२८

नास्त्रिक ह जो लोग, कहा जानें निज रूप,<sup>३</sup>  
 प्रघट भौनु कों छाँड़ि गहं परछाँड़ी धूप<sup>४</sup> ।  
 हम कों तौ वा रूप बिन और न कष्ट सुदाइ,  
 ज्यों करतल आमास क फाँन अम्ह टरनाँइ ॥  
 सखा, सुँन स्याँम क ॥

२९

एसे में नैदलाल-रूप नैनन क आगे,  
 भाइ गयाँ छवि-छाह, घने भरु पियर धागे<sup>५</sup> ।  
 उधौ सों मुम्ब मोरि कों, कहति तिन्हहि सों बात,  
 प्रम अमृत मुम्ब सों भवत, अपुत्र-नेन-धुषात ॥  
 —तरक रस-रीति की ॥

पाठान्तर—

- १ (२) (ग) इन्द्रि-दृष्टि-बिम्बर ते परै अभोछज-आति  
 २ मुद्द सरुपी आनि त्रिप नृसि तु ताते होति ।  
 २८—३ (ग) (घ) हैं नास्त्रिक ओ लोग न जानन कहु यह रूपे  
 भवता— (क) ओ नास्त्रिक हैं लोग कहा जानन हिन करे  
 ४ हम कों बिनु वा रूप के कष्ट न भार सुदाई  
 ५ उधौ करतल आमासके मज-दि-मज दिगाइ ।  
 २९—६ (३) (ग) भाइ गएँ छवि-छाह घने धीरी धरु धागे  
 ७ " अपुत्र ते मुम्ब-मोरि हैं केंदि गकुच कहि बात

३०

अहो नाथ, अहो रमानाथ, अहो नाथ, गुसाईं,  
 नद-नैदन पिडराति फिरति तुम्ह बिन सष गौईं ।  
 काहे न फेरि कृपाल हँ, गा-म्बालन मुख देहु,  
 दुख-अलनिधि हम घुडिहीं, कर अवलंबन-लेहु ॥

—निदुर हँ का रहे !

३१

काहू कहै, अहा दरस देति पुनि लेति छिपाई,  
 ये छल-विद्या कही कौन पिय ' तुम्हें सिखाई ।  
 हम परबस आधीन हँ, ता सों बोलत-दीन,  
 छल बिन कही कैसैं ब्रिणें, पराधीन अ मीन ॥

—बिचारौ रावरे !

पाठ्यम्तर—

- ३०—१ (क) अहो नाथ ! रमानाथ और अनुनाथ गुसाईं,  
 २ नद नैदन पिडराति सखक तुम बिन सष गौईं ।  
 ३ काहे न फेर कृपाल बन गो-म्बालन-मुख देहु  
 ४ (ग) दुख-अल-निधि सष घुडिहीं बन अवलंबन लेहु ।

- ३१—५ (ब) (२) कोऊ कहै कयी दरस देति फिरि लेति छिपाई  
 ६ छल-बल-विद्या कही कौन पिय तुम्हें सिखाई ।  
 ७ ,, अल-बिन कही कैसैं परमातुर के मीन ।  
 भववा—(५) बिन अल कैसैं कहु ब्रिणें, गहरे-अल की मीन ।

३०

काह कहै, पिय दरस देहु औ बेंन पजावौ,  
दुरि दुरि पन की ओट, कदा हिय लौन लगावौ ।  
हम को पिय तुम एक ही, हम-सी तुम्ह को कोरि;<sup>१</sup>  
बहुतदत की राखरे । प्रीति न डारौ तोरि<sup>२</sup> ॥

—एक ही बार यौं ॥

३३

कोह कहै, अहो स्याम ! कदा इतराद् गण हौ,  
मपुरा को अधिकार पाइ, महाराज भण हौ ।  
ज्ये कस्य प्रभुता अहौ जानत काऊ नाहि,<sup>१</sup>  
अबला-बध मुनि हर गण, पत्नी जगत क माँहि<sup>२</sup> ॥

—पराक्रम बानि कौं ॥

पाठ्यम्—

- ३०—१ (अ) (ब) कोह कहै पिय दरस देहु पिय बेंन-पजावौ  
अथवा— (ग) कोह कहै अहो दरस देहु पुनि बेंन-पजावौ  
२ हम को पिय तुममे एक ही तुमको हमसी कोरि  
३ (ब) बहुत धीरि के राखरे ! वी प्रीति न डारा तोरि ।  
३३—४ (ग) (घ) कोह कहै कदा स्याम ! कदा इतराद् गणे

केवी कस्य प्रभुता अहौ जानत कोह नाहि

अथवा— (ब) कस्य प्रभुता वी अहौ जानत जगत कोह

अथवा— (घ) ज्ये न प्रभुता कस्य अहौ जानत कोह नाहि

१ अवला-बधि हम हर गण कबी हौं गण-माँहि ।

कोहू कइ अहो स्याम ! चँहत मारैन जो ऐमें,  
 गिरि-गोबरधन-भारि करी रच्छा तुम कैमें ।  
 ब्याल-अनल बिप-ज्वाल तें, राखि लई सब-ठौरै;  
 अब बिरहानल दइत हौ, हँसि-हँसि नद किसोरै ॥  
 —घोरि चित लै गयो ॥

कोहू कइ ए निठुर, इन्हें पातक नहिं ब्यापै,  
 पाप-पुन के करनहार ए आप हि-आपै ।  
 इन्ह के निरदै-रूप में, नाहिंन कोहू-चित्र;  
 पै-प्याबत-प्रानन-हरे, पुतनाँ बाल-घरित्री ॥  
 —मित्र ए कौन के ?

पाठ्यान्तर—

- ३४—१ (क) (घ) कइ कोहू कइ अहो स्याम चँहत जो मारैन ऐमें  
 गोबरधन-भारि करी तुम रच्छा कैमें ।  
 २ (ब) (द) ब्याल-अनल भी ज्वाल सी कहू राखि सब ठौर  
 बिरहानल अब दाहि ही " " " " ।  
 जयदा— (ख) बिरह-अनल अब दाहि हो " " " " ।  
 ३५—५ (क) (द) पाप-पुन्य के करनहार के ही हिं जायै  
 इन्हके निरदैप रूप में नाहिंन कइ विचित्र  
 १ पय पीबत ही पुतना मारी बाल-घरित्री ।  
 ०

३६

कह कह री, आनु नाहिं आगे चलि आई,  
 रामचंद्र के रूप माहिं कीन्हीं निदुराई ।  
 नम्य करावन जात हे पित्रामित्र समीप;  
 मग में मारी तारका रघुवंसी—कुल-दीपे ॥  
 —बाल-हा रीति येँ ॥

३७

कह कह, ए परम-धरम स्त्री-व्रित पूरे,  
 लल-लावण-मंधान धरे आयुध अति धरे ।  
 सीताजू के कह ते, सुपनसा पे श्येपि;  
 छेदे-अंग बिरूप करि, लोगन-लज्जा-लोपि ॥  
 —कहा ताकी कथा ।

पाद्यन्तर—

- ३६—१ ( अ ) ( क ) रामचंद्रके परम-रूप में ही निदुराई,  
 २ " मग-रामचंद्रजनजात हे पित्रामित्र समीप;  
 ३ मारी मग में तारिका रघुवंसी-कुलदीप  
 ४ " —प्रथम ही रीति यह ।  
 ३७—५ ( ए ) ( इ ) श्येपि कहए परम-धरम स्त्रीव्रित पूरे  
 ६ ( उ ) लल-लावण-मंधान धरे आयुध के स्त्रे ।

बिभाव—

संजीवनें छम में दो मूत्रियों ( १ २ ) के पाद्यन्तर और मिलते हैं—

“इत्यौ बाकि-जनराज नाम आयुध ले मूरे” तथा “नरक-कण्ठके नाम से  
 करी-अधिक श्येपि यदि पर के पाद्यन्तर-अर्ध-अनुपार मिलते हैं—कथानक-  
 के विग्रह-के-साथे हैं राज-संभार-के भी विवरीन है विद्य पाठक विचारें ।

३८

कोहू कहै री, और सुनों गुन इन्ह के आली,  
 बलि-राजा पै गए भूमि-भौंगन बनमाली ।  
 माँगी बाँमन-रूप-धरि, परवत भए अकाली;  
 सच, धरम सष छौंदि कें, धरथौ पीठ पै पाँई ॥

—लोम की नाष ए !

३९

कोहू कहै, इन्ह परसराम हैं माता—मारी,  
 फरमा-कंधा धारि भूमि-छत्रिन्ह सघारी ।  
 सौनित-कुड़ भरद कें, पोखे अपने पित्र;  
 इन्ह क निरदै-रूप में कछु-हू नाहि बिचित्रे ॥

—विलग कहा मानियें ॥

पाठ्यन्तर—

- ३८—१ (ब) (भ) कोहू कहै अहो और सुनी इनके गुन आली  
 २ राजा-बलि पै गए भूमि-भौंगन बनमाली ।  
 ३ (घ) माँगी बाँमन-रूप धरि भाँयत करी कुदाली  
 ४ (च) सच धरम इन्ह छौंदि सष धरथौ पीठ पै पाँई ॥

३९—५ (क) (ख) (ङ) इनके निरदै-रूप में नाहि कछु बिचित्रे  
 विरोध—

उक्त उल्लासिसके छन्दस्य अन्तिम अरण्य भाग पूर्वमें उद्धृत पैलीमके  
 छन्दस्य तीसरा अरण्य—शोभाय पाठ एक ही है ।

४०

कोहू कहै री, कहा हिरँनकच्छप तें बिगारघौ,  
परम-ढीठ-ग्रहलाद, पिता के सनमुख शरारघौ ।  
मुत अपने को दति हो, मिच्छा-रुड बँधाई;  
इन्ह बपु-धरि नरमिष को नखैन-बिदारघौ जाइ ॥

—बिना अपराध ही ?

४१

कोहू कहै अहो, कहा दोष सिमुपाल नरेसँ,  
ब्याह-करँन को गया नृपति भीषम क दसँ ।  
दल-बल जोरि घरात को ठाढ़ी हो छवि-बाढ़ि;  
इन्ह छल करि दुल्ही हरी, सुधित-शाम-मुख काढ़ि ॥

—आपने स्वारथी ॥

पाठान्तर—

४०—१ (घ) (ब) कोहू कहै कजु कहा ? हिरनकच्छप तें बिगारघौ,  
अपघ— (क) कोहू कहै कजु कहा— - -

२ (घ) (ब) मुत अपने को दति हो मिच्छा रूड बँधाई।  
अपघ— (क) अपने मुत को दति हो मिच्छा रूड बँधाई।

४१—१ (क)(ग) कोहू कहै अहो । कहा दोष सिमुपाल-नरेसँ  
२ , करम-ब्याह दिन गयो नृपति-भीषम के दसँ ।  
५- जोरि-जोरि बरान को ठाढ़ी हो छवि-बाढ़ि।  
६ (ग) छल-बल करि दुल्ही हरी छल सुधित-मुख-काढ़ि



४२

या विधि भर-आबेस, परम प्रेम-हिं अनुरागी,  
 और रूप, पिय-धरित तहाँ सब देखेन्ह लागीं ।  
 रोम-रोम रघौ ब्यापि के, मोहँन-रूप-अनूप;  
 तिन्ह के मूत-भविष्य की, बनिं फेन सरूप ॥

—रंगीली प्रेम की ॥

४३

देखति इन्ह की प्रेम, नेम, उभौ की भाज्यौ,  
 तिमिर-भाष-आबेस, बौहौत अपने बिय लाज्यौ ।  
 मन में कहि 'रब' पाइ के लै माँये निज धारि;  
 में तौ कृत-कृत है गयो, त्रिभुवन आनन्द-धारि ॥

—बंदनौ सोम ए !

४४

फनहँ करै, गुन-गाइ-स्यौम के इन्हें रिझाऊँ,  
 प्रेम-भक्ति तौ भलें स्यौमसुंदर की पाऊँ ।

पाठान्तर—

- ४२—१ ( क ) यह विधि भर आबेस परम-प्रेमी—अनुरागी  
 जयदा— ( ख ) इहि विधि होइ आबेस अतुल-सौमी अनुरागी  
 २ ( क ) रोम-रोम रघौ ब्यापि के किनके मोहन जाइ  
 ३ " उनके मूत-भविष्य की जानत की न हुराह  
 ४३—४ ( क ) माध-तिमिर-आबेस बहुत मध अपने काज्यौ  
 ५ " परम-कृतारथ है तौ आनन्द-त्रिभुवन धारि ।  
 ४४—६ ( स ) ( प ) तौ प्रेम-भक्ति, लाम-सुन्दर की पाऊँ

जा-विधि मो वै रीझि-हीं, सो हों करों उपाइ;  
साते मो-मन सुद्धि होइ, दुविधा-ग्याँन-मिटाइ ॥

—पाइ रस प्रेम कौ ॥

४५

साही छिन इफ मँमर, कहँ ते उदि तहाँ आयौ,  
प्रज-बनितँन्ह के पुँब मॉहिँ, गुबत छवि-छायौ ।  
बैठ्यौ चाँहत पाँइ पै, अरुन-कँमल-दल जॉनि;  
मँनु मधुकर ऊँधौ भयौ, प्रथमहिँ प्रषट्यौ आँनि ॥

—प्रेम कौ मेप-धरि ?

४६

साहि मँमर तें कहति सबै प्रखि-उचर-बाते,  
तरक-वितरकँन्ह-मुक्त, प्रेम-रस-रूपी-धाते ।

पाठ्यन्तर—

४४—१ (स) (१) जिहि जिहि विधि एरीझिही हीं सो करों उपाइ।  
२ साते मन-मो सुद्धि है दुविधा-ग्यान मिटाइ ।

४५—१ (घ) (१) साही छिन एक भँवर कहँ सो तहँ उदि जायो  
२ " चाँहत बैठ्यौ पागल पर अरुन-कमल-दल जानि।

अपवा— (२) बज्याँ चँहत पर-कमल वै मुमग अरुन-दल जॉनि  
५. मनु मन कधी कौ तबै प्रषट्यौ प्रथमहिँ जानि ॥  
६ —मधुन कौ मेप धरि ॥

४६—० (क) साहि भँवर तें कहँ मुक्त लखि-उचर-बाते

जिनि परसौ मम-याँइ हो, तुँम्ह-मानव हम-बोर;  
तुँम्ह-हीँ सौ कपटी हुतो, नागर-नंद फिसोरें ॥

—यहाँ तें दूरि होत ॥

४७

कोहू कहै अहो मधुप, तुम्हें लाज-हुनहिँ आवत<sup>३</sup>  
सौमी तुँम्हरी कान्ह, कृषी-दास कडावत<sup>४</sup> ।  
यहाँ ऊँच-पदवी हती, गोपी-नाथ कडाइ;  
मम महु-कुल पाषन भयो, दासी-जूठन ग्वाइ ॥

—मरत कहा बाल कीं ?

४८

कोहू कहै रे मधुप, कौन कहै ताहि मधुकारी,<sup>५</sup>  
तिरें फिरत विप-जाग-गाँठि प्रेमी-बधकारी<sup>६</sup> ।

पाठ्यस्तर—

४६—१ (क) जनि परिसी मम-याँइ रे ! गयो जौबद-रस-बोर  
२ तोही मम कपटी हुतो मरवर-नंद-फिसोरें ।

४७—३ (स) (द) कोहू कहै ही मधुप तोहिँ स्वामी कहिँ आवत,  
४ , तेरी कामी दाइ ? कृषी-दास कडावत ।

वचन—( ७ ) कहत कोहू रे मधुप तोहिँ कजा कहिँ आवै  
८ , सत्य तिहातै स्वाम । कृषी नाथ कडावै ।

वचन—( ८ ) सगधी तुम्हरी स्वाम कुबरी-दास-कडावै ।

४८—५. ( क ) कहत कोहू अहो मधुप कहै तुम कीं को मधुप,

रुधिर-पाँन कियो सौहीत के अधर-अरुन-रँगगत;  
अब घन में आए फहा करै न फॉन-सी घात ॥

—जात किन्ह पातकी ?

४९

कहू कहै री मधुप, मेप उन्ह कौ क्यों धारणौ,  
स्यौम, पीत, गुंजार-येनु किंकिनि झनकार्यौ ।  
या-पुर गोगम चारि के फिरि आयौ इहि देस,  
इन्ह कों जिन्ह मानों कनेऊ, कपटी इन्ह कौ मर ॥

—घोरि जिन्ह जाइ कछु ॥

५०

कोहू कहै र मधुप, कहा मोहन-गुन-गावै,  
इहँ-अपट मो परम-भ्रम नाहिन छवि पावै ।

पाठ्यम्तर—

४८—१ (क) सियेँ चितत विष-गौंदि प्रेम-मिमि मागी बैपकर ।

अपरा—(घ) स्येँ चितत मुन जोग-गौंदि करन बेझरी ।

अपरा—(ङ) चितत स्येँ अति जोग-गौंदि, करन नु करती ।

विरोध—

उक्त उम्तर (क) प्रतिमें (५२) बंबर पर और (घ) (ङ) में चौबन (५४) बंबर पर है ।

४९—१ (स) या पुर कौ रस घोरि के आवी फिर इहि देस

विरोध—

उक्त उम्तर (घ) प्रतिमें अइत्यन्तिस बंबर पर और (घ) में इत्याचन बंबर पर है ।

५०—२ (ङ) (त) कोऊ कहै कहे मधुप । कहा गुन-माहन-गवौ

३ " कगर-इदप सी गौंदि परम प्रेमिन-उबि पावौ ।

जाँनति हों सब-भाँति कै, सरबसु लियो चुराई;  
 ऐसेँ कहु भज-वासिनी, को जु तुम्हें पतिपाई ॥  
 —उहे सब जानिके ॥

५१

कोहू कहै रे मधुप, कहा तू रस कोँ जानें,  
 बौहौत कुसुम पै बैठि, सबै आपुन-रस मानें ।  
 आपुन-सी हम कोँ कियोँ चोहति है मति-सँद;  
 दुबिधा-रस उपजाइ केँ, दुखित-प्रेम-आनंद ॥  
 —कपट के छंद सों ॥

पाठान्तर—

- १ (३) (५) हौँ जाँनति हरि भाँति कै सब कसु सम्यो चुराई;  
 जबवा—( ५ ) जाँनति हौँ हरि भाँति सब सरबसु लियो चुराई;  
 २ (६) (७) ऐसेँ कहु भजवासिनी को जु तुमैं पतिपाई ।  
 जबवा—( ७ ) एँ बीरी भजवासिनी जाहि तुम्हें पतिपाई ।  
 ३ —उये इस जानिके ।  
 ५१—४ (५)(६)(७) कोहू कहत भइो मधुप जाहि तू रस कोँ जानत  
 ५. " बहू कुसुमन पै बैठि सबै सम-रस करि मानत ।  
 जबवा—( ५ ) ( ७ ) अमित कुसुम पै बैठि सबै आपन रस मानें ।  
 जबवा—( ६ )—बहुत कुसुम पै बैठि-बैठि सबही सम मानें ।  
 ६ (क) (ग) आपुन सी हम की कियोँ चोहति तू मति-सँद;  
 जबवा—( ५ ) 'सम अपनै हमकोँ कियोँ चोहति कयी मति-सँद;  
 ७ " दुबिध-रवान उपजाइ सित दुखित प्रेम-आनंद ।  
 जबवा—( ५ ) 'स्वान-दुबिध उपजाइ मन पारि प्रेम के कद ॥

विशेष—

पद्यासर्वां छन्द ( छ ) प्रति में इक्ष्वाक्य मंत्र पर और इक्ष्वाक्य मंत्र  
 चक्र पद्यास मंत्र पर है इमी तरह ( क ) प्रति में पद्यासर्वां छप्पन  
 मंत्र पर और इक्ष्वाक्य सर्वां उभयस मंत्र पर उद्धत है ।

५२

कोह कहै रे मधुप, नाहिं पट-पद-पसु देख्यौ,  
 अबलौ या ब्रज-दम माँहिं कोहु नाहिं विसेस्यौ ।  
 द्वै-सिंघ आँनन-ऊपरै, करौ, पीरौ—गात;  
 खल अमृत सब मानही, अमृत—देखि डरात ॥  
 —बाद ये रसिकता ॥

५३

कोह कहै र मधुप, बाँहौत निरगुन इन्ह बान्यो,  
 सरक-बितरकौन जुक्ति बाँहौत उन्ह-ही में मान्यो ।

पाठान्तर—

- ५२—१ (क) (घ) कोह कहै अहो मधुप प्रेम-पद की मुख देख्यौ  
 अथवा— ( च ) कोह कहत रे मधुप प्रेम-पद-पद-पसु देख्यौ  
 अथवा— ( ष ) कहै कोह अहो मधुप कहूँ पसु पद-पद देख्यौ  
 २ " अब की याहि बिदेस माँहिं कोह नाहिं विसेस्यौ ।  
 ३ तैसीहँ सुरैग जति करौ पीरौ गतः  
 अथवा— ( क ) द्वै-सिंघ आनन पर जमे पीरौ करौ गतः  
 ४ " अमृत-सब गल मानही देखि छ अमृत डरात ।  
 अथवा— ( च ) गल अमृत सब पानही अमृत देखि डरात ।  
 ५ —बाद यह रस-कथा ।  
 ५३—१ ( ग ) ( घ ) कोह कहै अहो मधुप बहुत निरगुन  
 हम मान्यो  
 अथवा— ( च ) कोह कहत अहो मधुप निगुन हम बहुत करि जान्यौ  
 २ तब-विनकनि जुक्ति बहुत उन्हीं कह आ

वै इतन्हों नहिं जानि-हीं, वस्तु-विनां गुन नाहिं;  
निरगुन भए अतीत के, सगुन सबै अग माहिं ॥

—बुझि जो ग्यान होई !

५४

कोहू कहे रे मजुप, होहिं तुम्हसे जो संगी,  
क्यों न होहि सैन स्वाम सकल बातें चतुरंगी ।  
गोकुल में खोरी कोहू, पाई नाहिं सुरारि;  
ज्यों षु त्रिमंगी आपु हे, त्यों करी त्रिमंगी-नारि ॥

—रूप, गुन, सील की ॥

अर्थ— ( ४ ) तरक बितरक्य शक्ति छु करि अगहीं ते माखी ।

१ ( क ) ये इतनी नहिं जानहीं विनां वस्तु गुन नाहिं ।

२ " निरगुन सबै अतीत के सकल सगुन अग माहिं ॥

अर्थ— ( ५ ) निरगुन-सक्ति छु स्वाम की कही समुपता माहिं ।

३ —सत्ता सुन स्वाम के ।

विशेष—

तिरपन नंबर का चौथा चरण और छप्पसि नंबर का चौथा चरण हीमें एक-से हैं ।

शासन मधरखाला छन्द—“कोहू कहे रे मजुप नाहिं परपर  
सु देखी” ( ५ ) प्रतिमें तिरपन नंबर पर आर तिरपन नंबर काच छन्द  
उसी प्रतिमें चक्षपन नंबर पर छिला है ।

५४—४ ( म ) ( म ) कोहू कहे अही मजुप हीहिं जो तुम सौ संगी

५ " होहि न कही सन-स्वाम सबै बातें चतुरंगी ।

६ " खोरी गोकुल में कोहू पाई नाहिं सुरारि

७ " मरी त्रिमंगी आपु है कही त्रिमंगी नारि ॥

अर्थ— ( ५ ) मदन-त्रिमंगी आपु हैं करी त्रिमंगी-नारि ।

अर्थ— ( ६ ) कठित-त्रिमंगी आपु उषी करी त्रिमंगी-नारि ॥

५५

कोह कई रे मधुप, स्याम—जोगी तू चेला,<sup>१</sup>  
 कुबजा—तीरथ जाइ कियो इन्द्रिन के मेला<sup>२</sup> ।  
 मधुवन-सुधि बिसराइ के, भाए गोबुल मॉहिं;<sup>३</sup>  
 यहाँ सब प्रेमी बनें, तुम्हरे गाइक नाँहिं ॥  
 —पधारी रावरे ?

५६

कोह कई रे सुन्वी, मानु मधुवन के ऐमें,<sup>४</sup>  
 और यहाँ क मिट्ट-लोग, हँ ई घों फसें ।

पाठान्तर—

- ५५—१ (४) (५) कोह कई अहो मधुप स्याम-जोगी तूम चेला  
 २ " कुबजा-तीरथ जाता कियो इन्द्रिन के मेला ।  
 अथवा— (५) तीरथ-कुबजा जाइ करी इन्द्रिन के मेला ।  
 ३ मधुवन सुधि बिसराइ के भाए गोबुल मॉहिं ।  
 अथवा— (६) मधुवन मिट्ट बढ़ाई के, भाए गोबुल मॉहिं ।  
 अथवा— (७) सुधि-मधुवन बिसराइ के पढ़े के गोबुल मॉहिं ।  
 ४ (५) (५) इत सब प्रेमी बनल हैं तुम्हरे गाइक  
 अथवा— (६) प्रेमी इत सब बनल हैं गाइक तुम्हरे गाइक

विशेष—

श्रीकृष्ण ( क ) प्रतिमें उनमद अंशक ( ५ ) अंशक  
 साठ अंशक पर और इसी तरह ( ५ ) प्रति में अंशक अंशक ७ ३  
 तथा अथवा अंशकअथ अंशक ( ५ ) प्रति में अंशक अंशक ( ३ )  
 प्रति में अथवा अंशक पर है ।

५६—५ (५) (६) कोह कई रे सुन्वी, मानु मधुवन के ऐमें,  
 और यहाँ क मिट्ट-लोग, हँ ई घों फसें ।



भौगुन-ही गदि लेसि हँ, औ गुन चारें मेंटि;<sup>१</sup>  
 मोहन निरगुन होहिं क्यों न, उँन्ह साधुँन को मेंटि<sup>२</sup> ॥  
 —गाँठि औ खोइ कें ॥

५७

कोहू कहै रे मधुप, ग्याँन उलटौ लै जायौ,  
 मुक्ति पर जे लोग, तिन्हें फिरि करँम बतायौ<sup>३</sup> ।  
 बेद-उपनिषद-सार जो, मोहन-गुन गदि लेसि;  
 तिन्ह कों आत्म-सुद्धि करि, फिरि-फिरि सबा बेति ॥  
 —योग-षटसार में ।

५८

कोहू कहै सखि, बिख-मोहिं जेतक हँ कारे,<sup>४</sup>  
 कोटि-कपट की सौँन, कुटिल-मानस बिपहारे<sup>५</sup> ।

पाठांतर—

१ (अ) (त) भौगुन-गुन गदि लेसि हँ गुन की चारत मेंटि।

२ " (प) मोहन-निरगुन को गदि हम साधुन को मेंटि ।

५७—३ (ग) (प) कोहू कहै बहो मधुप ज्ञान की उकरी क्यौ

४ मप मुक्ति जे लोग, करम फिरि तिन्हें बतायौ ।

कथवा— (अ) मुक्ति मप को रसिक ! तिन्हें क्यौ करम सिखायौ ।

विशेष—उप्यत नंबरवाका उक्त उक्त (अ) प्रति में अट्ठावन नंबर पर और सत्तावन नंबर का उक्त उक्त प्रतिमें बीसव नंबर पर उद्धृत है ।

५८—५ (क) 'कोहू कहै रे बिखु मोहिं हँ बेसिक कारे

६ कपट कोटि के परम-सुद्धि मानुष बिपहारे ।

(अ) कपट कुटिल की कोटि परम-मानुष बेसिहारे ।

(ब) कुटिल कपट की कोटि परम-मानुष भसिहारे ।

एक स्याँम-तँन परसि कें जरत आधलों अंग;  
ता पाछें ये मधुप फिरि, लायौ जोग-सुअंग ॥

—कदा इन्ह कों दया ?

५९

कोह कहै र मधुप, कइत अनुरागी तुम्ह कों;  
कौने गुनधों जानि ? परम अचरज है हम कों ।  
कारौ-तँन अति पातकी, सुख-पियरौ जग-निंद;  
गुन-औगुन सब आपुने आपु-हिं जौन अलिंदे ॥

—दखि, लै आरसी ॥

६०

या बिधि सुमरि गुबिंद, कइति ऊधौ-प्रति गोपीं,  
भृंग-संग्या करि बइत सकल झुल-लज्जा-लोपीं ।

पाठान्तर—

- १ (म) ता पाछें यह मधुपहू कायौ जोग-सुअंग ।  
५९—२ (ब) (ज) कोह कहा कहौ मधुप कहैं अनुरागी तुम्ह कों  
३ कीने गुन की जान धई अचरज है हम की ।  
४ " " कारौ-अन बहु पातकी पियरा-सुख जग-निंद ।  
५ (घ) "अबगुन-गुन सब आपुने आपु-जान अलिंदे ॥  
६ " " —दखि गहि आरसी ।

टिप्पणी—

अनुपम मंजरबास्य यह उम्द (घ) प्रति में मैनालीम मंजर पर और उममड मंजरबास्य उम्द उममम मंजर पर (क) प्रति में उमम मिमम है ।

- १ --० (ग) या बिधि सुमरि गुबिंद कहैं ऊधव प्रति गोपीं  
८ " संग्या भृंग करि बइत नरे जज्जा कुन कोपीं ।

छा-पाछें एक बार-ही रोइ उठीं ब्रव-नारि;  
हाफरुनाँ-मै नाथ हा, फेसौ, कृष्ण, मुरारि ॥

—फाटि हियरौ चल्पौ ॥

६१

उँमग्यौ ब्यो तहँ सलिल, सिंधु-सौ वन की धारेंन,  
भीजे अंबुज-नीर, कंधुकी, भूपँन, हारेंने ।  
ताही प्रेम-प्रवाह में, ऊँवा चल्पौ बहाई;  
भली ग्याँन की मैदि-सी, मज में प्रपठ्यौ आव ॥

—कूल कौ ठँन भयो !

पाठान्तर—

- १ ( ब ) छा पीछें एक बारही उठीं रोइ ब्रव-नारि।  
अपवा— ( म ) तम-मज में उबि स्थामकी देखी बई दिखाइ।  
२ " जिमि गोस्मारेरस मिलैं मैकु न बिकना जकाइ।  
३ " —अबिकता प्रेमकी ?  
६१—१ ( ल ) ( ग ) उँमग्यौ उँवी ब्येड मकिळ-सिंधु वनकी करि चारन  
अपवा—( ठ ) उँमग्यौ ब्येड ओ सलिल जजु मैनबि की धारा  
५. " भिजवति औ बहि जति कौतुकी सिंधु-अपवा ।  
६ छाहि प्रेम-मय सिंधु में कपव बके बहाइ।  
७ ( छ ) —कूल-उरव मए ॥  
( ण ) —सकल कुक हरि गयो !  
( ९ ) कूल के एव मए ॥

६२

प्रेम बिबम्पा दस्ति, सुदि अति भक्ति-प्रकासी,  
दुबिधा-ग्याँन-गिलौन मंदता सिगरी नाँमी ।  
कइति अहो निमचै यई, हरि-रस की निज-पात्र;  
हों तां कृत-कृत हूँ गयो, इन्ह क दरमँन भात्र ॥

मेदि मल-ग्याँन की ।

६३

पुनि-पुनि कहि 'हरि' कहँन पातण्कांत पठायाँ,  
मै इन काँ कहु मरँम आनि एकौ नहि पायाँ ।  
हों कइो निज-मरजाद की, ग्याँने-करँमनि रोपे;  
ए मब प्रेम-असक्त हूँ, रही लाज-कुल-छापे ॥

—धर ए गापिका !

पाठ्यार—

- ६१—१ (न) (न) प्रेम-बिबम्पा करति सुदि ओ भक्ति-प्रकासी ।  
२ कहति भया निमचै यही हरि-रस की निज पात्र ।  
अवसा— (म) निमचै यही ए हूँ अहो हरि-रस की मब पात्र ।
- ६२—१ (क) पुनि मज मै कहि कइँन पातण्कांत पठायाँ ।  
२ " मै इन काँ कहु मरँम आनि कइँ कइँ पायाँ ।  
अवसा— (ल) इन काँ ही कहु मरँम आनि कहि कइँ पायाँ ।  
५ (व) हों तू निज मरजाद की ग्याँने कर्म कइँय रोपे ।  
६ वे मज प्रेम-असक्त हूँ निज-कुल-छापे कीये ।

६४

जो ऐसे मरबाद-मेंटि मोहन को प्यारें,  
 क्यों न परम-आनंद-प्रेम-पदवी को पावें ।  
 ग्यान, जाग सब करैम ते, प्रेम-परे जाइ साँच;  
 हों इन्ह पटतर बेति हों, हीरा-आगें काँच ॥

—विपक्ता बुद्धि की ।

६५

धम-धम ए लोग, मज्जत जो हरि को ऐसे,  
 और कोह बिन रस-हिं प्रेम-पावत कही कैमें ।  
 मेरे वा लघु-ग्यान को, रानी सु मद है ग्याधि;  
 अब सान्धों प्रज-प्रेम को, लहति न आर्धो-आधि ॥

—दुर्धो सँम करि मरयो ।

पाठ्यम्तर—

- ६४—१ (क) -- ऐसे के मरबाद-मेंटि मोहन की प्यारें  
 २ कहे न परमाबंद प्रेम-पदवी की पावें ।  
 अथवा— (ख) कहे न प्रेमामंद-प्रेम पर वी को पावें ।  
 अथवा— (ग) कहे न परमाबंद प्रेम-पदवी लुपु पावें ।  
 ३ ग्याम, जाग सब करम सी प्रेम-पये के साँचु ।  
 ६५—४ (ब) (ब) (न) धम धम ऐ धम मज्जै हरि की को ऐसे  
 ५ और सु वास्त प्रेम-चिका पावत कहु कैमें ।  
 ६ , मेरे वा कहु ग्याम की डर-अदरही उपाधि  
 अथवा— (ब) वा कहु मेरे ग्याम की मम में मर रहती बाधि ।

६६

पुनि कई परमि सु पाँइ, प्रथम हों इन्हें निवारणौ,  
 सृंग-संग्या करि कहत, निंद सबहिंन सें ठारणौ ।  
 अब हूँ रहों ब्रह्म भूमि के, मारग में की धरि;  
 बिचरत पग मा पै परे, सब-सुख-जीवन-भूरि ॥

—सुनिन्द दुरलभ अहँ ॥

६७

कै हूँ रहा हुम-गुचम, लता, बेली बन-भाँही,  
 आवत-जात सुभाइ परै मो पै परछाँही ।

पाठ्याम्तर—

- ६६—१ (ब) (स) पुनि कई परमम पाँइ प्रथम मैं इन्हें निवारणौ  
 जयवा— (ब) कई पुनि परमम पाँइ सबमि ही प्रथम दि बारी  
 २ " भृंगी-संग्या करत किसइ-गुन-गुन विचारी ।  
 ३ अब रहि हीं ब्रह्म-भूमिही हूँ पग-मारगपूर।  
 जयवा— (स) तब अति सी हृत-हृत हूँ भूँच बसै सह शौहा  
 ४ " अबह ते मनुकर धरौ सुधा-जोग मियाइ ।  
 ५ (क) —सुनिन्द दुरलभ अहँ ।  
 जयवा— —सुनिन्द दुरलभ अहँ ।  
 ६७—१ (क) कसै होँहु हुम कटा बेलि, बली बन भाँही  
 २ (ख) परै सुभावात-जात मरुँ मो पै परछाँही ।  
 ३ गी ३—

सोऊ मेरे बस नहीं, ओ कछु करों उपाई;  
मोहन होई प्रसन्न ओ, मै बर माँगों जाई ॥

—कृपा-करि देखि जा !

६८

पुनि कहि सब तैं साधु-सग, उचम है भाई ?  
पारस-परसे लोह, तुरत कंचन है जाई ।  
गोपी-प्रेम-प्रसाद सो, होई ही सीस्यो आई;  
ऊधौ ते मधुकर भयो, दुबिधा ग्यान मिटाई ॥

—पाइ रस प्रेम कौं ।

६९

ऐसें मग-अभिलाषि करत मथुरा फिरि आयौ,  
गदगद, पुलकित अंग अंग आवेस जनार्णौ ।

पाठप्रार—

- १ (क) मेरे बस नही करी तु कछु उपाइ;  
२ मोहन होई प्रसन्न ओ बर-बर माँगो जाइ ॥

विशेष—

छाकठर्षो छन्द ( क ) प्रतिमें सदसक नवरपर और अदसठर्षो छन्द  
छाकठ नवरपर सिद्धा है ।

- ६८—३. (क) " कहि पुनि सब तैं संग-साधु उचम है भाई  
४ परसे-पारस लोह दिनक कंचन है जाई ।  
५. (ग) (क) स्वोति-रूप सीपहि मिले सुख्य होत सुमाइ;  
६ नीर-नीर संग के मिले बिसय-रूप बरसाइ ॥  
७ " " —सग को गुन कन्ये ॥

- ६९—८ (घ) (घ) एहि विधि मन अभिलाष करत मथुरा पुनि

गोपी-गुन-भावैँन लग्यौ, मोहन-गुन-गयौ भूलिं;  
 क्षीयैँन काँ लैँ काँ करौँ, पायौँ जीवैँन-मूलि ॥

—भक्ति कौ सार ओँ ॥

७०

पेसैं सोचत, स्याँम जहाँ राजत तहँ आयौँ,  
 परकमा, बँहौत, प्रेम सौँ हव जनायौँ ।  
 लखि निरदइता स्याँम की, करि क्रोधित दोहु नैँन;  
 पुनि ब्रज-भनिता-प्रेम सौँ बोलत रस-भरे बँन ॥

—सुनौँ, नैँद-लड़िले ?

पाठ्यन्तर—

- १ (प) (म) गद-गद पुलकित हीम बंग आवैँस जनाबी  
 २ " " —भक्ति कौ सार यह ?  
 जपवा— (ब) —भक्ति कौ मूल ये

विशेष—

अङ्गमडरौँ छन्द ( क ) प्रथिमें छण्ड नंबरपर उद्धृत मिष्टता है ।  
 इस छन्दका बीया बरतन जैसे—'रूपी तैं मयुकर भयी बुबिया-जोग-  
 मिटाइ' सदसद्वैँ-छन्दके पाठ्यन्तरमें उद्धृत किया जा चुका है । यथा—  
 तब कतिसे हज-हज टैँ धूँब बसे सहि पाइ ।  
 'उद्धृत तैं मयुकर भयी मुद्रा-जोग मिटाइ !'  
 —कही यह संरदा ।

जपवा—

"रूपी तैं मयुकर भयी बुबिया-जोग मिटाइ" ॥

- ७०—१ (क) (ह) क्यैँ स्नेहन जहाँ स्वाम तहँ अपर्या-यायौँ  
 २ " " करिहरमा बँहौत सुहरि आवैँस जनाबी ।  
 ३ (ब) (उ) क्यु निरदइता की कति करि क्रोधित दोहु नैँन;  
 जपवा— (स) निरदइता कति स्वामकी क्रोधित करे दोहु ।  
 ४ (ब) (उ) क्यु ब्रज-भनिता प्रेमकी बोलन रसभरे बँन ॥



७१

‘कल्पनामई-रसिकता है तुम्हरी सब शूटी,  
 सब ही लों कही लास, जमी लों बंध रही मूठी’ ।  
 मैं जान्यों प्रब जहके, निरदै तुम्हरो-रूपे;  
 जो तुम्ह को जगलंब-ही, किन्ह को मेलौ रूपे ॥  
 —कौन ये धरम है ।

७२

पुनि-पुनि कही अहो स्वाम, कलौ बृंदावन रहिये,  
 परम-प्रेम की पुज वहाँ गोपिन्द-संग छहिये ।

पाठान्तर—

१—जयवा—(स) प्रब-वहितन कहु प्रेम कधि, रस-भरे जोकल पैव ॥

जयवा— कहु बिरहपता स्वाम की स्नेह समक दोन पैवा ।

७१—१ (क) (ख) कल्पनामै की रसिक-प्रकृति तुमरी सब शूटी

जयवा— (प) कल्पनामयी रसिकता सब तुम्हरी जति शूटी

२ " " जब ही लों कही लास तहाँही लों बँधी मूठी ।

जयवा—(क) प्रब-वहितन बुज-दमो सबब-भव करि निज शूटी ।

३ (क) (ख) जान्यों प्रब मैं जाहूँ है तुम्हरो निरदै-रूपे

४ " " तुमकी जो जगलंब ही मेको निज को रूप ॥

५.

—कौन से धरम है ।

७२—१ (क) (ख) पुनि-पुनि कही है स्वाम जाहूँ बृंदावन रहिये

२ " " प्रेम-पुज तैं तनक-प्रेम ज्योनि-संग छहिये ।

और संग सब छाँड़ि कैं, उन्ह-लोगँह सुख-देहु,  
नातरु दृख्यौ खास है, अब-हीं नेह-सनेहु ॥

—कौगो फिरि कहाँ ?

७३

सुनति सखा के बेंन, नेंन भरि आए दोऊ,  
बिबस प्रेम-आबेस रही नँदिन मुधि कोऊँ ।  
रौम-रौम-प्रति-गोपिका, भई साँबरे-गाते,  
कल्प-तरोरुह-साँबरी, प्रज-बनिता हीं पात ॥

—उलहि अँग-अँग ते ॥

७४

है सचेत, कहि भले सन्ना, पठ्यं मुधि श्यावनं,  
ओगुन हमर आँनि, तहाँ से सगे दिखावन ।

पाठान्तर—

१ (क) (घ) भौरु काम संग छाँड़िकैं प्रज-बनितक सुख देहु  
२ (ब) खासक दृख्यौ जाहगी सबै ह नेह-सनेहु ॥  
३ —कौगो लौ कहाँ ?

७३—४ (क) बिबस प्रेम के भएँ रही मुधि नही कोऊ,  
५ रौम-रौम में गोपिका भई साँबरे-गाता

अथवा— (ग) रौम-रौम प्रति गोपिका है गई साँबरे गाता

अथवा— (घ) रौम-रौम सब गोपिका है रही साँबरे-गाता

६ (घ) काम-तरोरुह साँबरी प्रज-बनितक भई पात ॥

अथवा— (ङ) काम-तरोरुह रम रही प्रज-बनितकके पात ॥

७४—७ (घ) (ङ) (ज) है मुचेत कहि कप्यौ सन्ना बहरी  
मुधि कावन

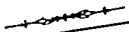
८

अगुन हमरे आँनि तहाँ से सगे दिखावन ।

उन में, मो में हे सखा, रंचक-अंतर नॉहिं;  
 ज्यों वीखत मो-मॉहिं वे, त्यों होंहूँ उँन्ह मॉहिं ॥  
 —सुरंगनि-बारि ज्यों !

७५

गोपी-रूप दिखाइ सबै मोहन, बनबारी,<sup>१</sup>  
 ऊधौ म्रमहिं निबारि, बारि पुनि मोह की बारी ।  
 अदभुत रूप बिहार कौ, लीन्हौ बहुरि दुराह;  
 “नंददास” पावन भयो, सो वै लीला गाई ॥  
 —प्रेम-रस-सुजनी !



पाठान्तर—

- १ (क) (ख) (ग) मो में उन में अंतरौ एकै छिब भरि जाहिं।
- जयवा— (ख) उब में मो में अहो सखा ! छिब भरि अंतर बाहीं।
- २ ज्यौ देखी मो मॉहिं वे ही हूँ उन्ही मॉहिं ॥
- जयवा— (ग) ज्यौ देखी मो-मॉहिं वे त्यों में उन्ही मॉहिं ॥
- ३ (क) गोपी आप दिखाइ पञ्ज-अरि हैं बनबारी
- जयवा— (ख) ऊधौ के भरे प्रेम बारि वरामोहक-बारी ।
- ४ (ख) कपव-म्रम छ निबार बार मुल मोह की बारी ।
- जयवा— (ग) जयुनी रूप बिहार कौ लीन्हौ बहुरि दुराह
- जयवा— (घ) कपवी रूप दिखाइ के, लीन्हौ पुनहिं दुराह
- जयवा— (ङ) इस कपव जानी नहीं जोड़ी करि हैं मीठि।
- ५ मछी मई मसु सी बडी जग में बड्डी रीति ॥
- जयवा— (ङ) “जय-मसुजनी” पावन भयो रस-कीका हरि गह ॥
- ६ (क) —बहरी रीमोच है ।

---

---

टिप्पणी

और

सम-भावद्योतक सूक्तियाँ

---

---



# टिप्पणी और सम भावद्योतक सूक्तियों

कमानकृती पूर्व-मीठिका—'उदबन्त गोविणो से वृष्ण-संदेश कहने  
बना ।'

उदब—( उभौ ) ( उभर ) पाण्डव-वशी श्रीरुष्णके मन्त्र, मित्र,  
पार, दोस्त वा भक्त । जैसे—

पृष्णीनां प्रयतो मन्त्री वृष्णस्य दयिताः सत्ता ।  
शिष्यो वृहस्पतेः साभ्रादुदयो बुधिसत्तमः ॥  
( श्रीमन्ना० १ । ४५ । १ )

उदब, देष्मी अर्थात् गुरसेनक्री श्री 'मारिया' से उत्पन्न 'देव-  
भाग' क पुत्र थे ।

इवमीदम्य शूरस्य मारिया माम पम्पयभूत् ।  
तस्यां स जनयामास इति पुत्रानकन्मरान् ॥  
पत्तुरेयं दयभागं देवधयसमानकम् ।  
एतदयं दयामर्कं कर्तुं नामीकं यस्तर्कं पृकम् ॥  
( श्रीमन्ना १ । २४ । २७—२९ )

ऊँची—

ऊँची सर्वेन समोधि बौधि कौम्य श्री पत्रिका ।

( नकलीत कवि )

( उपदेश )—शिक्षा, दीक्षा, हित-कथन, सिखावन, सीख, नसीहत । ब्रज, सं०—ब्रज—गौ-स्वान, मधुप-मण्डल, समूह—

समूह-निबद्ध-व्यूह-सर्वोद्-विसर प्रजा ।

( अमरकोश २ । ५ । १९ )

नागरी— नगरमें रहनेवाली, प्रवीण, चतुर ली । यहाँ नागरी शब्दका अर्थ इससे सम्बन्धित भ्रज का वाक्पत्रकर श्रीविद्योपी हरिजीन अगमे पहले सस्वरण भ्रज-माधुरी-सार में और श्रीबानू बजरसप्तश्रीने स्वसम्पादित अमर-गीता में ( नागरीका अर्थ ) भ्रजवासिनी अथवा भ्रज-निवासिनी किय है, जो उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि ब्रज में नगर-निवासिनी त्रियों नहीं रहती थीं—निवास नहीं करती थीं । अतः यहाँ दोनों अर्थात् भ्रज और नागरी का अर्थ एक साथ ही होगा । ब्रज-नागरी—ब्रज की चतुर वा प्रवीण ली, या त्रियों ।

रूप—विष्टी का वह गुण जो चक्षुरिन्द्रिय-द्वारा जाना जाता हो, अथवा पदार्थों के बगों व आकृति का योग जिसका ज्ञान नेत्रोंके होता हो । रूप, आकार, आकृति और सुन्दरत्वका भी नाम है ।

पदार्थमें एक शक्ति संनिहित रहती है जिससे दृश्यको उन पदार्थोंकी आकृति और बर्गीकृत ज्ञान वा बोध हुआ रहता है, इसलिये इस शक्तिको 'रूप' कहत हैं, क्योंकि दशान-शास्त्रकारोंने

मरको चक्षुरिन्द्रियका ही विषय माना है। वैज्ञानिक-दर्शनकार इसे (रूप) गुण मानते हैं।

‘रूप शब्दो गन्धस्सस्पर्शाश्च विरगा ममी ।

( अमरकोष १।५।१५ )

सांख्यकार इसे पञ्चतन्मात्राओंमें एक तन्मात्रा और बौद्ध दर्शनकार मरको पाँच स्वर्धर्मोंमें पहला स्वर्धर्म कहते हैं। वेदान्तदर्शनमें इसको एक उपाधि नामसे उद्बोधित किया है, अल्प ‘रूप’ सोलह प्रकारका होता है—‘क्षुल्ल, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, घुम्ब, वृष्ण, मीनारुग, रक्त, पीत, कट्टिन, विभ्रग, कृष्ण, पिच्छक, घट्टु और दारुण ।

शील वा शील—उत्तम-स्वभाव, चाण्डम्यवहार, वृत्ति, चरित्र, उत्तम-आचरण, अल्प चाण्ड-घट्टन आदि-आदि ।

बौद्ध-शास्त्रकारोंने ‘शील’ के हिंसा, स्पेन ध्यभिचार, मिष्य मारण, प्रमत्त, अराराह-भोजन, मृत्प-गीलादि, मान्य-गन्धादि, उषास्त्रन शय्या, द्रव्य-संप्रदाह और इन सबका त्याग इत्यादि दस प्रकार माने हैं। कहीं-कहीं ‘अप्यशील’ भी कहे जाते हैं, पर यह ‘शील’ उ या दस पारमित्योंमेंसे एक है, जो कि तीन प्रकारका कहा जाया है—सम्भार, पुत्रान्त-संसाह और सत्प्रय-क्रिया ।

( हिरी पद-भाग १११ )

पर—

‘‘नित्ति स्वभाये सद्वृत्ते सस्ये इतुरने वरम् ।

अर्थात्—सुखमार, प्रवृत्ति, अल्प वग आदिको ही ‘‘शील’’ कहते हैं ।



शुचौ तु चरिते "शीलम्"

।

(अमरकोश १।७।२९)

लाभम् (लक्ष्यम्) — तमकनि, कल्पत सुन्दर, सुनार्थ  
सर्वै—सम्बन्ध, सम्पूर्णकर बहुवचन । गुण-आग्री—गुणोत्की अत्र  
समूह । गुण—बह धर्म वा मन्त्र अपवा सिद्धता जो किसी वर  
सम्बन्धित हो—अभि हो ।

सांख्यकार तीन गुण मानते हैं, सत्त्व, रज और तम ।  
तीनोंकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं । जिससे कि सृष्टि उ  
होती है—विकसित होती है । सत्वगुण हल्का और प्रकाश क  
वाच्य, रजोगुण चञ्चल व प्रवृत्तिकर तथा तमोगुण भारी ।  
रीकनेवाच्य कहा जाता है । इन तीनों गुणोंका यह साम्या  
धर्म है कि वे परस्पर एक दूसरेको दमते हुए अपना-अपना प्र  
दिखते और एक दूसरेके आग्रहमें रहते, एक-दूसरेको उत्पन्न क  
रहते हैं । जिससे जाना जाता है कि सांख्यमें गुण एक प्रकार  
द्रव्य है—तरल पदार्थ है, जो विविध धर्मोंसे घूसरित है व  
जिससे विविध पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं । विद्वान भिक्षुका अभि  
है कि जिससे अज्ञानके वन्धनार्थ महात्तत्त्व आदि रमणीय रज्जु ती  
होता है उसीको सांख्यकार "गुण" कहते हैं । वैशेषिक गुण  
द्रव्यके आश्रित मानते हैं और उसकी परिमाणा इस प्रकार सिद्ध  
हुए कहते हैं कि—"जो द्रव्यमें रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण  
हो और जो सयोग-विमोक्षण कारण न हो उसे "गुण" कहा जा  
है । रूप, रस, गन्ध, शक्ति, परत्व, अपरत्व, गुण्य, द्रव्य, स्नेह और  
वेग—ये मूल-द्रव्योंके गुण हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रपन्न,

धर्म, अधर्म, भावना और शब्द—ये अमूर्त-द्रव्यके गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग और विभाग, मूर्त और अमूर्त दोनों द्रव्योंके गुण हैं। यह गुण दो प्रकारके होते हैं—विशेष और सामान्य। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांख्यिक द्रव्य, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये 'विशेष' गुण हैं अर्थात् इनसे द्रव्योंमें भेद माना जाता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, फल, अमरत्व, गुरुत्व, मीमितिक-द्रव्य और वेगदि 'सामान्य' गुण हैं। द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है, पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता। कर्म सयोग-विभागकर कारण होता है 'वित्त' 'गुण' नहीं। गुण—सधि, विप्रद, यान, आसन, दैध और आश्रय इन छहोंके राजनीति शास्त्रकी परिभाषामें 'गुण' ही कहा जाता है। यथा—

सन्धिनापिप्रदो यानमासन द्वैधमाश्रयः।

एह 'गुणाः' - - - - - ॥

कोशोंके अनुसार धनुषकी डोरीको भी गुण कहते हैं, यथा—

मौर्ष्या ज्या पिच्छिनी गुणाः" ( अमरकोश )

ब्रज-नागरी, रूप, मीन्द्र, छादन्य और गुण-आगरीके सरस-प्रयोग।

"अरी ब्रज-नागरी" प्यारी रैजा मेरा रौन।

—समानन्ददास

एव' अनीवी पाहें को करति है मौन-गुमौन।"

—वृष्णदास

संस्कृत-शब्दोंके रूप 'शब्द'का व्यवहार हम 'अमरगीत' में ही ( १७ ) : १८ २१ २४ २८ ६० १९ ४२ और ७५ नम्बरके छन्दोंमें सुन्दर रूपसे किया है जो पर भवती 'धाम गद्याप्यारी' जैसा नहीं, जैसा—  
मर बामरर हँसी कपो निराली-अरिपेक अय ।  
'रूप'—इहंवि इतरति ईर्ष्या-सीव-वीनि अय ॥

‘सीक’ सँकोच न रखिदु प्यारे ।”

—परमानन्ददास

“कहि न सकति ‘अकल्पता’ खिरति-राज-कुमारी ।”

—बाबा कृष्णानन्ददास

‘कबीली-आगरी ‘गुन-आगरी’ मेरी मज मोहि किचै ।”

—धरदास मदनमोहन

प्रेम-धुजा, सुदसस्वरूप-प्रमथुजा—प्रेमकी धुजा, वर्षात् प्रेम करनेवालोंमें अग्रगण्य, अगाड़ी गिनी जानेवाली ।

प्रेम-धुजा ( प्रेमधुजा ) पर कुछ इसी भावको—मन्ददासजीकी इसी सौन्दर्यमय सूक्तिको, परमानन्ददासजीने बड़ी सुन्दर रीतिसे वर्णन किया है—

गोपी प्रेम की धुजा ।

बिँदा गुणक कियु जपने बस उर बरि लौम-धुजा ॥

मुक-मुनि ब्यास प्रमसा कीन्ही कबी-संत-सरौही ।

भूरि-भाग गोकुल की बनिता अति-पुनीत धुम-मौही ॥

कहा भयो विप्र-कुल जबमें जो हरि-सेवा मौही ।

सौह कुलीन दास परमार्थ के हरि सनमुख मौही ॥

हारे माननीय स्वर्गीय कवि श्रीनवनीतनी भी यही कहते हैं—

नगरद परासर हँ जादि ब्यास मुकदेव

मुखित मसख गोरि कीन्ही बौह बस की ।

नवनीत प्यारे के प्रतापी भुव खरीगर

प्रीति-पिरबी में नीम लौरी लौम कम की ॥

परम-पुनीत वैहकाद परबेटा किचै

उदक अवस्य छत छई वैह बस की ।

मत्र मा महक त्वाक कम्म कम्हवात्थस

प्यारी-ममा गोपिअ 'पुजा' ई मम-रस की ॥

रम-रानी—रम-म्य-रिगी, अयात् रमों की साक्षात् मूर्तियों ।

रम—रस नौ प्रकारके मान जात हैं । यथा —

शृङ्गारहास्यकरणरीश्रीरभयानका ।

वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्मया मताः ॥

( गणित्यदर्पण ३ । १८२ )

अर्थात्—शृङ्गार, हास्य, करुण, रीति कीर भयानक, वीभत्स

अद्भुत और शान्त आदि । यद्य-यद्य शान्तयुग प्रगामकर करके आठ  
रस ही मानत हैं ।

शान्तस्य शमसाध्यादट च तदमम्भयात् ।

भद्रापथ रसा मान्य न शान्तस्तत्र युज्यत ॥

अथवा—

भद्रापथ रसा नाट्येष्विति कश्चिदधुसुवन् ।

तदथाप यत कश्चित् रस स्वयम कटाः ॥

( मञ्जिराजकर ७ । ११७ )

पुत्र मग गमन्य—रस व्याप्य-रसा आर करण्य-रसवे  
साथ भक्ति-रस का भी इन नौ रसोंमें ही जाइत हैं ।

इस मग रस में मानत हैं—नुर, अष्ट, करुण, कटु,  
निक और कषाय । सुशुन-अनुसर जो मग्य मनुष्य जाता है उससे  
इसका रूप जो मग्य मनुष्य-मार बनता है वह भी रस कहलाना  
है । रस जन रस, मजरा भी रस है । गिहार, कर्षि, कर्म

झाड़ा आदिको भी 'रस' कहते हैं। उमर, जोश, के, गुण सिफत, बस, पानी आदिको भी 'रस' कहते हैं, परंतु श्रीनन्द दासजीन इन रसोंके लिये इस शब्दका प्रयोग नहीं किया है, अर्थात् यहाँ 'रस' शब्दसे यह अभिप्रेत अर्थ है, जिसके लिये सुलियों कहती हैं—

रसो वै सः । रस बोधायं लक्ष्यानन्वी भवति ।

( तैत्तिरीयोपनिषद् २ । ७ । १ )

कर्मोंमें भगवान्को 'रस' रूप कहा है—

अकामो धीर्यं असूतः स्वयम्भू रसेन तप्तो न कुतश्चनत्मा ।

तमव विद्वान् न पिभाष मूरयोरात्मान धीष्मजर युधानम् ॥

( भगवद् १ । ८ । ४४ )

अप्य कर्मों, उपनिषदों और ब्राह्मणोंमें जिस मधुर-रसका नाना प्रपञ्चसे वर्णन किया है, वही 'रस' यहाँ अभिप्रेत है—वहाँ अर्थ यहाँ इच्छित है ।

उपज्ञाननि—उपज्ञानवाली, पैदा करनेवाली । सुख-पुत्र—सुख-ता समूह, डेर । सुख—मनकी यह उत्तम तथा प्रिय अनुभूति जिसके द्वारा अनुभव करनेवालेको विशेष समाधान और सुतीव होकर है, अथवा जिसके बगैर अपात् हमेशा बने रहनेकी कम्पना करता है । वह अनुकूल और प्रिय-बेचना जिसकी सबको अभिप्रेत रहती है ।

सुखकी कुछ लोगोंमें हर्षका पर्यायवाची शब्द माना है, पर है दोनोंमें अन्तर । कर्म उत्तम ममाधार सुनने अथवा कोई उत्तम पदार्थ प्राप्त हानपर मनमें जो सहसा 'वृत्ति' स्फुरित होती है उस हर्ष कहते हैं ।

यथा—

विष-दूरयन् स्वप्नादिभिर् हाह जो द्विषे प्रमाह ।

—रेव

परन्तु 'धुम्बा' इस तरह आपस्मिक रीतिस नहीं होता, क्योंकि यह हृदयकी अपेक्षा अधिक स्वाद्या—रतक टहरनवाला होता है । अनक प्रयत्नरूपी चिन्ता कष्ट आदिमे अग्न रहनपर तथा अनकानक वासनाओंकी परिभूमि हानेपर मनमें जो व्याधी-प्यारी अनुभूतियाँ भङ्गकृत होती हैं वास्तवमें ज्ञाना वाय ता बड़ी सुख है । अतः इस सुखका कुछ महानुभावोंन मनका और कुछ लोगोंन आत्माका अनुभव धर्म माना है । म्याय आर वैशेषिक मतानुसार सुख आत्माका 'धुम्बा' है जो १ प्रयत्नका है—नित्य-सुख और अम्य-सुख । सांख्य और पतञ्जलिक अभिमतसे 'धुम्बा' प्रकृतिक धर्म है, तिसपरि उन्नति सख्यासे होती है । रचना भी तैल प्रयत्नका 'धुम्बा'—सात्त्विक, राजस और तामस मानसे मानती है । सात्त्विक सुख ज्ञान, धैर्य और ध्यानदिसे, राजसिक सुख विषय तथा इन्द्रियोंके मयगत आर तामसिक सुख आनन्द और उन्मात्स उत्पन्न होता है; किन्तु योशकर 'हृष' का ही 'धुम्बा' मानते हैं—

मुद् प्रीतिः प्रमदा हृष प्रमाशमादसमदाः ।

म्याशामम्बुपुषमम्बुशामातमुग्गानि च ॥

( अमरकोश १ । ५ । ३ )

गुंर-स्याम विद्वत्सनी—राम-सुन्दरक माय विष्णु परमशक्ति, अण्ड लीला कनका, ऐन्दवर्ग । धुम्बा-स्याम धैर्यका नाम

विशाल है। विलास या विश्रस—खन, क्रीडा, फलमुक्त, भोग, सुख,  
आनन्द ।

आत्मां विलासप्रियेष्वेकविधमा ललितं तथ्या ।

( अमरकोश १ । ७ । ३१ )

नय-कुंदावन-कुञ्ज—नयी, नूतन, नवीन-शीतुन्दावनकी कुञ्ज ।  
सृदावन—सुष्ठुर्माखनवन, कुञ्ज—प्रतापिसे टमरा हुआ स्थान ।

रम-रूपनी, उपजावलि, सुख-सुख, सुन्दर-स्यौम-विशामनी,  
सुन्दावन आर कुञ्जके सरस प्रयाग—

रम-रूपनी प्यारी ! बँकू इत देनी सुख-सारि ।

—गदाधर भट्ट

सुख उपजावनी राधे केया न कहीं मार ।

—कल्पितप्रहोटी

'कुंदावन' मिरलीं करै जई कुंज-कुंज' सुख-सुख ।

—नागरीराज

'सुन्दर-स्यौम' सुखीन गिठेमनि बँकू कहा कदि गरी हो ।

—गदाधर भट्ट

( २ )

स्यौम-स्यौम—रामका सुदेश, समाचार, हास्य-बास, मन्त्र,  
गा । संवेत—इशारा, निर्दिष्ट-स्थान । अस्त्र—अस्त्र, समय ।  
त्र्येण—एक-त्र्येण, एक प्राण्ड एकरिण । मधुपुरी—मधुपुरी वर  
नीन नाम ।

श्रीधुवन 'मधुरा' या पार्शन श्रीमद्भागवतमें यथा सुन्दर  
या है—

भयापराहणे भगवान् वृष्णः सकयणान्वितः ।  
 मधुरां प्रायिताद् गोपैर्दिग्भुः परियागिता ॥  
 ददश तां स्फाटिफनुङ्गोपुर  
 धारां वृहजेमकपाटनोरणाम ।  
 ताम्राक्केष्टा परित्तादुरासदा  
 मुघानरम्योपयनोपगोभिताम् ॥  
 मीवणशृंगाटकहम्यनिपुट्टे  
 धेजीमभाभिर्मयनैरपम्भताम् ।  
 पैवृपयज्ञामलनीमिधित्तुमै  
 मुक्ताहरिक्रियलभीषु वेदिषु ॥  
 जृष्टेषु जालामुनरुध्रकुट्टिमे  
 प्याधिष्टपागयनवाहैमारिताम् ।  
 संमिक्तरथ्यापणमागधयरां  
 प्रकीणमास्याङ्कुरस्याज्ञतण्डुलाम ॥  
 भापूज-कुम्भैर्दधिचन्दमोक्षिनै  
 प्रमूनदीपापलिभिः सपत्न्यैः ।  
 सगृन्दरम्भा प्रमुकैः सवेत्तुभिः  
 व्यन्तैरुतद्वारगृहा सपट्टिकैः ॥  
 ( भीमद्भागवत १ । ११ । १ २१ २२ )

मीम, सवन औम, टीउ ओर मधुपुरी आदि गणोंक  
 प्रयाग—

गानी १ गुरों हरि—मदेम ।

—मुराल

गनी ही मी वा जानी मदेम ।

—मुराल वरद्विदा



‘मन ! पछितैही ‘जीमर’ कीतें ।

—गुरदास

ईगद करत क्यम लेलन मैं सखा रहा इक-जोड़ ।

—रामदास

महो कां का शार्दा प्रकटयति सैवा मधुपुरी ।

—श्रीशङ्कराचार्य

श्रीलन्ददासजीकी इस उक्तिपर ‘सकूप’जीके लो छन्द बरबस  
याद का जाते हैं—

उद्भवमममोक्त्र गोपाङ्गना उवाच

‘कहा नाम ज्यप् कहीं किहि परमो किहि काज ।

जाचक ही को ही जहो । परम-साहु के साथ ॥

उद्भव उवाच

संगी है मस्तकी है सख्यही है सँकेची साधु-  
सिख है मुनीक है मुपात्र है मुवेमी है ।  
मुन्नी है मैताली है मर्मम है मर्मम मर्ग  
सँके मीन-साह सपने है व अँदेमी है ॥  
रमरूप मुनिपे मुक्ति द्वे कें सावर्धाम-  
मकन मी कहिये सैमीप सब बैसी है ।  
सेवक है सखा है सखीन-मुमकितक है  
धुनी ‘कधी’ वाम-सँके लॉम के सँदेसी है ॥  
बौनी कें बजाह करि सब कों मुग्गह करि  
कहिगे मुग्गह करि जैसी जहाँ बहिणे ।  
गया सब रोग भयी जामैद को योग-  
योग कौजिये बजाह कें बिकोग तें न रहिय ॥  
रमरूप कीव जानें कीव हिये कैमी छरी  
ध्वारा कियेय बाते जीम तें न कहिये ।  
मन ही मैं सधिये बह मीन गदि रहिये को  
मौजिये नी कहिये न मोंनों राह गदिणे ॥

( ३ )

‘गोपिबाँकी प्रेम-व्यवस्था’

कवि-बधम

स्यौम—मगतान् धीशुशुगफा नाम-विशेष ओ उनके शरिरसे  
काले रंगके कारण पडा या ।

मगतान्के इस नीलमल्ल-दल-स्यौम स्वभावपर कवि-कोटिदोने  
बड़ी-बड़ी उठाने उड़ी हैं,—अनासी फलनियों बनी हैं । कर्त जायके  
दसम-स्वरूप होनेका कारण वनशता हुआ फहता है—

‘असीबा वे कारी-बैपैरी में बायी ।

असी ‘कारी-कुला’ कदायी “ ॥”

—दोहें कवि

अपना—

कबहारी-बैसिपान में बाये रहत दिव-रात ।

पोवम प्यारी हे सखी तू नें ‘सबैर-नात ॥

—नागमीपान

कपौके—

‘तौरे नंद असोया गोरी तुम्ह कित स्यौम मरीर ।

—सुररात

अपना—

‘तौरे श्री बैदराहनु, हो सौरी-अमुपति माह ।

तुम्ह प्यारी तें माँबरे आत्म देमे कथियन पाह ॥

—हरिदाबत्री

सुमाप कवि कहते हैं—

‘अपने कर्त-पद-पीत को सुंदर सीस चरें पणिय वैव-नखी ।

इत नरें कित गुंजन को, अकर्म जिति-दोरन को छहपती ॥

नेत्रम म्बालम-संग रघुनाथ का खोले गन्धिन-महा उतपती ।  
जा रंग-सौचरा हो तो न हूँदि ली काहू की खीदि कहुँ मग जाती ॥

गोविन्द-स्वामी कहते हैं—

‘रघुमसे लंद-बुखरे ? भाए हा उदि मोर ।

जरुन मीन बिन अरपदे, भूपन दिगबनु अई-खई अबरन रंगमारे ॥

किन अच काद करत गुनीई ? अही काबी अके प्रीन-व्यारे ।

गोविन्द प्रमुपिय मल्ले सु मल्ले आण आम पाए, जैसे तपस्वीम, जैसे मय-अरे ॥

पहौंसक ता रीर थी । अब ‘याम’ रगत्रि दृष्टगी कृतामन

देखिये—

‘या अनुरागो-चित्त की गति समुपै बहिं कोए ।

ज्यी ज्यी कृई स्वोम रंग ली-खी अजद होइ ॥

—तिहारी

बेनी-प्रवीन कहते हैं —

मोर ही अचन मंद-निमोर किशोचति ही लखनी उदि वारी ।

बेनी प्रवीन होऊ कर मीं गहि गाहे क स्वगि गइ लखबौरी ॥

तमें कहा ए अजानी सबै मी दिन्नाइहो छै सनिधान की खीरी ।

तौबरे-रंत ल्यों हरि राबरा सौचरी छै गइ पीला-पिछीरी ॥

एए और—

स्त-ही-महात तिहारे ही स्वोम ? कविदिबो स्वोम अई कहुती ई ।

पल्ले हूँ पोर ही या मी कहुँ तो यहै रंग मारिण हूँ सरतै ई ॥

सौचरे अंग का रंग बहूँ इदि मरे गुर्जगल मी लगी अई ।

छेक-छेकले गुपीगे ठ मोदि ली गल्लेन मरे गुताई न ईइ ॥

—श्रीरं वनि

पौम—शुद्ध स्वल्प ‘याम’ अपवा ‘शामा’ ‘शामा’का

स्वल्प त्रिमपु दि अर्ण ‘श्री’ होता ई ।

नबक विभंग कदम-तर झपा मोहत मय 'बाम' बौम ।

—नृत्याम

बौम—बौण क्षर ग्देषो भी कदत हैं । जैसे—

'बाम-बाहु' पदकति मिरिं जा हरि जीवम-मूरि ।

ली लोही मों मॅरि हों रात्रि शहिनी मूरि ॥ ७

—विहारी

विधि हूँ यथां तु 'बौम' ।

—श्यामजी

उरुमें श्रौम'कद अथ—अटारी, कदोटा, मकलनके ऊपरवाली छत, धरकद सभमे ऊपरवाला भाग, अथवा धरकी चोटीको कहते हैं, जैसे—

'कम्मम रात डुई कर गया किचारा बौद ।

बस बतरौ 'बाम' से तुम जाते बीर हारा बौद ॥

'दूर पर जैसे किसी बल में कम्पड़े की झलक ।

कुछ सरे 'बाम' से बीसा ही बजाका निरकल ॥

'बाम' पर बौम न आये तुम मरी महाराज में ।

बौदनी पद अथवा मँक बदन हो अथवा ॥

धर—गृह, मकलन, वासस्थान । सुध—पाद, स्मरण, धेत, स्मृति । आनंद वा आनन—हृद, हर्ष, प्रसन्नता, सुखी, सुख, मोह, आह्ला ।

\* विहायक इन लोहेपर एक ऐसी ही भावभरी यह 'आवा' भी सुन्दर है, यथा—

पदपति पदकति शुभ्यति संविध्यति पुत्रकमुकुटिवैरहै ।

प्रियकङ्कमाय सुमितां वियोमिनी पाम'बाहुस्यम् ॥'

—भार्या समघटी ।

सुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसमया ।

म्यादानम् पुष्पमम्भशर्मशातसुखानि च ॥

( अमरकोश २।५।२ )

हृ ( हृद्य )—अन्त करण, मन, चित्त, छप्पी, पिछ, कलेजा । हृद्य, छातीके भीतर—अंदर यौपी ओर स्थित मांस-कोश वा फेटीके आयुर्वरक एक भीतरी अक्षय है जिसमें स्पन्दन होना रहता है और उसमें होकर शुद्ध-रक्त नाभियोंद्वारा सारे शरीरमें संचार किया करता है ।

चित्तं तु खेतो हृद्य स्वाम्भ हृम्मानस मनः ।

( कोश )

प्रीम वा प्रम—प्रीति, अनुरक्त, स्नह, प्रणय मुह्यन्, यार, माया ।

प्रमया प्रियता हार्त् प्रम' समदोऽथ बोहवम् ।

यौ ता प्रेम' शम्भ्व' अर्थ—उसकी परिमित परिभाषा आज तक न खनी, बकौल—स्वर्गीय धीसुखनारायणजीके—

'इच्छा-वच्छा करहु भिच्छि-जग की सब भाषा ।

मिच्छि न वै कहुँ एक प्रेम-श्री परिभाषा ॥'

क्योंकि प्रमय स्वल्प अनिवर्तनीय है, अर्थात् कर्तनमें नहीं आ सकता—गुणोंके गुण प्रमा है अनुभवसिद्ध है ।

अनिवर्तनीय प्रेमस्वरूपं मूकश्यावूनपत्'

( नारदभक्तिशुद्ध ५१, ५२ )

## भ्रमर-गीत

यही श्रीमत्पनारायण कहते हैं

आगत सब कछु प्रेम-म्हार मुझ-वरनि म अपनै ।  
 बरहि परम-बाबाक मुँक ओं भाव बतावै ॥  
 बिद्या-बक तापनि के भेद प्रभेद बतावै ॥  
 गौरी की गुर-बाह अगत बैठ्यौ सिर तावै ॥

उर्दूके शायर भी प्रेमके—इसके प्रियम कुउ न बनलात  
 हुए वही बेवसीका बाल पीतते हैं —

शाबर इसी का नाम मुहब्बत है सेरुता ।  
 एक आग-भी है दिक्में हमारे कगी हुई ॥

—ताम्रि

मीर कहते हैं—

हम तारे इस्क से लो बाकिफ नही है केकिन ।  
 पीने में कोई जेमे बिल को मफ करे है ॥

रु और शायर साहब प्रमति है—

'इसके-मुहब्बत क्या जानू केकिन इतना मैं जानूँ है ॥  
 बंदर-ही-बंदर सीने में मेरे दिक् को कोई बताता है ॥

केकिन फिर भी प्रमकी परिमायाँ चाहे वे कपूरी ही हैं,  
 किस्ती-न-किस्ती रूपमें मिलती ही हैं । सबसे प्रपम 'भक्ति-सूत्र' में  
 प्रेमकी परिमाया करते हुए धीनार मुनि कहते हैं—

“गुणरहित कर्मनारहित प्रतिक्षणबर्द्धमान  
 मयिच्छिद्यन सङ्गमत्प्रनुभवकपम् ।”

(नारदभक्तिद्वय ५४)

अर्थात्—प्रेमका स्वभाव गुण और कर्मनाओंमें रहित,

प्रतिक्षण षडनवात्म, एक-रम, अत्यन्त-सूक्ष्म, केवल अनुभवगम्य है।

जैसे—

‘बिज गुन जोवन रूप धन बिज न्यारय हित बौव ।  
 सुख-अममा तें रहित प्रेम मकज रम-नौन ॥  
 भूति सूच्यम धीमरु भतिदि जति पनरौ जति दूर ।  
 प्रेम कहेन यवने मर्दो,—निज इक रम भरपूर ॥  
 ‘इक भंगी बिज कारनें इक रम मर्दो ममान ।  
 गनें प्रियहि सरबज जो स्पेइ प्रेम प्रमान ॥’  
 स्वामी स्वामिबिह, बिना-स्वारथ भक्त मर्दो ।  
 मर्दो-सूक्ष्म सुख स्पेइ प्रेम भई ‘रम-नौन’ ॥”

भक्ति-रमाभूत-सिधुके कर्ष कहते हैं—

‘सम्पञ्जमरुणितम्यास्तो यमस्वातिदापाद्भिनः ।  
 भाद्र न एव मान्द्रस्ता बुधैः प्रमा निगद्यत ॥

अपत्रा—

‘दशमि स्पदान पापि भयचे भाग्येऽपि वा ।  
 यत्र द्रष्टव्यस्तरङ्गं स ज्ञेय इति कथ्यत ॥

करुण-रसाचाप्य महाकवि श्रीभक्तभूमिजी कवने ‘उत्तर राम-वक्ति’  
 नामकमें प्रेम विप्राहण करते हुए कहते हैं—

‘अतैत सुखदुःखयोगनुगुणं स्वर्गोस्वयम्प्यसु यद्  
 पिधामो हृदयस्य यत्र जरया यस्मिन्नदायो रसः ।  
 कास्तेन्यवरणास्यवान् परिजत यस्नहमारं स्थित  
 भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येव हि तत्राप्यने ॥’

जर्बाल्—सर्गाव कवि श्रीसत्पनासायगजीक शर्मावे—

मुक-मुक्त मैं मित एक इन्द्रज कन प्रिय-विद्यम-यक ।  
 सब विधि सौं अनुकूल, विसर-कण्ठप्रमय अविषक त  
 वासु सरसदा सके न हरि कबहुँ अग्राई ।  
 ज्यों-ज्यों अकट सवन मदन सुंवर सुखदाई ॥  
 जो मन्मथ पर लक्ष्मण छत्रि पापल इह अनुगत सत ।  
 जग हुरकभ सजन प्रेम जन जेहभागी कोउ स्थत ॥

कबीर-सहज परमाते हैं—

छिन्न हिं चर्षे छिन उतरै मोता प्रेम न होइ ।  
 मघट प्रेम पिंजर जयै प्रेम कदावै सङ्ग ॥

सब-जात तो यह है कि प्रेमकी कोई ठीक-ठीक परिमाणा ही  
 ही नहीं सकती, क्योंकि प्रेम ईश्वरमय है—ईश्वर ही है, जस्य ईश्वर  
 ही प्रेम है । जैसे—

नित विचारजु जोग रुचत उपदेश यही उर ।  
 परमपुर-सै प्रेम प्रेम-मय मित परमेशुर ॥

अपना—

‘प्रेम ही का रूप है त्यों ही प्रेम सकम ।  
 एक होइ है वी कसे ज्यों शूरज का रूप ॥’

—रत्नान

यही बात हजरत ‘भीरा’ फरमते हैं—

ए न करै तो नाम कुछ उठ जाय ।  
 मन्थे है सापतों पृथु है इन्द्र ॥

अस्तु, परम-शुद्ध और विलुप्त अर्थमें ‘प्रेम’ ईश्वरका ही  
 स्वरूप है, इसलिये अधिकतर अर्थोंके अनुसार प्रेम ही ईश्वर, वा ईश्वर



ही प्रेम—अपना प्रेम ही परम धम माना जाता है—गाया जाता है और यही मत्किन्ना परमात्म्य स्वरूप समझकर मोक्ष-प्राप्तिकर परम-साधन कल्पना जाता है। यों तो सुस्-शाब्दकारोंने, अपना वैष्णव-साहित्य-सृष्टेताओंने प्रेमके अनेकानेक में विभेद विमूर्धित किये हैं, पर मुख्यतः रूपसे—उत्तम, मध्यम और अधम अर्थात् निवृत्त ये तीन में ही कहे हैं। उर्ध्व-साहित्य-सम्प्राणोंने इस इत्कफ कल्प दो ही मद माने हैं—महाजी और हर्षिकरि। अस्तु,

प्रम-समुद्र नवाह है बहों मिरी न बंग।  
 तेहि समुद्रमें हों परा तीर न मिळत तुरत प  
 —सूरमुहम्मद

अपना—

बहिनये शीद मिठी है न मिटेगी हमरत।  
 बेचने के लिये काहे उगई जितना देतो व

भारतीय प्रेम-परिभाषा जहाँ उसे विचरकर रूप ही माननी है,  
 वहाँ उससे इतर वेशोंने प्रेमकी परिभाषा निम्न प्रकारसे की है। यथा—

- १ अमरीकन—“प्यूरपर प्यार, म्यूय कोइमार।”
- २ जर्मन—“प्रम सल सेकड, बणना सल मिनर आर अप्रममना जीवनभर चिकती है।”
- ३ आयरलैंड—“एक पुरुष अपनी प्रपतीका सचरो अधिफ-पतीको सबसे अधिफ बच्ची मॉनि और मौको सचरो अधिफ ममप तक प्यार पत्रता है।”
- ४ आयरलैंड—“पसमी पुरुषोंस प्रम परा, मुन्धारका छडफर।”

- १ इस्लड—“सूप ( एक प्रकार मांसमे बना पप ) आर प्रपमे प्रपम (सूप) ही उद्यम होना है ।”
- ६ इस्लड—“वह विस्तुल प्रम नहीं करता, जा जानता है कि अन्त किम प्रकार किया जाता है ।”
- ७ बर्मनो—“प्रम दृष्टिको छीनता है विवाह पुन प्रदान करता है ।”
- ८ जाशन “प्रमाकी दृष्टिम वचकक गग, गग्लोमें पवनवाल सुन्दर ग्ने होते हैं ।”
- ९ डेम्बार्क—“यदि सोना बरमे ता भी प्रमी कभी बनी नहीं होत ।”
- १० फरस—“बिना इप्यकि कही प्रम नहीं होता ।”
- ११ फरस—“पुराना प्रम और पुराने कोयले जल्नी आर फकावते हैं ।”
- १२ सिविशफन प्रदश—“ वचकना प्रम लधूरा आर बूडा प्र उदा होता है ।”
- १३ मिश्र—“प्रमीका प्रहार उतना ही मबुर होता है, जितना कि किस्मिस खाना ।”
- १४ फेल्ले—“प्रम पुरुषकी औंखोमे आर लीके कानोमे प्रवेश करता है ।”
- १५ पाउडेड—“जो बहुत प्यार करता है, वही बहुत मारता है ।”
- १६ स्पम—“प्रम आर अंडा ताजा ही स्वादिष्ट होता है ।”

१७ सप्टिन-प्रदेश—“प्रमी, पागल ।”

१८ बास्मिक-प्रदेश—“प्रेमको शीरेकी भौंनि फैलाया जा सकत है ।”

१९ स्वप्न-प्रदेश—“किस्तीकी प्रमिका कुरूप नहीं होती ।”

२० स्पेन—“प्रेम मोघकी भौंनि होता है जिसकी पुनरावृत्ति अधिक सरलतासे हो जाती है ।”

२१ स्वीडन—“प्रम वा पाजामामें लगी आगको छिपाना सरल नहीं होता ।”

२२ हंगरी—“प्लगों और प्रममें कुछ भी असम्भव नहीं ।”

२३ फ्रेड—“प्रमकी जीभ उसकी आँखोंमें होनी है ।”

बेठी—शुद्ध स्वरूप बेस, बेखि, वा कल्की और मनसपनि-शास्त्रके अनुसार बे छोट्टे-छोटे तथा फोमल पीपे तिनमें फोड़ या माट-तन नहीं होते और अपने यक़र ही ऊपरकी आर टटते हैं, पर बड़ नहीं सकते । इसीसे इसे छता ब मक्की कहते हैं ।

‘अप्रकाण्डे स्वप्नगुल्मी यस्वी तु प्रवतिर्गता ।’

( अमरकोश २।४। )

माधारणत बेस दा प्रफरकी होनी है । एय बह जो कि अन्न उत्पन्न होनेके स्थानसे आस-गसके पृथ्वी सतक अपवा इसी तरह किन्ही अन्य तऊपर दूरतक फैलनी चली जाती है । दूसरी बह जो कि आस-गसक वृक्षों अपवा इसी वर्षके लिये स्थानसे गये बौंस आदिके सहारे उनके चारों आर घूमनी दूर ऊपरकी आर जाती है ।

अमर-गीत

द्रुम—बृह, महीरुह, शाखी, विन्धी, पदप, तरु, अनोकह,  
कुट, साख, फमशी, हु और अगमको कहते हैं ।

वृक्षो महीरुह शाखी विन्धी पादपस्तक ।

अनोकह कुटा साख फमशी वृक्षुमागमा ॥

( अमरकोश २।४।५ )

श्ली— श्लेष्मा, विकसित होना, स्थिरता, आनन्दित होना,  
श्रीनन्ददासजीके—‘श्लेम-श्लेष्मी-श्लुम-श्ली’ रूप पञ्चांशपर श्रीसत्यनारायण-  
जीकी एक बड़ी सरस सूक्ति यह आ गयी है, जैसे—

‘कृष्ण-किरह की शक्ति, गईं या उर हरियाई ।

सोचन-भक्तु-विमोचन होऊ बहकल जविबवाई ॥

पाह मम-रस बनि बनी तब-तब कियरी जाइ ।

देकि कृति बहूँ-बहूँ कई विधा न करनी जाइ ॥

—अक्षय दासी कया ।

पुलकि—पुलकित होकर, हर्षित होकर वा हर्षसे—प्रेमसे ।

रौम वा रोम—रोयों, छोम, देहके—शरीरके बाह । छप्—छ गये,  
फैल गये ।

‘शुक्लि—रौम सब अँग छप्’ पर सिद्धांतीकी उक्ति बड़ी  
साबनाव है । देखिये न, जैसे—

‘मै यह तोही मैं बनी भगति-अपराध बाह ।

कहि प्रसाद-मल्ल हूँ भी तब कर्णव की मल्ल ॥”

अर्थात्—

“अपूरक-मक्ति वह वृत्त में ही देखी मैंने ऐ—बाह्य ।

कर्म-सा किञ्च गया तब छिन्ने ही परस्पर की मात्रा ॥

—देवीप्रसाद “प्रीतम”

कठ-घुटपौ—कम्प, अर्थात् गञ्ज । घुटपौ—घुटा, मुँदा—ठँचा

अपवा कम्प-घुटना—गलेसे आवाज न निकलना । गद्गद-मिरा—

गद्गद, अल्पत हर्ष, प्रेम, शोक, अज्ञा आदिके कारण—अपवा

अपके आवेगसे इतना पूर्ण कि अपने आपके भूख जाय और स्पष्ट

वाक्य उच्चारण न कर सके । मिरा—बाणी, वचन । बोखनेकी

ह शक्ति जिससे मनुष्य धर्ते करता है । बॅन—बचन, बोली,

अन्ध, अज्ञ, कल्प । बिबस्या, वा व्यस्य्या—किन्ती फर्पक्य वह

बेमान वो कि शास्त्र-द्वारा निश्चित वा निर्धारित हो ।

स्यौम, बौम, घर, सुधि, आर्ने, ह्ये, प्रेम, बेडी, वृम,

छकि-रौम, गद्गद-मिरा और बॅन—शब्दोंके सम प्रयोग । यथा—

‘सोहत ओई दीव-पर ‘बौम’ मरुनि-यात ।’

—बिहारी

‘बेरि छेउ सब सप्रा सबावे जान न पावें “बौम” ।

—टीलकामी

‘जात्र ‘बर’ मंगलचार—बैयाप ।

—रामदास

सुधि न रहत मरीर की— ।”

—पंडितराज जगन्नाथ

‘उर आर्नेइ’ अति ही बढ़यी सुच्छ भव् बोळ बॅन ।”

—रुनिप्रदाय

“हरी” की कसों कहीं मैं पीर ।” —स्वच्छिन्द-माधुरी

“प्रेम” करि काहु सुख न छोड़ी ।” —सूरदास

“जीवुंदावन फूँटि रही अति— बेडी ।” —रसिक-किशोरी

‘अमुका-मुलिब-कुंज गह्वर की

कोकिल है “हुम” कूक मचार्डे ।” —स्वच्छिन्द-किशोरी

‘सुकुकि-सौम’ सब रँग-रँग छाप, कसु छवि देखी हैत ।

बैठुर उडे प्रेम के मानों सरस हँस के खेत ॥”

—परमानन्ददास

‘तब बोली बजबाज काक मोहन बनुरागी ।

सुंदर ‘अपगद-मिता’ गिरवारहि मजुरी बगरी ॥”

—नन्ददास

“सुख केसर के ‘बैत’ प्रेम करेदे जरपडे ।”

—सुखीदास

कुछ पेशी ही प्रेम-व्यवस्थाका वर्णन श्रीशुक भी नन्द-बाबाकी (क) करते हैं, यथा—

‘इति संस्मृत्य संस्मृत्य नम्या कृप्यानुरक्तधीः ।

अस्युत्कण्ठोऽमघत् तूर्णानि प्रेमप्रसरतविह्वला ॥”

—श्रीमद्भागवत १ । ४६ । २७

अब इस प्रेम-व्यवस्थान् श्रीस्वर्गीय ‘रत्नाकर’ की भी आनखी देखिये, यथा—

‘बोई धौम-धौम तें अबाई सुनि कबख की

धौम काक-काक अमिअकमि सौं मीरही ।

कई ‘रतनाकर’ ही निकल निककि तिन्ही—

सकळ करेजी धौमि कापुनपी करी रही ॥

केचि निज-भाग केचि ऐकि तिन जीवन की  
 जीवन की लखि आतुरी सौं मय ज्यै रहौं ।  
 नौंस होकि सौंस होकि, रूँछन-हुकूमत होकि,  
 मूरति निरास की-सी जास-मरी ज्यै रहौं ॥”

अथवा—

“शेखे मय-मयाव के ऊबव के अयव की—  
 सुनि ब्रज-श्रवविभूमि पावनि कबै कर्तौं ।  
 कबै ‘रतनाकर’ गुवाकिसि की झोरि-झोरि  
 हीरि-हीरि नंद-पौरि अयव तबै कर्तौं ॥  
 बसकि-बसकि पद-कंठनि के पंजनि है—  
 पेखि-येखि पाती क्यती छोहन सबै कर्तौं ॥  
 हम कौं किन्पी है कहा ? हम कौं किन्चौ है कहा ?  
 हम कौं किन्चौ है कहा ? कर्तव सबै कर्तौं ॥”

एक और—

उपी ! आप-आप, हरि की सँदेसी आप—  
 सुनि गोपी-गोप आप मय धीर ना बरति है ।  
 बीरी कनि हीरी उठि भीरी कौं प्रमत मन,  
 गुन तव जनों गुरु-स्वैग विदुरति है ॥  
 द्वै गाँ विकट-बाल बालम-विकोत भरी  
 शोम की सुनत बात गमत क्यौं बरत है ।  
 भारे भय मूचन सम्हारे न बरत अंग-  
 आगे कौं बरति पग पाछे कौं परति है ॥

—गोपी-मेम-पीपूष-प्रवाद,

पपा—

‘वाती मधुवन ही तें व्हाई ।

सुंदर जॉमि-जॉमि विचि पछई व्हाइ सुनो री माई ?

जन्मे-जन्मे गृह ते हीरीं छे वाती वर व्हाई ।

कैवलि मिरचि विमेक न वदित प्रेम विद्या न बुझाई ॥

कदा करों सुनो वद गीकुळ हरि विद्यु कण्ठ न सुहाई ।

‘सुरास प्रसु कौन वृक तें जॉमि सुरत विसराई ॥

मान-समानांतर

क्योपकथन

( ४ )

वरपासन—जर्ष और आसन, सम्मानार्थ जलसे अभिसिंचन, पोष्योपचार-पूजाकर प्रथम उपस्कारग, जल, दूध, कुशाभ, दही, सरसों और तम्बुळ तथा यव आदि मिश्राकर देव-विशेषको अर्पण करना । सामने बल, पानी गिराना । मोल आदि—

‘मूस्ये पूजाविधावर्षा बर्हो दुःखव्यसनेष्वधम् ।’

—अमरकोश ३ । ३ । २७

आसन—पूजनके समय बैठनेका अथवा किती भद्र पुरुषके घर बानेपर सिद्धासन देनेकी वस्तुको आसन कहा जाता है । पीठ, पीडा, चौकी, हापीकर कला, शत्रु वा विद्रिष्टिक, अक्षर प्रतीक्षार्थ कवसान, कुश वा उन्नक बना हुआ किठने योग्य बस-विशेष ।

‘येऽङ्गुका कङ्कुको धीपाः प्रथीपाः पठिमासनम् ।

—अमरकोश २ । ६ । ४



अथवा—

‘आसन’ स्कन्धदेशात् स्यात्

१

—भारतकोष २।८।७

बैसे तो योगशास्त्रानुसार तथा कर्मशास्त्रानुसार आसन वीरसी प्रकारके कहे जाते हैं, पर अष्टाङ्ग-योगके तिसरे-अङ्गानुसार “आसन” पौष प्रकार माना जाता है, जैसे कि “पद्मासन, सखिकासन, मध्यासन, कर्मासन और वीरसन” । प्रकारान्तरसे—पद्मासन, सिद्धासन, गरुडासन, कमलासन और मयूरासन भी कहे जाते हैं आदि -- ।

परिक्रमा—परिकरिमा वा परिक्रमा, कर्पात् किसी वस्तु वा देवताके चारों ओर घूमना, फिरना, चकर छानना । स्त्रीम-सख—  
इयामका सखा, मित्र, बन्धु, साथी, सगी आदि ।

अथवाः सिन्धुः सद्ययाः अथ मित्रं सत्त्वा सुष्ठुत् ।

—भारतकोष २।८।१२

मित्र—अन्तर्ज्मीन, आरमीय, सखीय, सास, प्रार्षित, मुख्य, प्रधान । द्वित—द्वितसे, प्रेमसे । सेवा—शुद्ध सेवा, किसीको आराम पहुँचानेकी क्रिया, यानी टहल, सिद्धमत, परिभर्या । ब्रह्म—  
पुष्ट । मन्द-सख—नन्के सख, प्यारे बेटे, लड़के । मन्द—गोप  
जातिके एक प्रमुख सरदार, नत्ता, राजा, प्रिनके पक्षी मगतान्  
श्रीकृष्णने बाछ-कीडा की थी ।

कहते हैं कि—नन्दबाबाके भिन्नाका नाम अर्धन्या और  
‘आत्ता’ का नाम ‘शरीपसी’ था और इनके पौष भाई जैसे—

“उपनन्द, अमितन्द, नन्द, सुनन्द और नन्दन तथा दो बहिनें “नदनी और सुनदा” थीं, जो “श्रीना” और “भुवना” नामक एक प्रतिष्ठित गेहूँके व्याही गयी थीं। नन्दकी बड़े भाई उपनन्दकी दो समानोक्त उल्लेख मिथ्या है—कन्या “स्याम देवी, जो श्रीकृष्णके ही समतुल्य रूप-रंगमें थी और पुत्र श्रीकृष्ण जो श्रीनन्दनामा—द्वारा गेहूँमें बैठाये जानेके कारण आपके पुत्र कहलाये थे। उपनन्दसे छोटे अमितन्दके “सुबाहु” नन्दबाबाके मगवान् श्रीकृष्ण, सुनन्दके “भुवना” और नन्दनके खेर नातोक नामके पुत्र थे। श्रीनन्दबाबाका कर्ण गौर या और केशमति कुछ काली और कुछ सफेद मिली हुई थी। तोंद कुछ बड़ी, छाती ऊँची और पेशानी विस्तृत थी तथा कानों नीले रंगके पहिरा करते थे। आपकी स्त्रीका नाम श्री “श्यामादा” था। जो कि शरीरसे स्थूल व रंग कुछ सौम्य-सा था और कपड़े सदा पीले रंगके पहिना करती थीं, श्रीपशोरा-मैयाका दूसरा नाम “देवकी” भी मिथ्या है। श्रीनन्दबाबाके भाइयोंसे हिस्सेमें नौ लाख गेहूँ मिली थीं, पर थीं इनके—बहुर करोड़। उपनन्दजीने और अमितन्दजीने कर्में रुपय नहीं किया इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिथ्या—कहीं भी इसका पता नहीं चलता, अस्तु श्रीनन्दराय यों ही राजा कहे जाते थे, अर्थात् ब्रह्मराज वा ब्रह्मराजके नामसे आप ही सम्बोधित किये जाते थे। आपके कुछ देवता—नारायण, भेद श्याम, शास्ता कौशिकी और हरिवंश पुराणानुसार भेद-यज्ञ, शास्ता माध्विनी तथा कुछ-पुरोहित शाण्डिल्य-श्रुति कहा जाता है। श्रीनन्दबाबाकी रावणानी गेहूँ और नरिग्राम थी आदि-श्रुति ।



धीर-वती श्री गोपिका यती प्राण-समज ।  
कहु कंक लीते हते आई 'अहुक' राज ॥

—नकीत

“अब” भयी महि के एउ अब ये बात सुधी ।”

—धरदात

भेक मेरे “धीर” आहू आ; अहो लीते कहीवा ?”

—नागरीदास

“योदे” — हू गुन रीतिवो बिसरार्हू बह बानि ।

—विष्ठी

“अब ‘अभि’ कहु किंचं कविही दवा-दीति हुक हीते ” ॥ १”

—असुखी

कुछ यही बात श्रीगुरु भी उद्भवनीसे कहवाते हैं, यथा—

‘अगमिप्यत्यदीयेन काष्टेन मज्जमभ्युता ।

पियं विधास्यते पिनार्ममनाम्सास्यतां पतिः ॥”

भीमशागवत १० । ४६ । १४

इसी मतपर अब जरा धीसूखी भी बनगी निरस्थिये, जैसे—

गयेगी, सुभो हरि-कुण्डलत ।

कंक-गुप ही मारि करे, अयुने विल-मात ॥

नीहीत-विधि औदार करि हयो, बमसेन को राज ।

नगर-द्वेग सुधी बसत हैं भए सुख के काम ॥

इई फली किन्ही अब कहु कही सुख-सदिस ।

“ए” किलुन-बह करि के तबहु सख्य करिस ॥

वपव—

गयेगी सुभो हरि-सदेस ।

गए सैम-कहू-सुख इयो कम-बोस ॥

रत्न-नारदौ वचन-नेहरे चतुष-शेरदौ वाह ।  
 कुवक्षिण-बहुर-मुक्त, एष अरुमि-मिराह ॥  
 मरुत-पित के बंदु शेरौ बाहुदेव-कुमार ।  
 राम हीन्हों उग्रसेवाहि रैमर मित्र-कर-वार ॥  
 कक्षी दुष कौ मङ्ग-व्यापी छवि-विशै-निवारि ।  
 'सुर' पावै बहूँ किन्धि मोदि कर्म शेष-कुमारि ॥

कवि-वचन

( ६ )

मोहन—शुद्ध मोहन अर्थात् भाषान् श्रीकृष्णकृत नामविशेष  
 व्यवसा—मोहन, मोहनेवाले, लक्ष्मी ओर आकर्षित करनेवाले—  
 श्रीवनेवाले । व्यवसा मोहन, अर्थात् जिसे मोह न हो, प्यार न हो,  
 मुहम्बत न हो आदि-आदि ।

मोहन शब्दपर बाण परस-निधिनीक्री पक्ष्ती भी सुन  
 छीजिये, जैसे—

“मोहन तैरे नाम कौ कच्छी वा रिषा बोर ।  
 मङ्गलक्षिण कौ शेरि कें, कळे मधुपुरी-बोर ॥”

व्यपथ—

“स्तत्रिभि” मोहन नाम कौ व्यपथ न किंच निरवार ।  
 प्रथम समक्षि तव कीजबो वास्तै प्रीति-विचार ॥”

—रत्न हयरा

सुमन है कवौ—स्मरण हां जाया, यद वा गय सुमन—  
 यद, यन ।

चिन्ता तु स्मृतिवध्वानं स्मरण स्मृष्ट पुनः ।  
 अस्मत्प्रोटोत्कर्मिके, तस्मिन्प्रभिध्यातुभयोरपि ॥

—उपार्थव

जौनन—मुठ, मुँह, बहण, बदन, अम्य ।

वन्नास्ये बदन तुँहं 'भान्ने' सपन मुखम् ।

—धमरबोध

कमल—पुष्प-विशेष, कमलको पत्र, धनुज, अत्र आदि भी कहते हैं । यथा—

या पुंसि पद्यं नसिन्मरविम्बं मदोत्पलम् ।

सहस्रपत्रं 'कमलं' शक्यत्र कुशोशयम् ॥

—धमरबोध १ । १ । १९

कमल पानीसे उत्पन्न एक पुष्प, जो संसारके सभी शोभे प्राप्त पाया जाता है । यह पुष्प शीतले, तापत्रां और पत्रि-व्यभोसे नदिमें तथा गङ्गामें जो कि पानीसे—जैसे दूर्ग हा, हागा है । रंग और आकारके भेदसे इसकी अनेकानेक जातियाँ हन्ति हैं, किंठ विशेष रूपसे स्यास, सफेद, पीला और नीला ही अधिक देखने में आता है । कमलकी पीढ़ पानीमें सबसे गीब बा ए अंगुष्ठसे ज्यादा ऊपर नहीं जाती । कमलकी पत्तियाँ गोल पानी-सदृश होती हैं और बीचके बंटवामें पत्तले तनेके साथ जुड़ी रहती हैं । इन पत्तियोंका 'पुरान' भी कहा जाता है, आदि-आदि ।

अं—हरीर, वक्ष्य शरीरका कोई बिरवा, व्यक्त, बन्, वेद, लन, गात्र, जिम्न ।

“अङ्गं” प्रतीक्रेऽवयवोऽपयनोऽथ कश्चपरम् ।

गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्णं विग्रहः ॥”

—धमरबोध १ । १ । २१

वाङ्गके और भी अर्थ होते हैं । जैसे—माग, अंघ, टुकड़ा,

प्र० गी० ३—

सुख, उपाय, सहायक, तरफदार, सुख, प्रारम्भसुख शब्दका प्रत्यय-  
रहित भाग, प्रकृति, जन्म-मरण, वह साधन जिसके द्वारा कर्म  
सम्पादित किया जाय, देशविशेषका नाम, ध्रुववर्ती एक राजा, एक  
मऊका नाम, एक सरस सम्बोधन, प्रिय, प्रियवर, ६ की संख्या,  
ओर, तरफ, नाटकके शृंगार और गीत छोड़कर अन्य व्यञ्जनात्मक रस,  
नाटकके नायक व अङ्गिका कर्म सचक-पात्र, बेदके छ अङ्ग,  
जैसे—शिक्षा, धर्म, व्यवहार, निश्चय, व्योक्ति और छन्द । सेनाके  
चार विभाग व अङ्ग जैसे—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल । योगके आठ  
अङ्ग जैसे—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा  
और समाधि । राजनीतिके सात अङ्ग, जैसे—स्वामी, अमात्य, सुख,  
कोप, राष्ट्र, दुर्ग और सेना । फिर पुन कचे भी अङ्ग कहते हैं । जैसे—

“पुनरर्थेऽङ्ग निम्नायां बुधु सुधु प्रशसने ॥

आवेश—शुद्ध आवेश, अर्थात् आतुरता, व्यसति, संस्कार, दीर्घ,  
ओश, चित्तकी प्रेरणा, शोक, आवेग, बेग, प्रवेश, विह्वल—शुद्ध  
विह्वल, अर्थात् अवराकर, व्याकुल, किसी मनोवेगके कारण खंचल  
होना । जैसे—

व्यसनाचौपरकी छौ विहस्तप्यावुस्सौ समी ।

विह्वयो विह्वलाः’ स्यात्तु विवशोऽरिष्टदुष्टधीः ॥

—धम्मरत्नेय

भरनी—शुद्ध धरणी, पृथ्वी, भूमि, जमीन । ब्रह्म-बलिक—  
ब्रह्मकी बलियों व स्त्री । मुरजाए—मुरझाकर, उदास होकर, निष्कम  
होकर सुखकर । प्रबोध—ज्ञान, चेतारानी, यथाय ज्ञान, ध्यानबोध,  
सान्त्वना, आशासन, दाइस, तसल्ली, दिव्यता ।

भ्रमर-गीत

मोंहन, सुँमन, धौनन, कँमळ, अंग, आबस, बिहवळ, घरनी,  
मुरहाह, प्रबोध आदिके सास प्रयोगे ।

“प्रेषवरन की सिपर तें हो ‘मोंहन’ कीनी है डेर ।

—रसिकप्रथम

राम-ग्राम सुँमन नहिं कियो ह्यो ही ज्यम गँबायी हो ।

—रामदास

नित प्रति एखों ही रहति भौमव ज्ये-उपास ।

—बिहारी

बन सों आबत भँमळ फिावत तापै गाबत छान-छान—  
‘बोनी के प्रसु हाव वुरि राखौ इरैगी सोँसिन की माक ॥

—नैबी

अपवा—

करा करी लकी । भौमन-कमळ की सोमा ।

—बुन्दावनदास

अंगल अमित कसु मरी मधुरी सोमा सहज बिकरई ।”

—परमानन्ददास

“बा मूरति के देखति कसु मो-मन जति जाकेस बबायी ।”

—सोमरसिक

बिहवळ” है गह बाक अक सों अकबळ बोळें ।”

—नन्ददास

मूचब-बसव उखरि व बाहक बेडि रही पुप धरनी ।

—रसिक-प्रीतम

‘मन हरि कीनीं काम परी तापे सुएसाई’ ।

बहुत सिखिअ भई देह बात कसु करी ब जाई ॥

—नन्ददास



‘कसू प्रबोध’ उर्ध्वे कौ दीर्घे ।

—ज्ञानदास

प्रकल्पिता’ जति प्रबल एकत बहि नैकी रोके ।

—श्रीवाचस्पत्य

### उद्धव-वचन

( ७ )

दूरि—दूर, पृथक् अलग । ग्यान—ज्ञान, बोध, ज्ञानकारी, प्रतीति, अथवा आत्म्यका गुण-विशेष । मोक्षके विषयमें जो बुद्धि उसे भी ज्ञान कहा जाता है । यथा—

‘मोक्षे धीर्ज्ञानं

।

—भ्रमरश्लोक १ । ५ । १०

अथवा—वस्तुओं और किरियोंकी वह भावना जो मन का ध्यामाको हो ।

म्याय और दर्शनकार—‘अथ किरियोंका इन्द्रियोंके साथ इन्द्रियोंका मनके साथ और मनका आत्माके साथ संपूर्ण संबंध स्थापित हो तब ‘ज्ञान’की उत्पत्ति मानते हैं, क्योंकि न्यायमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमन और शब्द—आदि चार प्रमाणों ज्ञानके—ज्ञान होनेके माने गये हैं । प्राणि-विज्ञानानुसार मस्तिष्कके भीतर जो मज्जा-सन्तु-आड वा नादियों अथवा केश हैं, चेतन-म्यापार वा ‘ज्ञान’ उन्हींकी क्रियाओंसे संप्रभित है, इसलिये हममें क्रियाओंको प्रवृत्त और उत्पन्न करनेकी शक्ति है । अतः यह शक्ति ही इन्द्रियोंके साथ किरिय-

१ वाचस्पत्य—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन ही प्रमाण मानता है, क्योंकि अनुमान इसके अंतर्गत आ जाता है ।

संयोग-शुभा अथवा ठक शक्तिसंचालित-नादियोंके द्वारा भीतर जाती है और कोशोंको प्रोत्साहित करती हुई परमाणुओंमें उत्तेजना उत्पन्न कर बाहर जाती है और यही शक्ति कहलमती है। मूलशक्तियोंके अनुसार ठक शक्ति ही नादियों और कोशोंकी क्रिया 'चेतना' कहलमती है। पर है वह एक स्वतन्त्र शक्ति ही।

पाश्चात्य दर्शनमें भी—विषयोंके साथ इंद्रियोंके संयोगरूप प्रापञ्च-ज्ञानको ही 'ज्ञान'का मूल वा प्रथम रूप माना जाता है। किसी वस्तु—ज्ञानके लिये यह म्भवना आवश्यक है कि जिस का ज्ञान करना है वह वस्तु कुछ वस्तुओंके समान है—अथवा भिन्न, क्योंकि बिना साधर्म्य और वैधर्म्यकी भावनाके किसी प्रकारका ज्ञान हो ही नहीं सकता—असंभव सा है और इस साक्षात्करणरूप ज्ञानसे ही आगे चाक्षर सिद्धान्तरूप ज्ञानके लिये संयोग, सहायकत्वकी भावनाएँ होती हैं, जो स्वस्तिवरूपसे ज्ञान कहलमता है। अस्तु ठक ज्ञान—प्रमा और अप्रमा, अर्थात् यथार्थ-ज्ञान और अयथार्थ-ज्ञानरूप दो भेदोंमें विभक्त है। वेदान्तमें ब्रह्मको ही ज्ञानस्वरूप माना है, अतएव ठक मतानुसार सबका पूषक्-पूषक् ज्ञान नहीं हो सकता। एक वस्तुसे दूसरी वस्तुओंमें अथवा एकके ज्ञानसे दूसरेके ज्ञानमें जो विभिन्नता विभूति है, वह विषय-रूप उपाधिक कारण है, वास्तविक-ज्ञान तो एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्नता-भूयित प्णायेंके मध्य केवल एक विद्वान्त्वकी सत्ता वा अज्ञता ही शोभ होता है, आदि—आदि।

।

अस्ति-विद्य-भरिपुरि—ओर ( आदि ) से आखीर ( अंत ) तक सारा ब्रह्माण्ड। अस्ति—संपूर्ण, समग्र, सब, पूरा, किन्तु

‘विक्ष’ अथवा विक्ष — बीदहों मुक्तोंका समूह, समस्त ब्रह्माण्ड, सारा सत्तार, जगत्, दुनियाँ । विक्ष, सबको मी कहते हैं । क्या—

‘विश्वमशेष इन्द्रसमस्तनिविक्षाऽविलग्ननि मि-शेषम् ।’

भर-भूर—पूरी तरहसे मया, पूरा पूरा, जिसमें कुछ भी कमी न हो । पूर्णरूपसे, अच्छी तरह । त्रिसेस्यै—प्रतीत होना, भाक्ति । षोड—षोडश, षाट्पिंशेय । द्वाद—द्व्यब्दी, फाट्ट वा फाठ । पापान—शुद्ध पापान, फत्तर वा फत्तर ।

पापान प्रस्तरघ्रायोपल्लाद्मानाः शिमा इषत् ।

मही—पृथ्वी, जमीन, धरती । अकस—शुद्ध आकाश, अर्थात् गगन, अंबर, शून्य । सचर—सचल, अर्थात् संपूर्ण चक्र—चक्रनेत्राब्दी वस्तु, चर, जंगम ।

अचर—अचल, अर्थात् न चलनेवाली वस्तु, जड़-पदार्थ ।

जोनि—शुद्ध ज्योति, अर्थात् प्रकाश, उजान्त, लौ । ब्रह्म—ब्रह्म चेतन-सत्ता जो कि जगत्का कारण है । ब्रह्म मत्, चित् और आनन्द-स्वरूप तत्त्व त्रिस्तके अनिरिक्त आर जो प्रतीति होता है यह सब मिथ्या है—अमत् है । इक्षर, जगत् कर्ता आदि आदि ।

१ ब्रह्म प्रति भीशंकराचार्य कहते हैं—

“वृहत्त्वाद्बृहदपत्ताया उत्यादिकस्यार्थ—ब्रह्म ।”

अर्थात्—यह उद्या पदानैनासे इनसे मगमान् उत्यादि-कस्य-विक्रिय ब्रह्म है, जैसा कि भुक्ति प्रतिपादन करती है—

‘व्यास्यं हनमनन्त ब्रह्म । ( तैत्तिरीयोपनिषद् २।१ )

विष्णुपुराणने कहा है—

‘व्यास्यमिस्तमेदं सत् उद्यात्माप्रमणोपरम् ।

ब्रह्मत्वात्प्राप्तैवेतं उज्जानं “ब्रह्म” उक्तिम् ॥”

( विष्णुपुराण ९।७।५९ )

कहते हैं—ब्रह्म जगत्का कारण है और यही उसके सटस्पताका लक्षण है। ब्रह्म सच्चिदानन्द, अक्षय्य, नित्य, निर्धिकार, निर्गुण, निर्लेप, निःसंग और अद्वितीय है, जो उसके स्वरूप-लक्षणका घोनक है। जगत्का कारण होनेपर भी जैसी कि सांख्यकी प्रकृति या वैशेषिकका परमाणु है, उस प्रकार ब्रह्मपरिणामी वा धारमक नहीं। वह जगत्का अभिन्न—निमित्तोपादान विवर्ति-कारण है। अस्तु, ब्रह्मपरिणाम का विकार नहीं, अपितु विवर्ति है। किसी वस्तुका कुछ और ही हो जाना—उसका रूपान्तर हो जाना जिससे उसका अस्वी स्वरूप ज्ञात न हो वह विकार वा परिणाम कहा जाता है और उसका उस जैसी आकृतिकल्प कुछ और प्रतीति होना 'विवर्ति' कहा जाता है। यों तो नाम और रूपकी उत्पत्ति ही नाम-सृष्टि कही जाती है, पर ये दोनों नाम और रूप ब्रह्मके कोई अवयव नहीं, क्योंकि वह उक्त तीनों प्रकारके भेदोंसे पृथक् है—रहित है। ब्रह्मका सम्पक्-निरूपण करनेवाले आदि ऋषि वेद और उपनिषद् हैं। किंतु वे भी उसे 'नेति नेति' अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं' कहकर उसे प्रपञ्चोंसे परे—अव्यय मानते हैं। कोई-कोई जीवात्माको ब्रह्मका अंश मानते हैं। पर बुद्ध-अद्वैत-दृष्टिमें जीवात्मा ब्रह्मका अंश वा कोई अङ्ग-भेद नहीं, अपितु अपनेको परिच्छिन्न और मया-विशिष्ट सम्पत्ता हुआ ब्रह्म ही है, इसीसे 'सत्त्वमसि' वाक्य-द्वारा आत्म और ब्रह्मका अमेद व्यञ्जित किये जाता है। बुद्ध और अद्वैत क्या ?

“पतन्मते सुनिष्यन्न सुनिष्यन्न साङ्ख्ये चार्थकारणे ।”

‘तद्विश्वस्यर्घ्यमाचार्यैः परं शुद्धं विशेपितम् ।’

द्विधाज्ञानं तु पद्यस्याद्यामरुपात्मना मुहुः ।

ईशाञ्जीव्यरमना वापि कर्ष्यकारणतोऽप्यथा ॥’

‘द्वीत तदेव द्वैत’ स्याद्द्वैतं नुततोऽन्यथा ।’

अस्तु—

‘शुद्धाद्वैतपदे द्वेयाः समासः कर्मधारयः ।

अद्वैतं शुद्धयोः प्राङ्मुः पठ्यित्पुङ्गव बुधाः ॥’

—शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

परकणस—शुद्ध प्रकार, कर्पात् जिसके द्वारा वस्तुओंका स्वरूप

प्रतिगोचर हो अथवा जिसके भीतर पढ़कर भीज्ञे सिद्धतायी पड़े ।

दीप्ति, आमा, आशोक, ज्योति, चम्क, तेज ।

‘स्युः प्रमादगुरुवित्थिभाभाश-छविद्युनिदीपय ।

रोमिः शान्तिः श्मेष्कृषि प्रकृतो घेतिमास्वपा ॥

—अमरकोश १ । १ । ३५ । ३६

बैज्ञानिक कहते हैं कि जिस प्रकार, ताप गतिशक्तिका एक

स्वरूप है उसी प्रकार प्रकाश भी गतिशक्तिका एक रूप है । प्रकाश

काई पृथक् द्रव्य नहीं, जिसमें कि गुरुत्व हो । प्रकाश पड़नेपर भी

कोई वस्तु उतनी ही भारी रहेगी जितनी कि अंधकारमें थी ।

प्रकाशके संबंधमें इधर वैज्ञानिकोंका एक और अविम्वन है कि प्रकाश

एक प्रकारकी तरंगत्त्व गति है, जो कि किसी ज्योतिष्मान्—पदार्थसे

इधर और आकाश-द्रव्यमें उत्पन्न होती है और चारों तरफ बढ़ती

१ ‘शुद्ध’ शब्दका एक दूसरा अर्थ भी माना जाता है यथा—

‘मायासम्बन्धविरतं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।’

है । जलमें यदि पत्थर फेंका जाय तो जहाँ पत्थर गिरेगा वहाँ जलमें एक प्रकारका छोम उत्पन्न होगा जिससे तरंगें उठकर चारों ओर बढ़ने लगती हैं । ठीक इसी प्रकार ज्योतिष्मान्-पदार्थद्वारा 'इधर' और 'आकाश-द्रव्य'में जो छोम उत्पन्न होता है वह प्रकाशशक्ति तरंगोंके रूपमें चलता है । अतः यह आकाश-द्रव्य विद्युत् वा सर्वव्यापक पदार्थ है जो कि प्रकाशके बाहकका यथार्थ कार्य करता है । प्रकाश—तरंगोंकी कल्पनातीत है । वे एक सेकण्डमें हजारों मील वा कोसके हिसाब चलती हैं । प्रकाशकी उच्च तरंगें वा किरणें जो निकलती हैं, यद्यपि वे सब एक ही गतिसे गमन करती हैं, पर तरंगोंकी लंबाईके कारण उनमें भेद समुपस्थित हो जाता है, जिससे उनकी लंबाई भी भिन्न भिन्न हो जाती है । इससे किसी एक प्रकारकी तरंगोंसे बनी हुई किरणें अन्य प्रकारसे बनी हुई किरणोंसे भिन्न हो जाती हैं । यह भेद ही रंगोंके विविध भेदोंका कारण है । जैसे—किसी तरंगकी लम्बाई ००००१६ इंच है, ता वह बैंगनी रंग देगी—प्रकाश करेगी । और जिसकी लम्बाई ००००२४ इंच होगी वह लाल रंग देगी, अर्थात् प्रकाश करेगी । इसी तरह अनेक भेद हैं, पर उनमेंसे कुछ ही हमारी श्रुतिविवेकोसे प्राप्त है, बाकी नहीं । पहिले 'प्यूटन' आदि पुराने तत्त्वविदोंने प्रकाशको अत्युत्पन्न वस्तु माना था, पर पीछे यह अर्थ—वस्तुकी तरंगोंके रूपमें माना जाने लगा । इधर फिर बोधे किन्तोसे अत्युत्पन्न माननेको वही पुरानी प्रकृति वैज्ञानिकोंमें दिखायी पड़ने लगी है ।

प्रकाशके अन्य भव्य भी होते हैं जैसे— विकिरण, स्युटन, विद्युत्, अयिम्पकि, प्रकटन, प्रकाश होना, गाबर होना, देखनेमें

कहते हैं, जहाँ बहुत रेत जमा हो गया हो । मूड़, कधी, रेगिस्तान भी वहाँ ही कहलाता है । और मही समस्त भूमिको कहते हैं । जैसे—

गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वीवमाऽधनिर्मैद्वनी मही

—भमरश्लेष

इसी प्रकार ज्योति ( जोति ) और प्रकाश ( परकाश ) में भी यही बात है । यहाँ ज्योति और प्रकाशका प्रकृति संबंध होनेके कारण इस पद्यांश—‘ज्योति-प्रकाश-परकाश’ का अर्थ प्रकाशकी ज्योतिकी प्रकाश होगा । यानी समानार्थी होते हुए भी भिन्न अर्थ होगा, क्योंकि प्रकाश सेनकरे कहते हैं, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है और ज्योतिको श्रौं वाणि यथा—

मग्नी दिवाकरे च ज्योतिः ।”

गोपी-वचन

( ८ )

मारग—शुद्ध भाग, अर्थात् पप, रास्ता, राह । सुधा—शुद्ध सीसा, सरल, जो टेढ़ा न हो, कफ रहित, जो टीक साधारण स्थितिमें हो, जिसमें कफता न हो । नैम—मयन शब्दका भावामय अल्प और मनोहर रूप, मोहन, नेत्र, लौंस, वस्तु ।

“लोचनं ‘मयतं’ नेत्राभीक्ष्ण्यं चक्षुरन्विषी ।”

—भमरश्लेष २ । ६ । ४४

लौंस, देखनेकी बड़ इन्द्रिय जिससे म्याबर और जंगमोंके रूप, भाकर, वर्ण और विस्तारका यथार्थ ज्ञान होता हो । मनुष्य-शरीरमें यही एक ऐसी इन्द्रिय है जिसपर जादूफकके द्वारा पदार्थोंका निम्न लेव जाता है, आदि-आदि ।

## अमर-गीत

नैन ( नयन )—शब्दकी एक सुन्दर न्युत्पत्ति करते हुए  
रसनिधिजीने बड़ा गजब डाला है,—देखिये न जैसे—

अपु कगति वैचरि मर्दि 'रसनिधि'—कर बिनु नौम ।  
नैचनि में नै नौहि नै पा तै नैना' नौम ॥  
अपनी कवि युग भीच की कबो कहीं की रिति ।  
शब्दहि में नै नौहि तो करे "नैना" का नीति ॥

अपवा—

जो कसु उपजत अपह उर सो ने 'भौलें' हैति' ।  
'रसनिधि' भौलें नौम इन्द्र पापी करय समेति ॥

और वस ( वौस )—

"भीर रसन छे जान ही रसना है अमिरौम ।  
एकत जे इक क्य-नम ततें है 'वस' नाम ॥  
सुति—शुद्ध सुति, अर्थात् कानन, शकण, अपवा शरीरकी बह  
(द्विय बिससे सुना जाता है ।  
'कव्यशास्त्रमहौ शोभ' 'सुति' स्त्री अषण्य अघः ।  
( अमरकोश २ । ६ । ४५ )

सुति—शब्दको स्लेयमें पागकर—सजाकर कवियर विहारी-  
अपनीने बड़ी उँची ठकान उकी है, यवा—

"जकी शरीरवाही रकी 'सुति' सेवत इक संग ।  
बौक-वास केसर कछौ रदि सुतेन के संग ॥"

नासिक—अणोन्मिश्र, अर्थात् बिससे सूँघा जाय, वा सुगन्ध-  
दुर्गन्ध मन्त्रम हो बह इदिय, नाक, नासा । यवा—

'इदिये धार्यं गन्धवहा घोष्य मयसा च 'नासिक्य' ।"

१ पौं ('वौलें') शब्द—बहने वा अंकित कर देनेके अर्थमें प्रयुक्त है ।



मुरली—बंशी, बौसुरी, कर्पाट बौसफ्री कोमल मन्त्रीसे बननेवाला यह बाजा जो कि छँकसे बजता है। इसीको "बेणु" भी कहते हैं—

मुरली वाद्य-विशेषकः विश्लेषण कृते ह्ये संगीत-रत्नाकरके कर्त्तव्यं कर्मति है—

“हस्ताग्रपाभिन्न माने मुखरम्घसमन्विता ।

चतुःखरचिच्छ्रयुक्ता मुरली शारदादिनी ॥

—संगीतरत्नाकर १ । ७८४

और "बेणु" जैसे—

वैणवाः खादिरो दांतश्चादनो रक्तचंदनः ।

आयसः शंस्यतो रौप्यो बंधः स्यात्कंधनोऽधया ॥

पशुसः सरसः ह्लक्ष्णो प्रथिमेवप्रयोच्छ्रितः ।

अनिष्ठांगुल्यिस्तार गर्भे च सुपिर कथत् ॥

सर्वैर्भ्यमानवैर्भ्यं च समाकृति समस्ततः ।

तस्य द्वे त्रीणि चत्वारि चांगुलानि शिरःस्थितात् ॥

स्यफस्था । फुक्कारसुपिर कर्ष्यमंगुलसंमितम् ।

मुक्तरंधावरे रधं भवेदेकांगुलांतरम् ॥

अर्धोंगुलांतराणि स्यू रधाम्यम्यानि सग्य च ।

ताम्यष्टी बदरीबीजसद्यद्यानि प्रकल्पते ॥

—संगीतरत्नाकर वाद्यम्बरा, ६

इस छेटी-सी 'मुरली' की मधुरतापर रीतकर ब्रजभाषाके फकि-कावेर्गेने बड़ी ऊँची और अनूठी ठबाने उड़ी है—बमीन और वासुधनके कुशुभू मिहाये हैं, जैसे—

‘ध्यानं वसुधनमहंसकुमस्य भिदम्

मिदमुधामपुरिमानमधीरधर्मा ।

कन्दर्पशासननुषं मुद्गरेष शसन्  
 बशीष्पसिर्गपति कंसनिपूङ्गवस्य ॥”

—मच्छिरसामृतसिन्धु

मिम्बम्नम्युभूतस्यमकृतिपदं कुर्वन्मुद्गस्तुम्बर  
 प्याशाश्रुन्तत्यस्यतस्मिन्नुवांसस्तम्भपदबोधसम् ।  
 मीरसुप्या बलिभिर्बलिं विचलयन्भोगीन्द्रमाधूर्णपन्  
 मिम्बम्नप्लवङ्गाहभित्तिमभितो बभ्राम बशीष्पनिः ॥”

—वीर्यगोस्वामी

सुरभी हरि तैं न पूयति है ।

बाही के बस मय बिरतर बी अवरन-रस लहति है ॥  
 इस तैं मिदुर मई वह बोळति तन तैं मन बध्यावति है ।  
 अवरन-पय कुङ्क-कौलि मिटावति अरु कौ निकल करवावति है ॥  
 बिहरी रहति अरति बहिं काहु मुळ काणें वह पूळति है ।  
 अब दे हरि तैं होति न न्यारी ए कहे कौ मूळति है ॥  
 रौम-रौम-कल-मिळ-रस-पागी अनुरागिनि हरि प्यारी ।  
 “सुर” काम बाके रस-कुणये मीनी सौत हमारी ॥

सुरभी कौन तप तैं कियो ।

एहि गिरधर-मुळहिं अगरी नबरेन कौ रस पिळै ॥  
 सुंदर-काम-कमल-दुळ-अपेन तोहि तन-मन विषी ।  
 “सुर” सिरी गोपाळ बस मय, जगत में बस कियो ॥

‘सुरभी हरि कौ नौच नचावति ।

बुठे तै यह बौल-बसुरिष्य नद-बैदन कौ मावति ॥  
 अये रहति मुबस ताके ह्यै सकुपि न बोळति बात ।  
 बी निबरक जान्वा करवावति बैकुण्ठुं गाहिं अजगत ॥  
 अब जानति अचीन मय पु, वैकति धीच-नचावति ।  
 बीहति नवर अकत कर-पुष्ट-रंभ-चरन अयटावति ॥

हम वै रिस करि अरि अबछोकरि जसा-गुर करकावति ।  
 'सूर' सौम अब-अब रीछति है उब-उब सीस बुझपति ॥"

—सूरदास

"बंसी हम सौं बैर कियो ।

पिय को अजर-मुखा-रस बन में बिपरक बाइ पिबौ ॥  
 या बैरन को बुझ जावें अब देखै वैठि हियौ ।  
 नागरिवा' मज-गुबतिन को तें सरबसु छीन कियो ॥

—नागर-समुच्चय

'कियो है कसैकर को सिकर करति कैइ  
 अति नहि देखि कहुँ मनके पतंग को ।  
 कियो है उखरन मुखावै हाट-बाटन तें  
 हाटन तें जावें बधु छौरि मज संग को ॥  
 कियो मेह-बटा छीजे हुँत उन ज्या छेरी  
 पृ री धीर परको सरस-रस-रंग को ।  
 कियो यह मोहन को बौसुरी बिमोहत है  
 सोहन लगति लपुँ गौहन जगंग को ॥"

—अरु कवि

'अभी उद-अंस तें अजर-अबतेस ठनी  
 बनी है अछारन में है द्विपु को अति जगदी री ।  
 हरे मन-बन को करै है माधुरी सौं वात  
 उदै उठपात बाके बुझ तें दृषाही री ॥  
 तिर्जन को किछुँ, द्विछुँ योदि तें मरी कधीर  
 कोलै मुँहजोर बरजोर से बुझाही री ।  
 काकी के हँसन कहुँ कैमें प्रतिपाही पातें  
 कई बबसाही जग में प्रबीब जगदी री ॥"

—शृंगारमंथ

“सही सीत-मीत बरखातप की उतपात  
 रात-दिन यातें बहु-भौत तप को किया ।  
 जन्म तें बाकी प्रीति पुरु पग बाकी रही  
 बाकी गई गादी नहीं बेंडु कसलपौ दिया ॥  
 कीजै नहीं रोक बापै कीजै नहीं रोक बीर  
 बेह को सुखाइ धीर बेह-भत को किया ।  
 परकि सुखाकि लाह छीन्ही बजराइ पाकी  
 तातें बह बंसी जाइ भई स्वाम की प्रिया ॥”

—हरदय

“बोह को सुखेंस-बंसी ऐसों ही कसुक-दिन-  
 मारी-फिरी ऐसों ही कसुक-दिन लौंवी री ।  
 छेप करबाइ दिव छाती में छ-सात गई  
 कपरीगर-हार्जेन बनेक-बिधि दागरी री ॥  
 ताहि मय-मोहन किठे दिन तें राखि-सग-  
 दिव-देषा सोई सुराग बनुरामी री ।  
 हीठ छै को कपों न बज-बाजेन सतावै सोई  
 बौसुरी सुन्वों में भव हरि-मुख छागी री ॥

—दिवदेव-मयोप्या

“जेठे पुर छीनि डर, तेठे-छेप कीनि जोड—  
 बेते राग तेठे दाग रौम-रौम छीजिये ।  
 लौनन के लीके ईनु बौनन बज्जाइ इति  
 धीर-धीर भंगलु तुबीर तनु कीजिये ॥  
 भंवर की धुंवी बर-सुनि करै फेखा कइ—  
 सुनि-सुनि सबद बसेरी बन लीजिये ।  
 हम बज बसि हैं तो बौसुरी न बसि है जब  
 बौसुरी बसाइ कौन्ड हमें बिदा लीजिये ॥

—प्रेत अरसमकति

"बौंसुरी बिसरौ नौ लौ बज ना बसैयौ बज  
 बिबि-बौबि बौंसुरी के बस करि दई है ।  
 'आबम' कइ हो म्पाइ नेंब देबें मंत्र तबे  
 कौनि सुनि कौन्हे ऐसै ठेई तम ठेई है ॥  
 कित-जनबेठे तुम तापें मुसिक्यत हो बू,  
 रीक्षि-मुप्यतइ के सुकेसी गिरि गई है ।  
 बूमि कागी गौसी सौ उसांसनि की भासु नहीं  
 एधरे की हौसी है निरौसी और मई है ॥"

—अण्णम कवि

पंगुल की पग होत खंजन की भासा-मग  
 एके कागि छै के जग-कीरति बकाई है ।  
 बिबे बिबौग बैजबंती बारि गई घाई—  
 बास-मी बिबासी बिम्ब-बिदित बकाई है ॥  
 जया करै बग की महापा करै ऊंची-नीचे—  
 पापा बेदि बस में यौ बरत सगई है ।  
 कौन्हे-मुख-सागि करै करम कसाहुंन की—  
 बाही बंस बौंसुरी" बनम-जरी बाई है ॥

—एध

"और बिब बेठे तेते प्रीम के हरेबा हीत  
 बंसी के कइ की कम् जाइ का कहर है ।  
 सुनति ही रीम-रौम रीस जाइ ऐरी बैबा  
 जौम बारि बारै, पारै बैक्यरी गहर है ॥  
 'आब' कवि लख लीसों ओरि-कर दूखति हों—  
 मीजु कदि दौत्रे जो ये मो ये महर है ।  
 बौंस में कि बबमें कि होठ में कि हूँक में  
 कि बौंसुरी की दाबमें कि पुन में अहर है ॥

देखी-देखी अब ही साहूँर तेरी उठपायी ।  
 आली है व रँग 'बंसी' अब तो रहन दे ।  
 तारन की बुद यत्नो खंड मति-मंद बचनो—  
 सिमुसार-कद यत्नो मरग-बहान दे ॥  
 'आक' कवि अब बरकिंदन को पूजन दे  
 मंडक-मकिंदन को मजुता कवन दे ।  
 होंन दे रे हीन दे सवेरी गिरई-कॉन्व  
 रई को कवन दे गैरेन दुहम दे ॥३३

—आक

'अक-बीबन-ओईन' के तकिया—  
 कर-पूईन-सेक विद्यावति है ।  
 मति-सुंदर कोमल 'बीत' ममी—  
 मकिंदन-वीन तुषावति है ॥  
 बैगुरीन तें कोपत पौइ कोई—  
 दू तक मन-मोद न कवति है ।  
 हउवे मुक सौ मठवारी बरी  
 बैसुरी तोहि नीच न आवत है ॥

—गफनेत

बैठे मंग कवति जलंग-अरि रंग-रैसे—  
 बंग-बंग कोक-तरंग-कवि कबै है ।  
 कबै 'रतककर' कहुक रंग-बंग कोरे—  
 एकपक मठ है मुबंग वरसबै है ॥  
 तुषा-तोरे स्वाफी-ओरे मुक-बिजया तें मोरे  
 बैतें कंड-गंघ पे मकिंद-हुंघ चाबै है ।

● 'आक' कविने 'बंसी-बीता' नामसे एक बड़ा सुन्दर मन्त्र रचा है जो कि छेम्मे छे नहीं पर मोम्मे अबस्य भरी है ।

करनेवाला प्रयोग, सुधि-भुधि भुञ्जनेवाली शक्ति, मोहिनी-माय्य,  
रादू, टोना ।

मारग, सूचौ, नैन, बैन, सुति, नासिक्य, मुखी और ठोरी—  
आदि सुन्दर शब्दोंके सरस प्रयोग ।

“या ‘मारग’ इन किं गार्ह हो कर्हूँ न दीन्हीं दौं ।

—एकिकरण

“अधियौ ‘सूचौ’ इहै—सैदेखवा ।”

—माधुरीदास

“नैब’-भुधि कनी जाठ कसु जीरें ।”

—कवित-किठोपी-भाषीन

“अजर हीरें रैगमैगी बोकति उछटै-बैन ।

कर-पहच बरें बदन पै सठकि नचबति बैन ॥”

—माधौदास

“सुधि कुडक अति-सकमळें-सोभा कही न च्याह ।

—कुम्भनदास

“नासिक्य’-मीरिधर सोइति मोंती’

—गोविंदस्वामी

“सुधि भुधि ‘मुखी’ चाइ हरि रास-रूपी ।

कुंड-हुम-कैली प्रकुणित, मंडक-कंचन-मनिम सूप्यौ ॥”

—हरिदासस्वामी

● व्रज भाषायें एह शब्दके दो प्रकारसे प्रयोग और मिलते हैं ।

“अपे” बचनन मोंगिए हो, लामन गारत-दौं ।

—एकिकरण

“सूचै” दौंन सेहु किनि म्मे वै और करा कसु पौर परैगी ॥

—नंददास

“सुसन्नि-छोरी” धरि हें प्यारे सकति कई रति-ओरि ।”

—रति-पराव,

श्रीनन्ददासजीकी तरह “छोसुरा” ने भी ठहरके उस बहैत-  
वर्देका कुछ ऐसा ही सुन्दर नवाव दिया है, जैसे—

हकी नौद कसुक कहिये कीं ।

मन-आमें सोऊ कहि धरी पौ-आमें हम सब सहिये कीं ॥

है अपदेश आहु कीं ऐसी कौमल सुम्बों न देखी ।

निरपति परै कसुक अति-वीरन बौहसि मरि उर केन्गी ॥

मिसि-मिन बसत नेंकु कहि भिभरति इदैं-मवाहर-अंग ।

बा कीं नहीं छैर है नहीं छै राग्यं उरुं नेंग ॥

नज्जवासी शोपाक-उपासी सो बावें हम छौंदि ।

‘सुर’ खोग-बन राव मधुपुरी, कुबिजा के पर गदि ॥”

कपवा—

आहे कीं रोऊत माग-मूक ।

सुनों मधुप ? निरगुन बंधके, उन्नयप के नूँदा ॥

है तुम मिसी पटण कुबिजा कीं अति-बनरु कीं ।

बैद-पुराव इम्बति सब इदि उन्नयि हया कई कीं ॥

वा का कस पीका कर्त मंगल छउ व नूँदी ।

‘सुर’ सुर बनरु गण है, प्यार-मिगल कीं ॥”

१ बहैत-वहियेका यह छिद्र है कि इतक उन्नयि होत है कुछ  
है वह लव मिया है—अन जय हउा है । २ वात है कि नि लव  
रस्तीके मकरन न बनरु मकर नन इत ॥ ३ इदि उरुं उरुं इदि  
मुम्बकनने न बनरु उरुं इदि उरुं इदि इदि इदि इदि इदि इदि इदि  
बान पदवी है । कतिन मन्ने उरुं इदि उरुं इदि उरुं इदि उरुं इदि  
राव मधुप इदि उरुं इदि इदि इदि इदि इदि ॥”



सत्त्व, रज और तम—आदि । अप्युत—शुद्ध अप्युत—जो कमी  
 अप्युत न हो, अर्थात् जिसका कमी नाश न हो, स्थिर, अमर, सदा  
 सर्वदा रहनेवाला, अविनाशी, ( जिसका कमी नाश न हो ) ।

‘स्वरूपसामर्थ्यान्म अप्युतो न व्यचते न—व्यधिष्यते—  
 इति ‘अप्युतः’ ।’ —विष्णुसहस्रनाम, षाड्भ्याम्

अर्थात्—अपनी स्वरूप-शक्तिसे कमी अप्युत नहीं हुए, न होते  
 हैं और न होंगे—इसलिये—‘अप्युत’ ।

‘शाश्वत २ शिवमप्युतम् । —ना ठ ११ । १

भागवान् भी यही कहते हैं —

‘यस्मात् अप्युतपूर्वोऽहमप्युतस्तेन कमणा ।

वित्—शुद्ध विद्य, स्रष्ट संसार, सम्पूर्ण जगत्, वीरह  
 मुक्तीका समूह, सब, जैसे —

‘विद्मं महोर्षं कृत्स्नसमस्तमिच्छिष्यऽक्षिप्तानि निगोपम् ।’

—अमरकोश ३ । २ । १४

सगुन, तद्वि, निरगुन, निराकार, मिरलेय, अप्युत और  
 विज्ञके सरस प्रयोग—

‘गोविन्द’ प्रभु गिरीपर अनुमति के “सगुन” रूप है अप्यु ।

—गोविन्दराज

“वीर कहु इपनी नई इपाधि ।” —टूमराज

रूपी से “निरगुन” उत राती ।” —मूरदाज

१ चौदह मुक्ती—“मूः, ध्रुवः स्वः मद्, बना वना, तत्त्व,  
 अस्तव मुक्ती, वित्तव, गभस्तिमत् महात्त्व रत्नत्त्व और पद्यत्त्व ।

## अमर-गीत

निरंजन विराट्परं परब्रह्म परमेस्वर—  
 एकुपी अवेकु होइ व्यापी विश्वंभर । —बैजू बाबट  
 विराट्पर निरंजनं निरंजन ज्ञानदधनं निरंतर्यम् ।  
 —आनंदधन

बट-बट में व्यापि रहौ 'अभ्युत' सोई—  
 भूले मति मतिमंद हूबो जनम जाहूगी ?" —तान्त्रिक  
 विश्वं कुसल कारण विधिना बिनती करि जनि ।"  
 —नंददास

श्रीनददास्की उक्त उक्तिपर यह श्रुति-वाक्य किंतना सिद्ध  
 है। जैसे —

यत्तद्देष्टव्यममाद्यमगोब्रमयर्णमधनुभोज  
 "दम्" ।" —गुणधोनिपद् १।१।१ तदुपायि

अथवा श्रीमद्भागवतमें श्रीशुक कहते हैं —

सत्त्व रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।  
 श्रीब्रह्मतीतोऽथ गुणैः सृजत्यबनि हस्त्यजाः ॥  
 —श्रीमद्भागवत १।४६।४

श्रीसूर कहते हैं —

वे इति, सकल-सौर के बासी ।  
 एतद्ब्रह्म अर्वाचित मंडित पंडित मुनिन विद्यती ॥  
 सत्त्व-यत्ताक अथ अरप पूयषी अरु तम बरुन बपारी ।  
 अर्वातर-रही देखनि को कारण-रूप-मुएरी ॥  
 मन बुधि अहकार दस-ईही प्रेरक रूप-मनअरी ।  
 एके अरु वियोगु विद्यारति ए अरु अरु अरु अरु ॥  
 अरु जैसी रूप रही मन सो अरु अरु अरु अरु ॥  
 अरु अरु अरु अरु अरु अरु अरु अरु ॥

बट-बक, भट, हादस-बक विरुणक जजपाजाप जबाकी ।  
 त्रिजुनी-संगम ब्रह्म-द्वार-मिदि यी मिदि हैं बबमाकी ॥  
 पूष्यदस गीया कृति साखी त्रिदि विधि मुनि समुष्माप ।  
 ते सर्वेस श्रीमुक्त गोपिन को "धूर" सुमहुप जगाप ॥

कबीर साहब फमति हैं —

"आके मुँह-भाषा बही नौही रूप-अरूप ।

पुहुप-बास में पाठरा पैसा तत्त्व अनूप ॥ —छली

पापी-साहिब कहते हैं —

"कोति-सकपी अवतमा बट-बट रही समाह ।

परम-तत्त्व मब-भावबी, बैकु न हत उत आह ॥

"रूप-देख बरलो कहा कोटि-सूर्य परगास ।

अमम-अगौबर रूप है कोटपाबै हरि को दास ॥"

नेवन-भागों देखिये, तैज-पुंज जगरीस ।

बाहर भीतर रमि रहा सो भरि राखी सीम ॥"

सहजाबाई कहती हैं—

"विराकर-आकर सब विरगुन औ गुनबंध ।

हे ग्राही सृ रहित है 'सहजो' सो भगबंध ॥"

काम नहीं औ नाम सब रूप नहीं सब रूप ।

'सहजो' सब कसु ब्रह्म ही हरि परबट, हरिगुण ॥"

गोपी-यचन

( १० )

गो—गौ, घेनु, गीय, गाय, पशु ।

गो-शब्दके और भी अर्थ हाते हैं जैसे —रिण, रिण्य,

बचन, पृष्णी, मत्त, वृष-राशि, इन्द्रिय, सरसती, बगीश, बौंस आदि ।

## अमर-गीत

वन-जंगल । अवन-कजल, सुरमा-कौरव ।

कवि-संसारमें अवन-अकल ज्योंसोफ भी बड़ा बोलबाल है ।  
 इस तीन अक्षरके "अवन" शब्दपर कवि-कोविदोंने अपने-अपने  
 कल्पे निकाल-निकालकर रख दिये हैं । कहते हैं—कजल, इक्षिके  
 छफ करता है, पर यहाँ तो इस कल्पमें "कजल" ने कवि-दृष्टियों  
 को और भी कल्प बना दिया है—एकदम पुँखसा कर दिया है  
 देखिये न, जैसे—

"अवनके पिँका-परे अवनतलफत कियों—

कवि सुग मीन बाग-फौस में मर्दन है ।

रौमके कहरोंमें फूर्जन की कल्प कियों—

प्रापुन-तिसक मिनार के लर्दन है ॥

विपिन पुँख मीन मीन है मदीयन से

"अकमद" सुर्जन-ई मे ममके हर्दन है ।

काजर की रस अचोर कोर्दन में मीन—

कीन्हे चित-चोरके मेचन बर्दन है ॥"

×

×

×

"मैन-मोहिनी मृत राधिका की—कवि मोहनके मैन मैन पम्पी ।

बहुँ जोर तें प्रेमी है कवि-क-सी सुखकी कवि बंद-कुँमार हैं मी ॥

एक बँनन-बीच में काजरके बिराजत रूप धेनुप बम्पी ।

एक को लखि बंद-मों गैह कियो अरविदल मीनों कलक-कम्पी ॥"

×

×

×

"कम-अपेरी छारि के, मोहन गौ चित-चोर ।

अवन-मिम ईमु बँन ए, पीपत हकहक-चोर ॥"

गोवर्धन—गोवर्धन, गोरधन अर्थात् ब्रह्मका पर्वत विद्येय ।

यों तो 'गोवर्धन' का विस्तार गोलोकमें बाख-इजात कोसका कहा जाता है और गोलोक-बिहारी भगवानके आनन्दसे उक्त गोवर्धन की उत्पत्ति कही जाती है, पर गर्ग संहिताके कर्त्ता गोवर्धनकी उत्पत्ति ब्रह्ममें इस प्रकार कहते हैं—

एक समय श्रीपुरुषाय श्रुति पृथ्वी-स्पर्शन करते हुए ब्रह्म-प्रतापशाली शास्त्रम्नी-द्वीपमें द्रौणाचलके यहाँ जाये और वहाँ श्रुतिने सुंदर रत्नमयी दिखरोसे सुशामित, सुगंधसे संयुक्त, वृक्षोंसे परिपूर्ण और दिव्य-पुष्पोंसे प्रफुल्लित, कंदराजोंसे कल्पित, श्रुति-मुनियोंके उपयुक्त अनेक स्थान तथा पशु-यज्ञियोंसे मरुत उसके पुत्र गोवधना को देखकर उसे कशरी से जानेके लिये याचना की । श्रुतिके अनुनय-विनयसे गोवधनने मार्गमें कहीं भी न रखनेकी प्रतिज्ञापर श्रुतिके साथ जाना करूट किया, क्योंकि उस ( गोवर्धन ) का कहना था कि यहाँ भी भाप रख देंगे वहाँसे पुन मैं अगाड़ी न आऊँगा, वहीं रह जाऊँगा । अस्तु, इस दर्शनानामेके अनुसार श्रुति गोवर्धनको ब्रह्मक हास्ते कशरी से जाने लगा तो भगवान्‌गासे श्रुतिके इस स्थानपर जहाँ कि अब गोवर्धन-स्वत अमान है—पुत्राकाकी आवश्यक्ता प्रतीत हुई और गोवर्धनको वहाँ रख अपनी शक्ति निवृत्त करने लगा, तदुपरान्त जब व्याप पुन कशरी चलनेको ठपत हुए और गोवधनको ठठन लगे तो 'गोवर्धन' बहने लगा कि महाराज ! अब क्षम कीजिये, बस मेरा और आपका करार पूरा हो गया, मैं अब अगाड़ी नहीं जा सकता आदि-आदि । कतएव धी-

पुत्रस्य श्रुतिं जपनी आगे मनोवाञ्छया पूरी पढ़ती न देख मुञ्जस्रकर  
बोले कि—आ दुष्ट ! तू तिल-निष्ठ नित्य-प्रति यहाँ घट्या रहेस  
और कछियुगमें तेरा इस तरह नाश हां जायगा, इत्यादि ।’

—‘मार्गसंज्ञिका (परिचयवर्णनसंज्ञा)’

गोवर्धन-भारणश्री कमनीय-कथा श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार  
लिखी है—भद्रबासी गोप-गण प्रतिवर्ष अष्टौ बर्ष हानेके लिये  
शरदकालमें इन्द्रकी पूजा किया करते थे । उन लोगोंने यह विश्वास  
था कि उक्त पूजा करनेसे हम सब तरहसे सुखी रहेंगे, जैसे—

मंद-महर सौ क्वटि क्योबा सुर-वशि-पूजा क्यों विचाराई ।  
बाकी कृपा बसत भद्र-भीतर बाकी गई गई इहाराई ॥  
बाकी कृपा बाज-धन पूरा बाकी कृपा तें नभ-मिथि पाई ।  
बाकी कृपा दृष-शुचि बहुलक म्हास-मैनाथी मैबत सपौई ॥  
बाकी कृपा पुत्र भची मेरे कुसक रही क्याराम-क्याराई ।  
‘सुर’ बरधि भी क्वटि मंद सौ दिव बाकी बच कौ सगारै ॥

वस्तु, यज्ञोपाके इस प्रकार याद दिलानेपर बड़ उत्साहक साथ  
इन्द्रपूजाकर आयोजन होने लगा । उसी समय कहींसे खेष्टे-भूदते  
कुम्भ आ गये थीर म्मो पूछने कि बाबा ! यह क्या हो रहा  
है ! बाबा मंदके सब कहनेपर आपने इन्द्र-पूजाके लिये मन्त्र करते हुए  
गोवर्धन-पूजाश्री सभ्राह दी, यथा—

‘बाबा गोवर्धन पूजो भद्र ।

क्यतें भाव गुणक गोपिभ्य सुखी सबब को राज ॥  
बाबों इधि-इधि बकिई बभभव क्यदा सभ्र सौ क्यज ।  
भितरि के कड बीडे धर जयमे कोरि-इत्र वै गयज ॥

मेरी कड़ौ मौबि जब छीजै भरि-भरि सफरैव छात्र ।  
 'परमावध' बखै समय बरपै कुर्यो करत क्यो वात्र ॥  
 बाबाके सदिखे तो ये ही, फिर इनकी बात क्यो न मानी  
 बस्ती, वस्तु, मद दावा सभ गोपोंसे कहमे छ्यो—

“इमारी कम्मह कइ सो कीजै ।

बाबो सिमटि सकक मज-बासी परबत बें बकि लीजै ॥  
 मनु सेवा पकबौन मिछाई पर-रस-विजय छीजै ।  
 “भासकरन” मनु मोंहम नायर, पाबि पछपरि पीजै ॥”

अतएव इस आज्ञाके अनुसार गोपकाने इन्द्र-पूजनको विद्यवाकर  
 गोवर्धन पूजा की, जैसे —

“परोबरधन पूजति हैं ब्रह्मराई ।

पछ-मोंहम बागों से कीने गोप-बधू संग क्यई ॥  
 कृप-रही भाजन भरि कीन्हें पाहन बहुत बगई ।  
 बेंदे हैं गोपाक सिखर से भोजन करत निखाई ॥  
 हीपमाकिन्ध-महा-महोपकव, म्बाकीन कप बुझाई ।  
 बिबिध-भौषि सग सखा सख्यप जो जाके मन-भाई ॥  
 पूक फिरत सकक मज-बासी निरक सिद्धावन गइ ।  
 “अकशस” के मनु तिरि पूज्यौ भई भक्तन मन-भाई ॥”

इन्द्र, इन ( गोपों ) के इस नये व्यवहारको देखकर बड़ा मुन्ध  
 हुआ और बरने मेव-गणोंको मुञ्चकर ब्रह्मको कृपा देनेकी आज्ञा ली ।

मेहन सो बोके मुर-गइ । ब्यौरैन मोक्षी करी दिछाई ॥  
 मेरी हीसी करत बडाई । जौन कृति माहि दिवी भुछाई ॥  
 सदा करत मेरी सिबछाई । जब सेवत परबत बें जाई ॥  
 हरी कज तुमझें इकराप । भखी करी सेव के जाप ॥  
 बेगि-बेगि सब ब्रह्म से जाची । बधिके परबत कोइ-बहाची ॥

जब इहि सुनी ईश्वरी बानी । मेधन के सब धीरज बानी ॥  
 “सुरदास” प्रभु सुनि धन ठमके । अपर श्रेय करत प्रभु कमके ॥”

सुर-यसिके इस आदेशानुसार मेघ ब्रजपर आकर भीषण-उत्पात करने लगे । इसे न सह सकनेवाले उत्पातोसे अरुण गोपवर्ग असहाय-सा रोता-झलपता कृष्णसे सहायताकी पुकार मचाने लगा—

“माधौ हू, राक्षी भपनी छोट ।

वे देखौ गोबरधन-ऊपर, उठे हैं मेघ के छोट ॥  
 घुम हू सक की पूजा मेंटी बैर किजौ बन मोट ।  
 नाहिंन पाव महात्म जान्यों मयी है खरे तें छोट ॥  
 सप्त-चौस जक धरख सिराबों धरखी पूजहिं छोट ।  
 क्यौ क्यइ गिर गदगौ कर पै छीन्हों निपट निबोट ॥  
 गिरिधारधौ, तिरनाकत-मारबौ किजौ नंद के छोट ।  
 “परमावद” प्रभु इद विष्णारों सुख्य धरख-तर छोट ॥”

उसी समय इस पदानुसार भगवान् श्रीकृष्णने गोप और गोकुल-की रक्षाके निमित्त गोवर्धन-गिरिके अपने बाँये हाथकी कन्धी—सबसे छोटी रँगछीपर उठा लिया और सबको इसके नीचे बुलबुलकर आश्रय दिया । जैसे फेड़ बालक कलकलनाम्नके अपनी रँगछीपर नँचाता है उस तरह सात दिनतक आप गोवर्धन पर्वतको छिये रहे अपनी उस नाभुरु और फेमल कन्धी रँगछीपर । श्रीनन्ददासजीने उक्त अक्षररत्न एक बड़ा सुंदर भावपूर्ण पद कहा है, जैसे—

“श्रीनन्द-कुंजर के कर-वहल दे मनो गोबरधन गुण करे ।  
 क्यो-क्यो तौन उठति मुरखी की क्यो-क्यो क्येक्येन कबर करे ॥  
 मेघ-सुरांगी सुदंग बज्जकत दामिनि-दमक मानी दीप करे ।  
 खाक लख है नीके राखत गायन के संग सुर जो धरे ॥



इति असीस सक्क योपी-जन 'बरबा को कक अमित्त हरी ।  
अति अदभुत अवास गिरिधर प्रभु, 'नरदास' के दुःख हरी ॥"

मेघोंने सात-दिन और सात रात्रि मखान् इष्टि की, पर गोकुल-  
निकसियेकत्र ब कुछ भी न विगब सके और एकतर भग गये ।  
तदुपरन्त इन्द्र भी भगवान् धीशृङ्गाको पूर्णरूपतर मान गोकुलमें लाष  
और पूजा-अर्चनाके पश्चात् स्तुतिकर अपने लोकको चला गम तथा  
इधर गोप-तथा गोप-बासमें ठमके इस अपरिमित कृत्पर आशीर्षो देने  
छा । जैसे —

"श्रीश्री असोधा पूत सिहारी शिव गोबरधन धारपी ।  
बौम-पौषि वे शक्ति कपी गिरि कृष्ण सर्वम उधारपी ॥  
सात दिवस अति-इष्टि कगई प्रक मेव बहु कारपी ।  
बूद न बरसी कइ देकत धुर-वसि-अथ काकरपी ॥  
ये धुरपी अदिवेक किन्ही है तब मव प्रब सब कारपी ।  
"अद्वयति" की अति करत बीकती पौड परपी-अस हारपी ॥

पूत—बेटा, सबकत्र, पुत्र, अल्प लपना पूत—पक्ति वा  
साफको भी कहते हैं, जैसे —

'पूत पयिष मर्घ्य च ।'

—अमरकोष १।२।५

अवनाम—अबके माप, मलिक, प्रभु, सामी, बर्ता,  
प्रतिपात्रक—आदि ।

गो, बन, अंजन, गोबरधन, पूत और अवनापके सुंर ब  
सुरस प्रयोग ।

"कापी—'गो' ककन गिगारी शीमी श्रिजन बुकाइ ।"

—विद्वेषपी

“सूक्ति परी संकेत-सघन ‘बन’ हों जगज्ज कित जाडें ।”

—हित मन्वान

‘अज्ञान’ ऊपर खंडन बारौ बेंन-व्यक्त मीन ।”

—हरिदास वृक्षरे

“गोबरधर” की सघन-कनरा रेबि-भिदास किमौ पिच-व्यारी ।

—कृष्णदास

“अज्ञ भवौ महरि कें “पूत” जब वै बात सुनी ।” —सु

‘अज्ञान’ प्रमुदित गिरि पून्वी अघें करि ‘अज्ञान’ ।”

—अज्ञान

श्रीसूरने मी नंददासजीकी तरह उद्यमके निर्गुण कल्पनकी  
छिछी उदायी है, ‘हाथ, पाँह नहिं नास्तिक, नैन, बेंन नहिं कौन  
रूप वर्णनका भरपूर-म्बाक उदाया है, यथा—

“मनुकर वह बौनी तुम खौची ।

पूरन-अज्ञ विहारौ अकुन जातौ माया नौची ॥

इहै गौठें न समझति कोऊ, बैसी निरगुन होत ।

गोकुल बौट परे नैव-नंदन उहै विहारौ पौत ॥

को असुमति अज्ञान सौं बौन्ची को वधि-मौखन कोर्यौ ।

को ए दोऊ-अज्ञ हमारे, अज्ञानहुन को लोर्यौ ॥

को छै असन अज्ञौ उद्य-साखा मुरखी-मन-आकरये ।

को रस-रस-रथ्यौ बुदावन हरखि मुमन मुर बरये ॥

अज्ञौ जान्यौ तब कत विन बूड़े कथे भीम विराजत ।

तब ह ‘सूर’ प्रमु गए मूर है, अज्ञ न्यौ नैव सिराजत ॥

अथवा —

निरगुन, बौन वैस को वासी ।

मनुकर, अहि समुदाह सौंह वै बृद्धि-सौंष न हौंसी ॥

कोई बलक ? कोम है कमली ? कोन मारि को दाखी ।  
 कैसे बरब ? मेप है कैसी ? किहि रस को बभिकासी ॥  
 पावैगी पुनि किमो आपुनीं जोरि करैगी गौमी ।  
 सुनति मोंन है रही बाधरी "सुर" सबै मति नौसी ॥"

व्यय—

झिरी-झिरी कड़ा पनाबति बाधें ।  
 प्रतकच्छ बदि देखति कभी भर-बर मोंदव काठें ॥  
 बिनभी पात कइति ही हम सीं सो है अब लौ बुरि ।  
 इहाँ न निरदर असोधा-नंदन प्राब-सँझीबनि-सूरि ॥  
 बाकक-सेग छपें वधि-बोरत पात कनाबत कोछत ।  
 "सुर" सीस क्यों नीरवो बाबत अब काहे बहिं बोछत ॥

व्यय—

"यु बदि बलम-करस-गुन रापु ।  
 हम अनुतापी बमुमति-सुतकी भीरव-क्या बहापु ॥  
 कैसे कर-गोबरर्षेन पारवा ? कैसे कैरी-माएपी ।  
 कसि-दमन किपी कैसे अस बक की बदन बिदारपी ॥  
 कैसे नंद महोच्छप कीर्ती ? कैसे गोप लु कापु ।  
 बट-भूपन मोंन-मोंतन के, प्रब-हुपतिन पहिरापु ॥  
 इधि-मोंनन के भाजन कैसे गोद-नश्रा ली पापु ।  
 को बल-घानु बिज्र भोग कीपें नौबत मेप-मुहापु ॥  
 तब तें छपु ग मुहाइ र्नाम-दिन लुग सम बीतत जौम ।  
 "सुर" मोंगी पिरह-पिपीडिनि हरि-रदि मारी-नौम ॥

यही पात श्रीरामदासजी ब्रह्मसे हैं । वैसे—

ऊपा ले मृत्यु हम देखी ।

सिंह-सनकादि सच्छ-मुनि-पुरकम ब्रह्म ईश बहिं देखी ॥

## अमर-गीत

जो ब्रह्म फिरत सुगौ-सुग जीरी जोग-सुगत तें प्यारी ।  
 सिद्धि-समाधि सपन नहिं दरसी मौहन-मूरत प्यारी ॥  
 नियम भग्नम विमका अस गावें रहत सर्वे दरबारी ।  
 तिल-भरि बार-बार नहिं पावौ कहि-कहि भेति पुक्यारी ॥  
 ग्रथ अती जोगी जो जगम वैद रहे बब मोंही ।  
 भेप परें बरती-जमि हारे तिलहूँ दरसी मोंही ॥  
 सो हम घर-घर बौच-बक्यौ तबक-तबक दधि दे के ।  
 रामदास हम रंगी-स्वीत-रंग बाहु बोग पर छे छे ॥”

एक कवि कहता है—

ब्रह्म को पत्रा है हमारे-कर प्यारे-ऊची ?  
 बावें हम बसुधा के बार गुन नौम कीं ।  
 बरकब बपाह दही-मौखन पुराह प्रात—  
 कवि भक्ति व्यत हुते पुरत बंद-धौम कीं ॥  
 सोदर हकी के से दमोदर कदाह इत  
 कहीं नौम मोंमि हित पूजें कहि दौम कीं ।  
 भगुन बनामी बज कही भिमि बार-बार  
 न्हो हो कबार कदा बंचो बज-बौम कीं ॥”

—दरबार

निर्गुणसे स्तुणकी स्थापना करते हुए श्री“रसरूप” कुछ नयी  
 उक्ति उपस्थित करते हैं, जैसे—

पौह-पिन पावै करें कर-बिन भावै बौम  
 “रसरूप” गुण-बिन्न गुन बहु गुणों है ।  
 तथा विन्न परसि दरसि बिना मैन, बिन्न  
 रसनों रसम्का सुनें कौन बिन्न गुणों है ॥  
 नौक बिन्न ओई वास बुद्धि बिना कोहै पौंस  
 दुरि जो पास बपावै बाप में बपुणों है ।

उपव बधेक केसें उा बधेक्य बाह—

‘स्व है व रेका काहूं देका कई सुवां है ॥

—उपवम-पुत्र

इस विषयपर—नंददासजी उक्त निर्गुण-निरूपणरूप सं-  
नोक्तिपर जरा पत्राला कविकी सरस-सूक्तिक्रम मनोहर मन्ना देखिये,  
यथा—

‘जैसे बौन्द जैसे ही उदक-सुबौन बाप,

है तो मैहमौन वै प्रौनव लिपारें केति ।

बाक-बेरी ‘अंजन’ बेंकापौ ठव अंजित में

तिव बें निरजन कहि हूँ निरधारें केति ॥

‘पदाक’ कवि हाक ही तमकन में बाक्य में

कबाक्य में लेक है किबोके-किबकारें केति ।

हाँ न परबेरी-जोग बेरी-संग परबेरी

बोग-परबेरी भेजि परबे हमारें केति ॥’

‘हम अपने कर सौं दियौ क्यो अंजन बोह ।

दासी-सुन्य हासी करी मबी निरंजन सोह ॥’

—नन्द

श्रीनबमीतजीकी इस सरस-सूक्तिपर एक सुन्दर संस्कृत-सूक्ति  
और याद जा गयी है, जैसे—

धम्या शोभुन्तकम्या ययमिह मम्यामहे जगति ।

यासा नपनमपेजे अजनमृतो निरंजने यसति ॥

अस्तमें जरा जगन्नापनास रत्नाकरजीकी अजगी श्री नंददासजी-  
की इस सूक्तिके साथ देखिये । आप फर्मते हैं कि उदक—

‘कर बिभु जैसें बाप बुद्धि हमारी वह

पर बिभु जैसें बाँकि जितकि रिमाह है ।

कौ पठनाकर' बदल-बिनु कैसें जाहि—

मौकन बसाइ बेंगु घोषव गवाह है ॥

हैले सुनें कैसें दग-मन्व विनी ही हाइ

मोरे मन्व-वासिनि की निस्त बराह है ।

रावरी भनूप कोऊ मन्व-भरूप मन्व

उची ? कही कौन यों हमारे कोम जाह है ॥'

### उद्धव-वचन

( ११ )

अंड—ओक-मखल अथवा गोमककर-संसार—ओक-पिंड,  
मन्व, विद्य । मन्व—मन्विकर कोमलरूप अर्थात् अगत,  
संसार, विद्य-गोमक, संपूर्ण विद्य निसके मीतर अनंत लोक हैं ।  
बौद्ध-मुक्तोक्त समूह आदि-आदि ।

मनु भगवान् कहते हैं—सयंमू भगवान्ने प्रजा-सृष्टिकी  
इच्छासे पहिले अणकी सृष्टि की और उसमें बीज पेंकर । अस्तु, उस  
बीजके पड़ते ही अणसे सूर्यके समान प्रकाशवाम्म एक सर्जाम—  
अंड वा गोत्र उत्पन्न हुआ, जिससे पितामह मन्विकर अन्म हुआ ।  
उसमें जायने एक संस्काररत्न निरस करके उस अंड वा ज्योतिर्गोमकमें  
एक कर्ण रहकर उसके दो—आधे-आधे विभाग किये और फिर उस  
उर्ध्व-अंडमें सर्ग आदि ओकोंकी और अवोर्ध्वमें पृथ्वी-आदिकी  
रचना की । अत यह विद्य-गोमक इसीसे 'मन्व' कहा जाता  
है—आदि-आदि ।

लीला—क्रीडा, विहार, खेल, कौतुक आदि ।

उह के सरूप तुम्हें एगव दिखाइ रहें  
 सरूप' कासों हूँ ओग में कसैत हूँ ।  
 एगो के बसन तोप बिपा के प्रसैत बाहों—  
 ब्यासलें कसैत सोम सुपा के नरैत हूँ ॥  
 पम-नियम—

आरज्य कहींसा छिमा वृषा एति सन्वाचर  
 सौच, ब्रह्मचरज हार सज्जम के रखी हूँ ।  
 वृषा एव तोप अश्व-मति मुञ्ज-मत्त  
 पूज्य दौल जप हौम नैम-पम गच्छी हूँ ॥  
 'रमरूप' होऊ वस-वस-भौति भाव्यो काकीं  
 वरस तरस कौति विविन कछपछी हूँ ।  
 माधम सज्जम इगुँ साधि-साधि सिद्ध होत  
 इन-बिन ओग जैसे पंज बिना पच्छी हूँ ॥

प्राणायाम—

तसिद्ध की बारी तीन भरे रात्रे करे छीन—  
 बीज-मंत्र सीन विधि धेनु बजाए तें ।  
 म हूँ बितज्जम सों होत धाम धूमों-पौत्र  
 मोत-मुन पावै वस-मौति बुनि खाए तें ॥  
 ग्यारादि पट-बज्र भेद दिणें रोद करि—  
 नैचरी-सहित मुञ्जा इगुँ कति बाए तें ।  
 सरस्य बाही रीती ओगी हूँ अमर-कम्ह  
 भीक कहा प्रोक्कपौम धौगुती बजाए तें ॥

प्रत्याहार—

कप तें फलंग के परम तें मर्तंग के—  
 मुगंध हू तें अंग के दुर्जन में भरे रहें ।  
 मबद तें कुरंग एति रम तेज मरुत गति  
 मुधि के तेंकोच अंग कण्ठ के को रहें ॥

पूसरी न रहे कौम जागि-जागि आठौं-आठौं  
 'रसक्य' जामें छोपी बीज सीं बरे रहि ।  
 हारें द्विपी हृदि कें न इद्रिन कौं अहार वैह  
 हार कौं द्विप में 'प्रत्याहार' कौं बरे रहि ॥

धारणा—

अंमनि पुहुमि द्विपी मन्ह उं न चले चित्त—  
 त्राविधी उदक कंठ कैसी बिब मीनें हि ।  
 एहनी एहेन मोंक, कौम-रुज अहू हे खे—  
 आमिनी पचब मोंह मेव गति मानें हैं ॥  
 सेकिनी अकसत अन्ह-रंभ सरीं सिव पास  
 जामें महा-सुक्ति कौ उपाह उर बीनें हि ।  
 पौच-पौच धरी प्रौन बीज कौ पौची-सौर  
 पौची-तल धारणा कौ 'धारणा' कसौनें हि ॥

ध्यान—

'प्रथमी पदस्य ध्यानं अकस्य कौं अकस्य हे कें,  
 पूसरी तमस्य ध्याव गुण कौ गर्वत हि ।  
 त्रिकुटी में देखिये अर्च-अकस-कोक्ति-रूप  
 रूप में अखेद-अेद सीसरी मर्गत हैं ॥  
 'रसक्य' हसै-दिसि पूरेन-गरस पौंहि  
 बीपी रूपतीत रूप रहत भित्तत हि ।  
 नभ कैरी पंछी मव कैर में रहत जौं के—  
 भावत है कैर अत पावत न अंत है ॥

समाधि—

'हरज खेग मीतामौं निवृत्त प्रसस्य कौं  
 कच-बीज एवन प्रवंच कौ कहींकी में ।



देकरेव हुन्छ दर्प भूत प्रेत, सिब सर्प  
 कहु ते व मै को अनेक-दुख-दाता मै ॥  
 प्रह, लीब पाप धर्म बरनाकर छिप्य कर्म  
 सब छौं रहित हूँ सर्वोत्री वा अर्पत्री मै ।  
 ईमी आत्मा, ब्रह्मा सौं अण्ड समाधि मिछै—  
 पौन-पौन मिछै जैसे पौत्री मिछै पौनी मै ॥

पर-ब्रह्मपुर-धौम — परब्रह्मके पुर—नगरका धाम, अर्थात्  
 भुक्ति । धौम—आश्रय, अकलंज, वास आदि - ।

धाम रश्मो वृष्टे वृष्टे स्थाने शम्भुप्रभाययोः । —इन्द्र  
 अंड ब्रह्मंड, भीष्म, अक्षतार, तन, जोग, जुगति, परब्रह्म और  
 धौम-आदि शब्दोंके सरस प्रयोग—

बिज "अंड" मै रमि रही गई मद्य-परब्रह्म ।

—भीमिधि

"सम अण्ड" कन्धौ ता भीतर असुमति-वति धौरोत्री ।

—ब्रह्मब्रह्म

"निड-बई अक्षय" करत मयोद्दर स्वाम-सकल गुण-धौम ।"

—शुभ्रुवराज

"धमि गोदुख, धमि मंद अयोदा आर्षे हरि "अक्षतार" कबौ ।"

—मूरुष

आके किछे धुनी मेरी सत्रनी ! क्यब गई सब "अण्ड" की ।"

—कुम्भनाम

"जोग" कियो किहि करे हय ब्रमतत अनुगत ।"

—ब्रह्मब्रह्म

"जुगति" कहु जैसे व भीर अण्ड ।"

—इयमदाज

“व्यापी सोई महार-बर परब्रह्म बर बेह ।”

—मानस

“कौम धौम” सरसुती सङ्घि रही—  
वा बानिक बरबत नहिं खेड—कवि ।”

—दित हरिवंश

श्रीनन्ददासजीकी इस उक्ति—

“शशि कही तुम्ह कान्ह ताहि खेड विता न माता”

—पर श्रीमद्भागवतकी यह सूक्ति याद आ जाती है, यथा—

न माता न पिता तस्य न भ्राया न सुताद्यः ।  
नात्मीयो न परब्रापि न वेदो जन्म पय च ॥  
न चास्य कर्म वा खेके सवसम्मिभयोनिषु ।  
श्रीद्वार्यः सोऽपि साधूनां परिब्रानाय कल्पते ॥

श्रीमद्भागवत १ । ४६ । ३८ ३९

कथना—

युवयोरेव नैवायमारमजो भगवान्हरिः ।

सर्वेषामारमजो ह्यारमा पिता माता स ईश्वरः ॥

इष्ट भुत भूतभवद्भविष्यत्स्थास्तुभ्यारिष्णुर्महदस्पर्कं च ।

विनाष्पुताद्भस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वे परमार्थभूतः ॥

—श्रीमद्भागवत १ । ४६ । ४९ ४३

धुनियों भी यही कहती हैं—

दिव्यो ह्यमूर्तां पुरया स बाह्याम्यन्तरो ह्यजः

अप्राणो ह्यममा शुभो ह्यक्षयत्परता परः ।”

—मुण्डकोपनिषद् २ । १ । २

## गापी-सूचन

( १२ )

जोग—श्लेष्म, सपयुक्त, उक्षित, पात्र, अत्रिकारी, व्यक्त, कृत्विष्ठ । प्राण—सुद प्राण, अर्थात् शरीरकी वह वायु,—हवा कि जिससे मनुष्य जीवित रहता है । हृदयस्थ वायु, जीव, अनिष्ठ, वायु, निश्चयस ।

“समीरमाकृतमरुज्जगत्प्राणं समीरयाः ।”

—अमरकोश १।१।५८

सबप्रकारके रोगों के कारणों से प्राणके दस भेद माने हैं, जैसे—  
 ‘प्राण, अपान, व्यान, उदान समान, नाग, कूर्म, कुक्किष्ठ, देवदत्त और धर्मजया’, पर इनमें मुख्य पूर्व-कृत्विष्ठ पौष ही माने जाते हैं और ये ही पञ्च-प्राण नाम प्रसिद्ध हैं । ये सब मनुष्य शरीरके भिन्न-भिन्न विभागोंमें कार्य किया करते हैं और इनके प्रवृत्त होनेसे ही शरीरमें अनेकानेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इन सबमें उक्त—‘प्राण’ ही सर्वोपर माना जाता है । जिस वायुको हम अपने मधुने-शय—नाकके छिद्र-द्वारा सँस—रूप भीतर ले जाते हैं वही ‘प्राण’ कहा जाता है । इसीपर मनुष्य और पशु-आदिको जीवत है । इस वायुका मुख्य-स्थान हृदय माना जाता है और प्राण धारण करनेके कारण ही सँस लेते मनुष्य और जन्तुओंको प्राणी कहा जाता है । क्योंकि मरनेपर आस-प्रद्वारसकल—अर्थात् इस वायुका गमनागमन बंद हो जाता है और जोग करने लगते हैं कि इसके प्राण निकल गये । आसमें प्राण निकलनेके मार्ग—जोख, कर्म, नाक, भेद, नाभी,

गुदा, मूर्धेन्द्रिय और ब्रह्म-रघ—आदि माने गये हैं । अगोष्ठा कम्पन है कि मरनेके समय मनुष्य-शरीरसे जिस इन्द्रिय-शारा प्राण निकलते हैं, वह कुछ अधिक पैठ जाती है और ब्रह्म-रघ-शारा निकलनेपर खोपड़ी चटख जाती है । नैन-शरणानुसार प्राण—मनोबल, वाक्बल और कल्पबलनामक त्रिविध बलके साथ ठण्डास, निश्वास और वायुके सम्मिश्रण कहते हैं । छान्देय ब्राह्मणके अनुसार प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र और मनको कहते हैं । बाराहमिहिर और आर्यभट्ट-आदिके मतानुसार प्राण, कण्ठका वह विभाग जिसमें दस दीर्घ-मात्राओं-का उच्चारण हो सके । यह किनाडिकाका छठा भाग है—आदि-आदि— ।

पियूष—शुद्ध पीयूष, अर्थात् अमृत, सुधा, बामी आदि । वह तरल पदार्थ जिसके किञ्चिन्मात्र पकनेसे मृतक जीव जी उठता है ।

“पीयूषममृतं सुधा ।”—श्लोच

धूरि—शुद्ध घृति, अर्थात् रज, रेत, स्याक, गर्द, मिट्टी, रेणु—आदि ।

रेणुर्वयो स्त्रियां “घृतिः पांशुर्ना न द्वयो रजः ।

—अमरकोश २ । ८ । ६३

धूरि पर “अद्भुत-रहीम खानखाना”की सरस-सृक्ति याद ला गयी है, जैसे—

“धूरि” उदाहृत सीस पै कहु ‘रहीम’ बिहिं अरज ।

बिहिं रज सुकि-पतनी ली सी ईइत गबराज ॥

—रहीमखानाकी

अंग, प्रॉन, पियूष और धूरिके सरस प्रयोग—

‘तुम इच्छे इम ई इच्छ हो बात नहीं कसु “अंग” ।

तुम ली चतुर प्रवीण ही काव्य ! कहा करिगे अंग ॥”

—सुरदास

“शेखरबन्धन-काम-सिन्धु में परवीं ‘प्रौढ’ की बेटी ।

—चतुर्गुणदास

“अति-गंभीर बुद्धि की आकृष्ट प्रेम—“पिप्लुत भारवी ॥”

—परममन्दरास

“हुरि” यरे ब्रह्म लेखक मीहल आप्नी बनी तिर सुंदर बोटी ।”

—सूरदास

जोग—उपदेशके अनन्तर श्रीसूरन भी प्रेमकी महत्ता दिखाने

के लिए कुछ ऐसा ही कहा है, यथा—

ऊषी हमहि न जोग सिखैये ।

किहि उपदेश सिद्धै हरि हमको सो ब्रत-ब्रह्म बढैये ॥

मुक्ति रही बर-बैठि कपुने विराजुन मुनि बुद्ध वैये ।

किहि तिर-केस कुसुम-भरि गूँजे किहि कैसँ भसम चरैये ॥

जौंनि-जौंनि सय गगन भर ईं आपुन-आपु कनैये ।

‘सूरदास’ प्रभु सुबो बबो-निधि बहुरि कबो मज वैये ॥

सूरके इस कम्पनीय छप्पर पर किन्ती ठरूँ कविकी यह ठक भी

सुन्दर है, जैसे—

“बोलें नहीं हैं चदरे पर तरे कछिर के ।

दो डोके हैं मील के, दोदर के किये ॥

कपदा—

ऊषी करि रही हम जोग ।

कहा पेटी बाद धौंनै इलि गोपी-भोग ॥

नीस लेखी केम मुद्रा कमक-बीठी बीर ।

विरह-भसम जगह बैठी मद्रक कंयाधीर ॥

हरे मिगी देर-सुरधी ब्रह्म लप्यर हाव ।

ब्रह्म ईम हरि-नरस-निष्पन्न ब्रह्म हीमाग्य ॥

जोग की गति लुकि हम वै सुर' देखी जोइ ।  
 कइत हम की करन जोग सँजोग कैसो होइ ॥

वपन—

हमारें, कौन बेद-बिधि साधै ।  
 बनुवा, होरी बंड बनारा इतनेन को ब्यराधै ॥  
 काकी कहुँ बाह नहि पैबनु, भगम बनार भगप्रधै ।  
 गिरिधरकाक छबीके की इहि कहा पछायो पाधै ॥  
 मुनि मनुकर बिन सरबसु चाक्यो सो सजुपावत ब्यधै ।  
 "सुरदास" मनि-सौम कौबिकें, सुँबुधि-गौठिको बौधै ॥"

कृष्णगढ़के मझराज "नागरीदासजी" कहते हैं—

ऊचो सुबहि धावति गरि ।  
 कहा करी नैद-मंद की करि कौनि बेति हों गरि ॥  
 यह मनोहर-माधुरी कबि भेद-भूद-सुसिधाय ।  
 तुम्हें फिर सुधि रही कौसैं निपट निरगुन कत ॥  
 जगनिपनु हैं यह तिहारे कवन ही के जेन ।  
 कल्प कीतें पक-परन में होत छई क्यो जेन ॥  
 नक-नापर क्य-बिधि में छै रछो जो कौन ।  
 भदक में डारिये क्यो कहे छैं मन-जीन ॥

पुन —

ऊचो पुन व जोगत प्रेम ।  
 कसो मधुरा-राजधौनी तहाँ ब्यापक प्रेम ॥  
 कल्प-निरगुन-नयोन-सूचो राज-नीति प्रबंध ।  
 प्रीति-जैननि रूप-रीतिनि कहा कौनैं जेन ॥  
 इहाँ नर में क्यो कीजे जोग-निरस-वाठ ।  
 कौंकि "बदनागर"-मधुर-कक कौन चाधै कय ॥

गोस्वामी श्रीगुरुजीदासजी कहते हैं—

‘ऊची कपड़ी तिहारौई कीची ।  
 नीकें जिय की अथि अपनपी समुक्ति सिखावन कीची ॥  
 कौम-विपोगी प्रज के खोगतु भोग-भोग जो आवी ।  
 तौ संशोध परिहरि पौ-रुगौ परमारण हि बरुगौ ॥  
 गोपी म्वाळ गण गो-मुत सब रहत रूप अतुरती ।  
 रीम-मकीम-प्रीम-तव डोकतु मीम-मत्रा सीं कपो प्र  
 ‘गुरुसी’ ई सबैह गुरुदासक, जानति बहि देसी कोई ।  
 तक न होत कौनू कं सी मन सबै साधिबहि सोई ॥  
 वासम कति कहते हैं—

बुझि के अरुस होत ऊची देसी बुझिये रे  
 जो वे देसी बूझ तौ अरुस किन बूझै बू ।

प्रकृत धुरत सककैतुक विद्याई सुधि—  
 तुम सुकृत सँखे बूझ कौन बूझी बू ॥

राजिब-अपन मेरे ‘आधम’ रहे की प्यौन  
 रीझि की रहति में अरुस कहा सुझै बू ।

प्रकृत हगति जाहि श्रीजिबनु देसी सुनि—  
 भोगकी मुगत पापें भोग क्यदि सुझै बू ॥”

बोख कहती हैं—

‘अब सुधि जानै तब तब विनु-सुधि होत  
 कम-सुधि कौपें मन होत पात-पत है ।

सैख” कई सरद-सदेर के के गीत गुनि  
 बौसुरी की बुनि दसाळ गात-गात है ॥

तुम क्यो मानीं कपदेस हम जाही क्यो—  
 जैसी पूङ्ग नौही तेनी नौही सीङ्ग-सण है ।

मम सौं बिरुबो जिबि हन-हा दिबी कंवी जिबि  
 ऊपी कान-बातनि की सुधी बूक-बात है ॥

क्योंकि—

बिना धीन जो दूसरी बात मुझे पहाँ पड़ ही रंग रहनी सिद्धि होती ।  
 दूसरी-गम कुबल नदें स्तना को करे तो हवाएक-बोरी ॥  
 "अजुन" ही कहती बर-बाल, तु जहाँ बगिछाँन को सुमाव है भीरी ।  
 कबो न, वे नैकिर्पो करि बन्ध को सर्वतो छौंकि बिहारती गोरी ॥

—उत्तर-सत्य

कथना—

प्यस्तै-परसि कोह सोइति है हँम होइ  
 ते न फिरि बुंनक सों काह क्यदापही ।  
 कबो मम भीन सुस्-कीन है प्रवीन मयै  
 सो न सुनि कीगरी की बुनि हरबापही ॥  
 सुधा-सिद्धि-राधि बानु, सुधा-सुधा भागि गई  
 कीती मृग-बारि ध्वनि बही सुधा बाबही ।  
 कर्मन्दी संयोगी हम गौस्त की मोगी कथो  
 किंसे बनें योगी योग-नीहि मन काबही ॥  
 कर्म के फलप काप सख है सुहाप कबो  
 कबो मम लोकन ती भ्रष्टी बिधि लोकिये ।  
 प्रेम-धारसें शिवाय ध्यान की न हैं सुबान  
 केहे कोक अती बरावसी बीच लोकिये ॥  
 कबे हम कदा मोरी बसी है बिद्योग-रोधी  
 सीखी तुम योग ऐसी बोकीसति लोकिये ।  
 होइ कवि दाहक सिखावो योग बौहक को  
 गहक के बिबो मग नौहक न लोकिये ॥

मारतेनु बाबू हरिश्चन्द्रनी फइते हैं—

ऐहि बर हरि-रस पूरि गयी ।

तब मैं मम मैं किन मैं सब हों कृप्य-हि-कृप्य मयो ॥



क्योंकि—

बाही मुञ्ज-मंठक की चँहति मरीचें सर्वो  
 हम की विहारी मङ्ग-ओति करिबो कहा ।  
 कबै “रतनाकर” सुधाकर-उपासिनि की  
 मौजू की प्रमर्गिनी लुहारिण्णरिबो कहा ॥  
 भोगि रहौ बिरचे बिरच के सँजोग सबै  
 ताके सोग सारब की ओग चरिबो कहा ।  
 जब ब्रह्म-संद् की बकोर-चित्त चाब मपी  
 बिरह-बिग्नरिनि सौं केरि बरिबो कहा ॥”

उद्धव-वचन

( १३ )

ईस—शुद्धईश, अर्थात् प्रभु स्वामी, महादेव, ऐश्वर्यशाही—

वाग्नि-वादि ।

शम्भु ‘रीशः’ पशुपतिः शिव शूली महेश्वरः ।”

ईश—शम्भुके और भी अर्थ होसे हैं जैसे—“भ्यारहकी संख्या,  
 जार्द्धा-मक्षत्र, रत्ना, एक उपनिषद्, ईशाम-कोण” पर यहाँ उक्त-शब्द  
 “शिव”के अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि इसका सम्बन्ध “शूली”  
 शब्दसे जुड़ा हुआ है ।

धूरि-छेत्र—शुद्ध धूमि-क्षेत्र, अर्थात् पृष्ठी, जमीन भरती ।—

अपना धूरि-छेत्र “मयुषा” का भी नाम है यथा—

“धूरि-छेत्र” मयुरा-धुरी बसैं जहाँ भगवान् ।” —हरद्वय

कर्म—शुद्ध कर्म, अर्थात् जो किया जाय, अथवा जो करना हो ।

‘कर्म’ क्रिया—तस्मात्तस्ये “ ” ।

अमरकोश १ । १ । १

वैशेषिकके अनुसार "कर्म" उन छै—पदार्थोंमेंसे एक है जो कि एक-द्रव्यमें हो, गुण न हो और सयोग तथा विमलगने अनपेक्षता का कारण हो। कर्म पाँच-प्रकारके माने जाते हैं जैसे—“उच्छ्लेषण अर्थात् ऊपर फेंकना, अक्षोपण—भीखे फेंकना, वाकुञ्चन—सिकोड़ना, प्रसारण— फैलाना और गमन, अर्थात् चलाना। मीमांसक कर्मको दो प्रकारका मानते हैं जैसे—“धुण वा गौड—कर्म और प्रधान का अर्थ कर्म। गुण-कर्म वह है जिससे द्रव्यादिकी प्राप्ति हो—संस्कार हो और प्रधान वा लक्ष-कर्म वह कहलाता है जिससे द्रव्यकी उत्पत्ति वा पुष्टि न हो बल्कि उसका उपयोग हो। उक्त प्रधान वा कर्म-कर्मके मीमांसक इसे ही प्रधान, अर्थात् “प्रधान”को ही प्रधान मानकर “नित्य, नैमित्तिक और काव्य” रूपसे तीन भेद मानते हैं। नित्य कर्म वह जिसके न करनेसे पाप हो, अर्थात् जिसका करना परम कर्तव्य हो और नैमित्तिक कर्म उसे कहते हैं जो कि किसी विशेष अवसरपर किये जाय। इसी प्रकार जो कर्म किसी फल-विशेषकी कामनासे किये जाय वह “काव्य”—कर्म कहलाता है। योग-सूत्रकी दृष्टिमें भी मांभन कर्मके—“विहित, निरिद और मिश्रा” नामसे तीन ही भेद मानते हुए जाति, जायु और भोगको कर्मके त्रयाक-फल कहा है। जन्मके भेदसे भी कर्मके “संचित, प्रारब्ध, क्लियमाण और “भ्रवी” चार-भेद कहे हैं। जैन-दर्शनके अनुसार कर्म—पुद्गल और बीजके जनादि सम्बन्धसे उत्पन्न माना जाता है, वह इसीसे जैन इसे, अर्थात् कर्मको “पौद्गलिक” कहते हैं। कर्मके—घानि और अघानि दो भेद और भी कहे जाते हैं। घानि, अर्थात् मुक्तिकर बाधक और “अघानि” मुक्तिकर अबाधक माना जाता है। आदि-आदि “ ।

हरि-पद—हरिकण्ठ पद, अर्थात् मुक्ति । लोक-चतुरदस—छत्र  
चतुर्दश-श्लोक, अर्थात् चौदह-श्लोक । चौदह-मुक्ता, विष्णु-विभाग ।

“ ‘लोक’-स्तु मुचने अमे । —अमरकोश १ । ४ । २

अपवा—

“ ‘लोको’, विषय मुचमं अगत ।”

—अमरकोश २ । १ । ९

यों तो उपनिषदोंमें—“इह-श्लोक और पर-श्लोकरूप दो ही  
श्लोक माने हैं, पर निरुक्ति-शास्त्रमें पृथ्वी, अक्षरिण और पुत्रोक नामसे  
तीन-श्लोकोंका उल्लेख किया गया है । जिनका दूसरा नाम भू,  
भुव और स्व है और ये ही महात्म्याहृति कहलाते हैं । इन तीनों,  
अर्थात् भूः भुव और स्व स्वरूप महात्म्याहृतियोंकी मूर्ति और मी  
चार-महात्म्याहृतियों कहलती हैं जैसे—“मह, मन, सप और  
सर्व—आदि । अस्तु, इन सप्त-म्याहृतियोंके नामसे ही सप्त-श्लोकोंकी  
व्यवस्था पुराण-कालमें की गयी है, यथा—मूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक,  
महालोक, जनलोक, तप लोक और सप्त-श्लोक आदि—। इनके बाद  
किर पातालके अर्थात् मात लोकोकी और मी सृष्टि हुई, जैसे—  
अतल, नितल, वितल, गर्भस्तिमान, तल, सुतल और पताल आदि ।  
परंतु पुराणोंमें इन नामोंके प्रति विभे भी मिश्रण है, जैसे—पद्म-  
पुराणानुसार—अतल, वितल, सुतल, तत्रातल, महातल, रसातल और  
पाताल । अग्नि-पुराणके अनुसार—अतल, वितल, सुतल,  
गमस्तिमान, महातल, रसातल और पाताल । विष्णु-पुराणानुसार—  
अतल, वितल, नितल, गमस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल ।

मत्तस्य वित्तस्य चैवं तित्तसं च गमस्तिमात् ।

महाव्यं सुतसं चाव्यं पाताल चापि मसमम् ॥”

(विष्णुपुराण २।५।२)

सात-दीप—बृहत् सप्त-दीप, अर्थात् स्वर्गके यह सात-विभाग जो

पारो और अण्डसे घिरे हों, बल मध्यम्य पृथ्वीके—अग्नीमके सात  
अण्ड—विभाग ।

द्वीपो”ऽस्त्रियामन्तरीयं पद्मन्तर्वारिणस्तटम् ।”

—अमरकोश १।१।८

पुराणानुसार सात द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं यथा—अम्बुद्वीप,

पुनर्वीप, प्रथुद्वीप, शाल्मलीद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप ।

‘अम्बुद्वीपसशास्मसिङ्गुशब्दौ शशाकमुष्करसशास्तेषां ॥”

—श्रीमद्भागवत ५।२।१२

और इनकी कथा पुराणोंमें इस प्रकार कही जाती है कि

एक बार महाराज द्वियज्जने यह सोचा तब पृथ्वीके एक ओर ही

उत्थेन करता है अत आपने एक धमधमाती हुई गाड़ीपर बैठकर

सात ओर पृथ्वी-मदक्षिणा की । गाड़ीके पहियोंके घिसनेके कारण

पृथ्वीपर सात बलुआकार गड्ढे पड़ गये जो कि समुद्र बन गये ।

इन्हीं सातों समुद्रोंसे परिवेष्टित होनेके कारण इन सात द्वीपोंकी सृष्टि

हुई—आदि-आदि ... .. ।

यावद्यथासयति सुपगिरिमुपविष्टमभ्यगवान्नादित्यो यस्तु

यातल्लमर्चनैश्च मत्तपस्यर्चनैश्च अद्वयति तदा हि भगवदुपासनो-

पचितासिपुदप्यमावसन्नभितम्बमसमज्जवेन रथेन स्योस्तिर्मयेत

रज्जनीमपि दिन करिष्यामीति समहृत्यस्तर्जनिमुपर्यग्रयवत् द्वितीय

इय पतङ्गः । ये वा उ ह तद्रथचरणमेमिफुलपरिकातास्ते सप्त-  
सिन्धुष्य आसन् पत एव कृताः सप्त भुवा ग्रीपाः ।

श्रीमन्नारायण ५ । २ । ३ । ३१

नौ-खंड—शुद्ध नव-खंड, अर्थात् पृथ्वी नौ भाग, खंड, टुकड़े ।

भिर्षं शक्यं—'कण्ठे वा - ।

अमरकोश १ । ३ । १०

उक्त नौ खंडोंके नाम इस प्रकार हैं—'भरत, इलावर्त,  
किपुङ्गव, म्त्र केतुमात, हिरण्य, हरि, रम्य और केतुमात ।

इस, धूरि-छेत्र, करम, हरि-पद, लोक-चतुरदस, सात दीप  
और नौ-खंड—आदि शब्दोंके सरस प्रयोग, यथा—

'शुग-शुग विभी 'गोपुङ्ग के 'हंस' ।—'गन्धि स्वामी  
प्रथम भए 'धूरि-छेत्र में आई ।—'मन्मथनक्षि  
'करम' गति रही नाहि है ।—'चतुरदस  
'हरि-पद' अतन किये ही पावा ।—'मूलकरन  
लोक—'चतुरदस' नाहि हें वे छत्र केसबदेव हमारे ।

—इत्-इति

'सबे हमारा राज है हो सात-दीप' नौ खंड ।"

—कुम्भराज

नन्ददासजोशी इस ठकियर बुद्धा-शाहकी एक बानी पाद का  
गयी है, जैसे—

'मौटी लुरी करे ही बार ।

मौटी बोड़ा मौटी बोड़ा मौटी हा असवार ॥

मौटी मौटी-मारन छाग्री मौटी है इयिबार ।

जिस मौटी पर बहुका मौटी तिस मौटी इंधार ॥

मौंटी बग बगीच मौंटी मौंटी वी गुम्बहार ।  
 मौंटी, मौंटी-देखन जाई मौंटी वी बहार ॥  
 हंस-बेके फिर मौंटी हों वी पीड़ी पौब-पसार ।  
 हुस्बसबह' हुसावे हुम्शी काह सिरों भी-भार ॥

अपरा—

'इक-दिन माफता बे राजा एक-दिन मौंटी में मिक जाना ।  
 मौंटी उड़ैना मौंटी-बिछीना मौंटी ही कफन बनाना ॥  
 मौंटी भाई मौंटी भाई, मौंटी जगत-सुमाया ।  
 इक दिव सुनरता सग मौंटी मौंटी पै बौराना ॥

—कोरं कवि

### गोपी-वचन

( १४ )

कर्म-धूरि—सुद कर्म-धूळि, अर्थात् कर्म-कांड, यज्ञादि कौर।  
 भौनि—लेकर । प्रम-जमृत—मेमरूपी अमृत । ठर—हृदय,  
 छाती हिय, वक्ष स्पृश-आदि ।

उपे—यस्तस्य यस्तस्य

।'

—अमरकोश २।६।२९

जीव—सुद जीव, अर्थात् प्राणी, प्राणवारी, चेतन, ज्ञानदार ।

“ “ “ ‘जीयो’ऽसुधारणम् ।”

—अमरकोश २।८।८८

बिमुक्त—विमुक्त, अर्थात् पराङ्मुक्त, मुक्त फेर सेना, कियोवी हो  
 जाना । उदासीन, विरक्त, किरत, वतपर आदि ।

करम-धूरि, भौंनि, \* प्रेम-अपुत, तर, जीव बीर त्रिमुक्त शब्दोंके सुन्दर प्रयोग ।

‘करम धूरि’ भिक्ति को मुक्त पावो ।”

—धनदास

विषकीं “भौंनि” कहा सब मेकति ।

—कविता मालिनी प्रा

बीर, मुक्त “प्रेम-अपुत” सौ ब्रह्म ।”

—रामदास

किमि सुपाक किपु कल जपने “तर” करि काम-मुक्त ।”

—परमानन्ददास

“जीव” सुयो कत भटकत होके ।”

—रामदास

ए कत “त्रिमुक्त” होति प्यारे सौ - - ।”

—गुणदास

### उद्धृष्ट-वचन

१५

निदी—पुरा, दूषित, अपरा, कुस्त्र गर्हा, अपवाद, दुर्नाम, दहसे बना है—निदी ।

“ - - कुम्मा निदा’ ख गहणे ।”

सदागति—अच्छी, सुन्दर गति, उत्तम गति, मरण-उपराप्त  
मम त्येकसी प्राप्ति । बली—बलवान्, समर्थ, पराक्रमी । त्रिमुक्त—

\* भौंनि शब्द का अर्थ और हल है—और तथा अन्ता । जैसे—

कहति “भौंनि-श्री-भौंनि ।” —हरिदास

“भौंनि” है कति, बहुत विष-प्यारी ।”

—दूषदास

हीन-मुक्ता, व्यर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल । उतपत्ति—दुःख उत्पत्ति, व्यर्थात् पैदा होना, जन्म लेना । नाश—दुःख, माश व्यर्थात् क्षय, खस, छय, अदर्शन, फल्लयमान, गायब होना आदि ।

अस्तौ 'माशो' द्वयोर्भृत्युर्मरणं निधनौ शिष्याम् ।”

—अमरकोश २।८।८५

सांख्यशास्त्रे कहते हैं कि कारणमें व्यय होना ही नाश है, क्योंकि जो वस्तु है उसका अभाव नहीं हो सकता । कारणमें लय हो जानेसे सूक्ष्माके कारण वस्तुका बोध नहीं होता, अस्तु जब कोई कार्य कारणमें इस प्रकार लीन हो जाता है कि वह फिर कार्यरूपमें न व्यय सके तब माश वा आत्यन्तिक नाश कहल्यता है । नैयायिक नाशको अभाव मानते हैं ।

मुक्ति—आवागमनसे पुषक् पुन जन्म न लेना, अपना दुःख छुट्टी व्यस्त निवृत्ति और परम-नित्य सुखकी प्राप्ति । कैवल्य, निर्वाण, श्रेय, मोक्ष, अकर्मा और परिप्राण आदि ।

‘मुक्तिः’ कैवल्यनियान्नश्रेयो निन्श्रेयनाऽमृतम् ।”

—अमरकोश १।५।१५

मुक्ति, “सालोक्यादिचतुष्टयम्” के अनुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य” चार प्रकारकी कही जाती है, पर श्रीमद्भागवत पौष प्रकारकी “मुक्ति” का भी उल्लेख करता है । जैसे—

‘सालोक्यसार्थिसामीप्यसारूप्यैश्चतुष्टयम्’ ।

दीपमानं न गृह्णन्ति विन्द्य मत्सेधनं जनाः ।

—श्रीमद्भागवत १।२।१३



अर्थात् सात्त्विक्य, सार्थि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व यानी सायुज्य), जेकिन मुख्य दार ही हैं। सात्त्विक्य-मुक्ति उसे कहते हैं—अब जीव अपने आराध्यदेवके साथ एक-सोकमें—एक जगह बास करे। सामीप्य-मुक्ति, जीवकर मगवान्के समीप—पास पहुँचनेको कहते हैं और सारूप्य—मुक्ति उसे कहते हैं अब कि उपासक अपने उपास्यके रूप-जैसा हो जाय, अर्थात् सम्पन्न रूप हो जाय—एकरूपता प्राण कर के तथा सायुज्य-मुक्ति वह कि उपासक उपास्यमें मिल जाय, एकरूप हो जाय, अर्थात् वह वही हो जाय।

मुक्तिके विषयमें पुराण और साम्प्रदायिक—आचार्योंमें बड़ा विमेल है, कोई चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं तो कोई पाँच प्रकारकी। श्रीमद्भागवतमें भी चार प्रकारकी और पाँच प्रकारकी मुक्तिकर उल्लेख मिश्रता है, जैसा उद्धृत किया जा चुका है। “ब्रह्मवैवर्त” दो प्रकारकी ही मुक्तिकर उल्लेख करता है। यथा—

‘मुक्तिस्तु’ द्विविधा’ साध्य ! भ्रुस्युता सर्वसम्पत्ता ।

नियामपददात्री च हर्षिभक्तिपदानुणाम् ॥”

—प्रह्लाद-सूत्रे

नामोऽस्तेष्वामे भी मतमें है। कोई तो सात्त्विक्य, सार्थि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व, अर्थात् सायुज्यको पाँच प्रकारकी मुक्ति मानते हैं और कोई “सात्त्विक्य, सार्थि, सामीप्य, सायुज्य ( एकत्व ) और निर्वाण”—आदि पाँच प्रकारकी मुक्ति मानकर श्रीमद्भागवतके उक्त श्लोकको ही पाठ बरत देते हैं। जैसे—

साख्येक्यसार्धिसामीप्यसाख्यैक्यमप्युत ।”

पाठान्तर—

सार्धिसाख्यसाख्यनियानैकत्वमप्युत ।

घर प्रकारकी मुक्ति माननवालोंमें भी मतभेद है। कोई “साख्येक्य, सामीप्य साख्य और ससुख्य आदिको—

“ साख्यैक्यादिकतुष्टयम् ।”

—श्रीमद्भागवत ९।४।१७

मुक्ति-चतुष्टय मानता है, तो कई साख्येक्य, सार्धिस, सामीप्य और ससुख्यरूप मुक्ति चतुष्टयको मानता है। इसी प्रकार मुक्तिकी व्युत्पत्तिमें भी मतभेद देखनेको मिलता है। वेदास्तिक कहते हैं—

नित्यमुक्तावाप्ति मुक्तिः ।

अर्थात् नित्य-मुक्तकी प्राप्ति ही मुक्ति है। नैयायिक कहते हैं—

आत्यन्तिकतुष्टयमिष्टिः मुक्तिः ।

अर्थात्—व्यक्त दुःख-निवृत्ति ही मुक्ति है। मत-मुक्ति कहते हैं—

शरीरेन्द्रियाभ्यान्ध्यात्मतो मुक्तत्वं मुक्तिः ।”

परब्रह्म-पुर-वास—परब्रह्मके पुर—मग्न, गौतम काष्ठ, अर्थात् रहना। स्थान, धाम-स्थान—रहनेका स्थान ।

परब्रह्म—मगदसे परे, अर्थात् निर्गुण निरुपाधि ब्रह्म ।

पुर—

पुरोधिकमुपव्यङ्गप्रोष्य भगवत् भगवते “पुरम्” ।”

—अमरकोश १।४।१८५

निंदी, सरगति, बली, त्रिमुबन, उठपति, नास, मुक्ति, परब्रह्म,  
और वासुके सरस प्रयोग ।

‘निंदी’ का सुरपति की पूजा ।

—परमानन्दराम

‘सरगति’ होति चरन-चित्त कर्पे ।

—गुणकवच

‘बली’ छू देमे होहु जाइ मारी विधि बसई ।

—कुम्भराम

‘त्रिमुबन’—सोभा छदि मनो राधिष्य बजाई ।

—वासुदेव

हे ‘उठपति’ कीं करन बही ।”

—सूरदास

‘भक्ति-विपति’ कीं ‘नास’ करन में लबक बार नहिं लखत ।

—शुनरीराम

“सबे बैकुंठ ‘मुक्ति’ मोच्छ पाण ।

—नानक

“सो ‘परब्रह्म’ प्रबट छे ब्रह्म में छदि-नृदि बधि लखा है ।

—परमानन्दराम

बच कही कैमें बा पुर” बसिठे ।”

—श्यामदास

महति, हम जेन्वौ हो यह “वास” ।

—मगरीदास प्राचीन

कुछ ऐसी ही कमकी महता, भुक्तिवा भी प्रतिपादित करती

हैं, यथा—

‘कुर्वन्नेयेह क्मापि जिजीविषेच्छतसमाः ।”

—ईशोपनिषद् २

‘तौ ह यदृषत्तुः कर्म द्वैव तदृषत्तुरद्य—

यत्प्रशशांसत्तुः कर्म द्वैव तत्प्रशशांसत्तु ।’

—बृहदारण्यकोपनिषद् १।२।१३

योनिमम्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय वह्निना ।

स्याणुमम्येऽनुसयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥’

—कठोपनिषद् ५।७

भीमद्भगवद्गीता भी यही कइती है—

‘नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कल्पते ह्यवशाः कर्म सार्यः प्रकृतिर्बैर्गुणैः ॥ ५ ॥’

‘कर्मन्ध्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।

ध्मिन्द्रियार्थान्धिमूढारमा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥’

कथना—

निपत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकमणः ॥ ८ ॥’

‘पञ्चार्थात्कर्मण्योऽभ्यव लोकोऽय कर्मबन्धनः ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगाः समाचर ॥ ९ ॥

—भीमद्भगवद्गीता १।५ से ९

और भी—

‘स्वे स्वे कर्मण्यभिरता संसिद्धिं समते परा ।

स्यकमनिरताः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥’

‘यतः प्रपृच्छिर्भूताना येन सर्वमिदं ततम् ।

सकर्मणा तमभ्यष्य सिद्धिं विन्दति मानवाः ॥

—भीमद्भगवद्गीता १८।४५-४६

श्रीमद्भागवत कहती है—

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वातवर्षणम् ।”

—भष्पाव १ । १

श्रीविष्णुपुराणमें कहते हैं—

“धर्मणा ज्ञायते सर्वे धर्मेषु गतिस्तापमम् ।”

—प्रथम अंश ३२

श्रीगोसाामी तुलसीदासजी कहते हैं—

“कर्म प्रदान बिख रचि राजा । को करि लख बड़ाबहिं साखा ॥”

—रामचरितमानस

गापी-वचन

( १६ )

पाप—बड़ा कर्म, जिसका लोक-परलोचनमें अशुभ फल हो । बड़ आचरण, जिसके करनेसे अशुभमें अशुभता उत्पन्न करे । बड़ कर्म, जो कर्षका अन्ध-पात करे अथवा ऐसा कार्य जिसका परिणाम कर्ताको दुःखद हो । व्यक्ति और समाजके लिये अहितकर आचरण । धर्म और नीति-शास्त्रोंसे निर्दिष्ट आचरण । अनाचार, गुमाह, निर्दिष्ट काम, अकल्याणकर कर्म अर्थात्, कष्टकर, कत्नाय, अन्ध—आदि ।

“अस्त्रीपत्रं पुमान्पाप्मा पाप” चिद्विषयकस्त्वयम् ।”

—अमरकोश १ । ५ । ६

श्रीम्यास-वचनानुसार ‘‘पाप’’ और ‘‘पुण्य’’ की एकव्ययता और भी है । जैसे—

‘‘परोपचाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ।’’

श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

“काम एव क्रोध एव रजोगुणसमुद्भवाः ।

महाशक्तो महापाप्मा विन्दत्येवमिदं वैरिण्यम् ॥”

पुन—शुद्ध पुण्य, अर्थात् वह कर्म जिसका फल शुभ हो ।

पत्रिण्य कार्य, शुभ-कार्य, कर्म और नीतिबिहित काम—काम । मत्से  
काम, शुभ-अच्छ, सुदृढ-आदि ।

“व्याधममभिरया” पुण्य धेयसी सुदृढ वृषाः ।”

—भ्रमरश्लेष १ । ५ । २

सर्ग—शुद्ध स्वर्ग, अर्थात् देवताओंका लोक-निवासस्थान ।

वृत्तरिक्त ।

स्वरम्ययं स्वर्गं नाकभिरियत्रिवशास्रया ।’

माग—सुख और दुःखोंका अनुभव । इन्द्रियजन्य विषयोंको  
मोहना । कर्मनुसार फलोंको पाना । दुःख-सुख सहना आदि ।

‘भोगाः’ सुखे रम्यात्रिभृताबद्धेभ्य फलकामयोः ।

—भ्रमरश्लेष १ । ४ । २४

अथवा—

‘पाल्मेऽभ्यधहारे च निर्वेशे पण्ययोपिताम् ॥

—विष-श्लेष

विषे-वासना—शुद्ध विषय-वासना, अर्थात् विषयोंकी वासना ।

क्रिय—इन्द्रियध वस्तु, पदार्थ, भोग-विद्याआदिक ।

“रूप शब्दो गन्धरसस्पर्शाश्च “विषया” \*—अमी ।’

—भ्रमरश्लेष १ । ५ । १६

\* यहाँ “विषया” बहुवचननामक है । एक वचन “विषय” ही  
होगा ।

वासना—इच्छा, कामना, वाञ्छा, चाह, प्रयास । अर्थात् किसी पूर्ण स्थितिके अन्तर्गत प्रमाणसे उत्पन्न मानसिक दशाविशेष । भ्रमना, संस्कार, स्मृत हेतु । न्यायानुसार वेदात्मयुक्तिन्य मिथ्या संस्कार ।

राग—त्रासि, पीडा, दुःख, शारीरिक अस्वस्वता । अर्थात् वह अस्वस्था जिससे शरीर भले प्रकार न चल सके और बढ़नेसे जीनेमें संदेह हो । बीमारी, मर्त्य आदि ।

\*\*\*“रोग”—व्याधिगहामयाः

पाप, पुन, सरग, भोग, विवे-वासना और रोगादि शब्दोंके सरस प्रयोग ।

“पाप” करति ही अन्तर्गत मन्वी न नैकु जगतीस ।”

—रामदास

“उद्वेगी पुन” की पुन सौखी सकल सिद्धि हाकर ।”

—चतुर्भुवन

“मास्वी भूमि पश्येदि स्वोम नै तच्छिन्न परग गवी ।

—हरदास

“करम-अकरम करि-करि वा जगति भोगत द्वे विने “भोग ।

—बानधीदल

विवे—मन अर्थात् मुन ना मोरत ।

—अनिलदोष

“वासना” अर्थात् यदि बुझानी ।”

—गदाधरभट्ट

“आहु उर उपज्वी ही भवी रोग” ।

—रत्निकान्त

“कर्मेण पापं चैव पुण्यं, छोह-सोने की बेरी”, अर्थात् कर्म रूप पाप और पुण्य, छोहे व सोनेकी बेड़ियों हैं। अच्छे वा बुरे दोनों प्रकारके ही कर्म, जीवात्माके बाँधनेवाली छोह और स्वर्ण जैसी बेड़ियों हैं। अस्तु उक्त बेड़ियोंसे, अबका कर्मरूप बंधनोंसे, जीवात्मा तब ही मुक्त होता है जब कि वह कर्मकण्डका परित्यगकर, परमत्मा के सच्चे प्रेमसे अराधना करने लगे। कर्म-अकर्मकी चिन्ता न कर, सच्चे दिलसे उसके ध्यानमें लग जाय। क्योंकि कर्म, स्वर्ग-नर्क, भोग-भोगके साधन हैं, भाग्यशक्तिके नहीं। जैसा कि श्रुतियों कहती हैं, एष—

‘एष होचैर्न साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो श्लोकेभ्य उन्निनोपते । एष एषासाधु कर्म कारयति त यममोनिनीपते ।

—श्रौतिसंन्योपनिषद् ३ । ९

। यथाक्षरी यथाधारी तथा भवति साधुक्षरी साधुर्भवति, पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भयति, पापः पापेन । अथ खन्वाहुः क्रममयम् एवाप्य पुरुष इति स यथा क्रमो भवति तत्कलुर्भवति यत्कलुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तद्भिसंपद्यते ।”

—बृहदारण्योपनिषद् ४ । ४ । ५

गीतामें यही कर्मकी व्यवस्था, श्रीभगवान् भी अर्जुनके प्रति करते हुए करते हैं —

‘युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति मैत्रिणीम् ।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निवर्ष्यते ॥’

—गीता ५ । १२



‘मक्षाः कर्मण्यविद्यासो यथा कुर्वन्ति भारत  
 कुर्याद्विर्हास्तथासकच्चिपुंसोःकसप्रहम् ॥  
 तस्मात्सक्त सतत क्यर्यं कर्म समाचर ।  
 मसक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥  
 “तत्पयित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।  
 गुणा गुणेषु यतस्त इति मत्वा न सज्जते ॥”  
 “प्रहृतेर्गुणसमूहाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।  
 तान्मृच्छन्निविदो मन्वाङ्मृच्छन्निष्ठाः ॥”

—श्रीता १ । २५, २९, २८, २९०

‘कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।  
 अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥”  
 “कर्मण्यकर्म यः पश्येत्कर्मणि च कर्म यः ।  
 स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्महन् ॥”  
 ‘स्यपस्वा कमफलासहं नित्यवृत्तो निराभयः ।  
 कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सा ॥”  
 ‘निराशीर्यतश्चित्तारमा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।  
 शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किञ्चिदपम् ॥  
 ‘यदृच्छाद्यभसमुषो ह्यन्दातीतो विमत्सरः ।  
 समः सित्यावसिन्धौ च हृत्प्यापि न निषद्यते ॥’

—श्रीता ४ । १७ १८ २०, २१, २२

बुद्ध पेसी ही बान श्रीमद्भागवतमें राजा-निमित्ते प्रति 'अन्तरिक्ष-

द्वारा भी कर्मायी गयी है, जैसे—

● हमने गीताकी हम उक्त सूक्तियोंको अमर-विपर्ययके साथ उद्धृत किया है । लेकिन साक्षात्कर्मोमहकृत 'गीतादर्शन' के अनुसार उक्त सूक्तियोंका अर्थ-अमर टीका है ।

“कर्माणि कर्मभिः कुर्यन्समिमित्तानि देहसृष्टम् ।  
 तत्तत्कर्मफलं शुद्धम्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥  
 इत्य कर्मगतीर्गच्छन्ब्रह्मव्रवहाः पुमान् ।  
 भामृतसमप्रवास्तर्गमलयावधनुतेऽयदाः ॥

—श्रीमद्भगवत् ११।१।४, ७

“एष लोकां पर विद्यात्मन्धर कर्मनिर्मितम् ।  
 स तुस्यातिशयस्यस यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥

—श्रीमद्भगवत् ११।१।२

“कर्माणि पुण्योवर्काणि कुर्यन्मेहेम सैः पुनः ।  
 देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्याभर्मिणा ॥”  
 गुणाः शुद्धस्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ।  
 जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलात्म्यसौ ॥

—श्रीमद्भगवत् ११।१।२९, ३१

गोशामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सुम अह अमुम करम अनुहारी ।  
 ईस देह एक हरी विचारी ॥  
 अहु न कोह सुख तुलकर दावा ।  
 तिम ह्य करम भोग सब ज्ञाता ॥

—रामचरितमानस अयोध्या

दादू-दयालजी कहते हैं—

“एतु मिछे उर्षीं बंदु कीं गहन मिछे उर्षीं पुर ।  
 करम मिछे कीं जीव कीं बल-सिद्ध अगौ पुर ॥  
 अम-कुशाहा अग-वन अरत बारबार  
 अगरे हाथी अपको काठ्य है संसार ॥”

हैं। जैसे—क्षु, थोत्र, नासिक्य, रसना और त्वचा। कर्मेन्द्रिय उन्हें कहते हैं—जिनके द्वारा विविध कर्म किये जायें और उनके नाम ये हैं—वाणी, हाथ, गुदा, पैर और तपस्थ। वेदान्तशास्त्रे इनके अतिरिक्त एक उभयार्थक अन्तरेन्द्रिय—मनको, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार विभाग कर ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियमें जोड़ चौदह प्रकारकी मानते हैं।

“कर्मेन्द्रियं तु पाप्मादि मनोनेत्रादिषीन्द्रियम्।”

ब्रह्म-अग्नि—शुद्ध ब्रह्म-अग्नि, अर्थात् ब्रह्मरूप अग्निमें बलकर।  
ब्रह्म-अग्निमें कर्मोक्ते अत्यन्त।

श्रीनन्ददासजीने इस छन्दमें कर्मोक्ते इतना करनेके लिये—  
उनका त्यागनेके लिये ही अधिकरण बतलानेको ब्रह्मको अग्नि कहा है क्योंकि ब्रह्म-ज्ञानी, कर्मोक्ते कर्म ही अधिकरण करनेसे तृप्ति लाभ करते हैं। जैसा श्रुतियों प्रतीपादन करती हैं, यथा—

‘ब्रह्माग्नी सत्यं क्षाममन्तं ब्रह्म।’

—शैश्वीयोपनिषद्

श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

‘ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नी ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥

अपचा—

ब्रह्माप्रापये यमं यद्येनैवोपजुह्वति।”

(गीता ४। २४ २५)

समाधि—ध्यान-योगकी क्रियाविशेष। सबसे पहिले समाधिमें

मुख्यतया दो—सुरतिशय और निरतिशय भेद होते हैं। सान्निध्य-

समाधिमें ध्याता और ध्येयका बोध होता है और निरतिशय-समाधिमें वेदास्तियोंका अन्तिम अनुभव ही वर्तमान रह जाता है ।

कहते हैं योगका चरम फल समाधि है और यह आठ अंग—यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान-धारणा आदिमें मुख्यरूपसे अन्तिम अंग माना जाता है । समाधि-अवस्थामें साधक सब प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त हो जाता है, चित्तकी सभी वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं और बाह्य वस्तुसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता । उसे अनेक प्रकारकी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और अन्तमें 'शैवस्य' भी । योगदर्शनमें 'समाधि के कई भेद क्लेशसे हैं ।

लीन—मिलना, समा जाना, डूबना, तन्मय, तत्पर—आदि ।

साधुत्व—शुद्ध सायुज्य अर्थात् एक प्रकारकी मुक्ति । जिसमें साधक का मूक साध्यमें—ईश्वरमें मिल जाता है, एकत्वका प्राप्त हो जाता है, अमेदत्वको प्राप्त हो जाता है, अर्थात् वह कही हो जाता है ।

पद्मोत्सव, ईद्री, अग्नि-अग्नि, समाधि, लीन और साधुत्वदि शब्दोंके सरस प्रयोग ।

'ना इम 'पद्मोत्सव' कीं मारें योग-सुगत न्य साधे ।

—यमदास

"ईद्री" अबहुँ न बिदे उक्त । —उद्वेकदास

"अग्नि-अग्नि" बरि मुष्टी पायी ।

—गुणदास

सिद्ध-समाधि" अंत नहिं दरसी मौहरी सुरत प्यारी ।"

—यमदास

मम अब ऐसी 'लीन' मदी । —सुपरीदास

सकृज्ज-मुच्यते" कहीं बखान ।

वैद-पुराण सबै परमार्थ ॥ —ररररर

गीतामें म्मावान् भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

"योगस्यः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धर्मंश्रय ।  
निश्चयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥"  
युक्तियुक्तो अहस्तीह उमे सुकृतदुष्कृते ।  
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु क्रीडात्मम् ॥

—गीता २ । ४८ । ५

क्योंकि—

यथार्थात्कर्मणोऽस्यत्र लोकोऽय कर्मबन्धनः ।  
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥  
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।  
लोकसमग्रमेवापि सपश्यन्कृतमहसि ॥

—गीता २ । ९ । २

श्रीमद्भागवतमें भी यही कथा है—

"नाचरेषस्तु वेदोक्तं स्वयमग्नोऽजितेन्द्रिया ।  
विकर्मणा ह्यपमेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सा ॥  
वेदोक्तमेव कृपाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।  
नैष्कर्म्या स्वयते सिद्धिं रोचन्नाथा फलधुतिः ॥

( एषदश २ । ४५-४६ )

श्रीसूर कहते हैं—

गोपीं परमोत्तम चित काशी ।  
नैत्रि-मूर्ति भवत्स-गति रवाद्य ॥  
इदं-कर्मण मम ज्येति प्रकृत्यै ।  
सो धरन्तुन धरति कववासी ॥  
इदि उपाह विरहा-तन मंत्री ।  
"सूर" जोग जगदीश्वरि चेंदी ॥

गोपी-वचन

१८

भक्त—सेवा करनेवाला, मञ्जन करनेवाला, भक्ति करनेवाला ।  
सेवक, सत्पर अनुगत, उपासक । गीतानुसार भक्त, आर्त, जिज्ञासु,  
अर्थायी, ज्ञामी आदि\* । श्रीमद्भागवत-अनुसार भक्त नवधा  
भक्ति —

“अर्पणं कर्तनं विष्णोः स्मरणं पदसेवनम् ।  
अर्चनं वन्दनं वास्यं सख्यमारमनिषेदनम् ॥”

—के करनेसे नौ प्रकारका होता है । इसी तरह श्रीबल्लभाचार्यने  
भक्तोंका अन्वपूर्वा और अनन्वपूर्वा नामसे प्रथम दो भेदकर पुन  
उसके सात्त्विक, राजस और तामसादि अठारह भेद मान और एक निगुण  
भक्ति, अठारह—नहीं उन्नीस भेद माने हैं । क्या —

‘राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा ।  
एवं चतुर्विधा गोप्यः पतिमत्योनिरूपिताः ॥  
तथैवानन्वपूर्वाश्च प्रार्थनामाहुदत्तमाम् ।  
गुण्यतीताः सात्त्विकीश्च तामसी राजसीस्तथा ॥  
हृष्यभावमया सिद्धा विशेषेणाह ताः शुकाः ।

● तन्नाम-भक्तोंके आर्त, जिज्ञासु अर्थायी और ज्ञानी चार भेद होते  
हैं जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है । भक्त जो अपनेपर अपने हुए  
लक्ष्योंके मुक्ति पानेके लिये अथवा विपरीत लक्ष्योंके हटनेके निमित्त जो  
भक्ति श्री अर्पण है वह आर्त-भक्त कहलाता है । जिज्ञासु भक्त ईश्वरके प्रति  
प्रारम्भिक प्रेम न होनेपर भी उनके गुण और कार्य जाननेकी भावुरता  
दिलचस्प है और जो किसी निमित्तकी इच्छासे ईश्वरी प्रार्थना करता है  
वह अर्थायी-भक्त कहलाता है ।

अन्त्यपूर्वाच्च एव पुनस्त्रिषो मुदा ऋगुः ॥  
 सात्त्विकी तामसी चैव पञ्चसी चेति विभुताः ।  
 सपूर्वाच्च ततस्त्रिषाः तामसी राजसी परा ॥  
 पुनस्ता एव त्रिविधा भटतीत्यादिभिस्त्रिभिः ।  
 पञ्चसो तामसी चैव सात्त्विकीति विभेदतः ॥  
 अन्त्यपूर्वा द्विविधा राजसी सात्त्विकी तथा ।  
 तमसा तामसी तत्र ग्वास्तीत्यकोनविंशतिः ॥

—मुनीनि दीप

श्रीमद्भागवतमें मऊके उत्तम, मध्यम और अचम रूप तीन  
 भेद और भिन्ने हैं तथा उनके लक्षण इस प्रकार हैं:—

उत्तम—

‘सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भायमात्मनः ।  
 भूतानि भगवत्प्राग्मत्सेव भागवतोत्तमः ॥’

अथवा—

‘‘गृहीत्वापीन्द्रियैरध्याम्यो न ह्येष्टि न हृष्यति ।  
 यिष्णोर्मायामिद् पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥’’

अथवा—

‘‘न कामकर्मपीजार्मा यस्य चेतनि संभवः ।  
 यातुदेवैश्चरित्तयः स वै भागवतोत्तमः ॥’’

अथवा—

देहान्द्रियप्राणमनोभिया यो  
 जग्माप्यपमुद्भवतः पृच्छीः ।  
 संसारधर्मैरयिमुह्यमानः  
 स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥’’

—एषारण्य २ । ४५, ४८ ५, ४९

अप्यम—

“ईक्ष्यते तदधीमेपु वालिशेषु द्विपत्सु च ।  
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा या करोति स मध्यमः ॥”

अथम—

“अर्चायामेव हरये पूजा यः अक्षयेहते ।  
नतवृभकेषु चाप्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥”

—एकान्त २ । ४९, ४७

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्री कर्तुन-मति भगवान् उत्तम भक्तकी

व्याख्या करते हुए कहते हैं —

अद्वेष्य सख्यमृतामां मैत्रः कथय एव च ।  
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः समी ॥  
सतुष्टः सततं योगी सतात्मा हृदिनिद्वेष्यः ।  
मय्यर्पितमनोबुद्धियो मे भक्तः स मे प्रियः ॥  
यस्मान्नोद्विषते स्नेहो स्नेहश्च नोद्विषते च यः ।  
हर्षामर्षभयोद्वेगेर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥  
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उवासीनो गतव्यथः ।  
सर्वारम्भपरित्यागी यो भवभक्तः स मे प्रियः ॥  
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोषति न क्वंसति ।  
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमाप्यः स मे प्रियः ॥  
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।  
शौतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥  
तुष्टयनिश्चास्तुनिर्भीती सतुष्टो येन केनचित् ।  
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमाम्ने प्रियो नरः ॥  
ये तु भक्त्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।  
अद्भुतानां मत्परमा भक्तास्तेऽतीथ म प्रियाः ॥

—गीता १२ वां अध्याय १२-२



—और आप भक्तोंके लक्षण इस प्रकार कहते हुए उनकी ये प्रशंसा करते हैं —

“हृपात्पुरहृत्प्रोहदितिल्लुः सर्वदेहिनाम् ।  
 सत्यसारोऽनवघात्मा समः सर्वोपकारकः ॥  
 कामीरहतपीडांस्तो मूढुः शुधिरकिञ्चनः ।  
 अनीहो मिठभुक्तशास्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥  
 अग्रमत्तो गभीरात्मा श्रुतिमाश्रितपद्मगुणः ।  
 अमानी मानवः कल्पो मैत्रः काठपिक कविः ॥  
 आबायैव गुणाम्बोपात्मयादिद्वानपि स्वप्नम् ।  
 धमान्सुस्थाय यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥  
 अन्धाभ्रात्पाथ ये वै मां पापाम्यश्वासि यावद्यः ।  
 भयस्थानन्यभाषेम ते मे भक्ततमा मताः ॥

भीमन्दा ११ । ११ । २९, ३० । ११ १२ १३

अथवा—

वाग्दग्दा द्रवते यस्य चित्तं  
 रुदत्पभीर्णं हसति कविष्य ।  
 पिलञ्च उद्गापति मृत्यते च  
 मद्भक्तियुक्तो भुयर्न पुनाति ॥

—भीमन्दागवत् ११ । १४ । १४

एव जरा भक्तोंपर ब्रह्म-भाषा कवि-करोन्द्रिर्कोरी सरस-सुक्तिर्षी भी देखे श्रीजिये । यथा—

“रुधी कैमी अन्ध मोहि धारै ।

मध लजि अन्ध भिरंतर मेरे अन्ध करम-गुन गारै ॥  
 कपनी कपै भिरंतर मेरी मेधा मी बित धारै ।  
 मृदुल-दाम भेदिवन-ब्रह्म-धारा करलक-लाक धारै ॥

जई-जई मगत चरन निज रागै, ठई तीरथ बधि जावै ।  
 तहँ की रज कीं जंग जगावत कोटि-अछ-मुज पावै ॥  
 मेरौ कम हउे में तिबके, मेरे हू उर जावै ।  
 बकि-बकि जाई श्रीमुखकी बाधी 'सुरदास' अस रावै ॥

—सुरदास

प्रथम सुमें मागत भक्त-मुज मगावत-बोली ।  
 हुतीब भरावै भक्ति, ध्यास गी-भौति बखौनी ॥  
 वृत्तीब करै गुह समधि दण्ड सरबन्ध रसीके ।  
 लीजें होइ मिरल, बनें बनराज कसीके ॥  
 पौंचि मूळ देह निज छठे-भाबना रास की ।  
 माते पावै रीति-रस श्रीलामी हरिदास" की ॥

—सिद्धमन्त-मुखावली

श्रीध्यासनी कहते हैं—

श्री मुख होत भगत-जर जायें ।  
 सो मुख होत बहि बहु-संपति बौद्धि देवा-जायें ॥  
 जो मुख होत भक्त-बल्लोहक पीकत गात-जगजयें ।  
 सो मुख सपनेहुँ नहि पैवत कोईन तीरथ गहायें ॥  
 जो मुख भक्तन की मुख देवत उपजति मुख बिसरायें ।  
 सो मुख होत न कीमिहि कजहुँ कीमिनि हर कपरायें ॥  
 जो मुख कजहुँ न पैवत पितु-वर, सुत की पूत किरायें ।  
 सो मुख होत भक्त-बल्लमि सुमि नैमनि बीर-गहायें ॥  
 जो मुख सिद्धत रहत सर्वेन सों दिन-दिन रंग बजायें ।  
 सो मुख होत न नेकु "ध्यास" की कंक सुमेरहुँ पायें ॥

नाग—सर्प, साँप, लड्डि, फणा, ठरग—आदि ।

“... .. 'नागाः' ब्रह्मदेवस्तदीश्वरा ।”

बॉबी-साँपके रहनेका स्थान, बिउ, छिद्र ।

मक, नाग और बॉबी-सम्बन्धके सरस प्रयोग ।

हैम मर्लेन के मक" हमारे ।"

—सुरदास

"नाग" नाम प्रभु बाहर ब्याप, फँस-फँस विरल करे ।"

—मीरबाई

मानों निकसि शॉब-बॉबी" तें नागिन करति किञ्चोक ॥

—गंगबाई

श्रीनन्ददासजीकी उक्त मरस-सूक्तिके साब-साप श्रीसूरजी भी इसी भावपर सुन्दर रचना देखने लायक है । जैसे—

अपने सगुन-गुणाई माई इहि बिधि ब्यहै वैति ।

ऊधी की इन मीठी-बार्तन मिरगुन कैमें वैति ॥

परम अरथ कर्मना मुअरत सब मुक मुक्ति समेति ।

काकी भूँस गई मन-कहुँन से देखी बित-वेति ॥

आर्यो मोच्छ विचारत बरलत निगम बहत ई भेति ।

'भूर' लीम तजि को मूम-मरिहै मनुप तिहारि हेति ॥

जोगी होइ सौ जोग-बखाने । नीचा-मन्दि, दाम-रति मॉने ॥

भजबार्ध अन्दी हम प्यारी । अद्यामै-सुग बॉब पिचारी ॥

बतिपौरबि-बधि बहत मर्वात्री । धीमिपौ हरि के रूप-मुर्मोबी ॥

प्यावरि-बिभा न अज्ञा पॉने । बिन-बेधे कैमें रति मॉने ॥

पुनि-पुनि पुनि बीड़ी मुधि ब्यहै । कृष्ण-रूप विभु और न भावै ॥

नव-दिगोरअदि" बेन-निहारपौ । कोटि-जोग का छबि पै ब्यारपौ ॥

सीस मुकुर कुँहम पवमल्ला । बरी दिवरें बे बैन-बिमाका ॥

सृगमर मकब अकक पुँपरारे । उम मॉहन मय हो हमारे ॥

बहुली बुरिल नासिध रात्रै । अवर-अनम सुगधी कक-बात्री ॥

राक्षस-बर्सेन वीमिनि-भुक्ति सोही । मृदु-मुसिकीर्ण सु तब-मन-सोही ॥  
 चंद-झरक कंडा मनि-मोती । हुरि कलत डहु-नाम की बोती ॥  
 ककन, किंकिनि पदक बिराजै । गज-गति-आछ मृपुर-बक-बाजै ॥  
 मन के धातु बिच तन किये । श्रीबछ-चिन्ह, राजत जति हिये ॥  
 पीठ-बसन-कमि बरनि न बाई । लख-सिख सुंदर कुबेर-अम्हाई ॥  
 रूप-रासि अरुण के संगी । कब देखें वह ककित-बिर्मगै ॥  
 जो रू हित की बात बजवै । मदन-गुणकहि नयो नमिअपै ॥

जानना—

“कहिंन रही मनमें और ।

बंद-बंदन अकत कैसे किये उर भीर ॥  
 बकत बिचकत दिखस आगत सुपन सोबत रात ।  
 हरे तें वह स्वाम-मूरति छिन न इत-उत बात ।  
 कौम-गलत सरोज कौनन ककित-गति मृदु-दास ।  
 ‘सूर’ ऐसे रूप क्यरेन मरत खेचन पास ॥

दादूदयलजी कहते हैं—

‘दादू’ रात राम का पीवै प्रेम बख्यइ ।  
 मठवाळा दीवार का मोगै मुक्ति बख्यइ ॥  
 “दादू” पासी प्रेम की बिरछा बौनै कोइ ।  
 बेन-सुरीन-मुलक पके प्रेम बिना का होइ ॥  
 प्रीति जो ई मो पीव की पैठी पिअर सौंहि ।  
 रीम-रौम पिब-पिब करै ‘दादू’ दूसर पौंहि ॥

सहजोनाई कहती हैं—

मोगी कबै मोग रू कौनै करी बिचार ।  
 सहजो” पावै अछि रू मोग-प्रेम आचार ॥”

अतः अप्यवच्छदमे बना । इन चारों वेदोंको प्राचीन साहित्यकारोंने साय मनुने भी "षेदप्रयी" नामसे उल्लेख किया है । ऋग्वेद पद्यमें है, यजुर्वेद गद्यमें तथा "साम" गानेयोग्य गीतोंमें—पद्योंमें है । अथर्ववेद जो कि पीछेसे बना इसमें शान्ति तथा पौष्टिक-अभिचार, प्रायश्चित्त-विधियाँ, तन्त्र-मन्त्र आदि विषय हैं । वेद—संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक वा उपनिषद्रूप तीन मार्गोंमें विभक्त है । संहिता अर्थात् संग्रह । वेदके संहिता-विभागमें स्तोत्र, प्राश्ना, मन्त्र-प्रयोग, आशीर्वादरूपक सूक्तियाँ यज्ञविधिसे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्राणि और अष्टि निवारणरूपक प्रार्थनाएँ सम्मिश्रित हैं । वेदोंका यही विभाग "मन्त्र-भाग" कहलाता है । वेदोंका ब्राह्मण-विभाग गद्य-प्रकारका है, जिसमें अनेक देवताओंकी कथाएँ, यज्ञ-सम्बन्धी विचार और भिन्न भिन्न ऋतुओंमें होनेवाले धार्मिक कृत्योंके व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्त्वका निरूपण है । इनमें रहनेवाले यज्ञ और संन्यासी आदि परमेश्वर, ब्रह्म और मनुष्य इन तीनोंके सम्बन्धमें जो-जो विचार विनिमय किया करते थे, वह सब उपनिषदों और आरण्यकोंमें संगृहीत है । इन्हींमें अमरतक प्राचीनतम तत्त्वज्ञान मग पदा है । यह विभाग वेदोंका अन्तिम भाग है, इसलिये ही यह अन्त कहलाता है । वेदोंका प्रचार बहुत काउसे है, अतः काठ-मन्त्र, देश-भेद और व्यक्ति-भेदोंके कारण वेद-मन्त्रोंके उच्चारणमें अमक पाठ-मन्त्र हो गये हैं । साथ ही पाठोंमें कहीं-कहीं कुछ न्यूनता और अधिश्रुता भी हो गयी है । इन पाठ-भेदोंके कारण "संहिताओं" को जो रूप प्राप्त हुआ है वह 'शक्य' कहलाते हैं और इस प्रकार प्रत्येक वेदकी वर शक्य

हो गयी हैं। चारों वेदोंमें चार विषयों निम्नलिखी हुई कहते हैं, अतएव  
 निम्न ग्रन्थोंमें एक विषयोंका वर्णन हो वे उपवेद कहल्यते हैं।  
 प्रत्येक वेदका एक-एक स्वतन्त्र उपवेद है। इसके अतिरिक्त शिक्षा,  
 कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष और छन्द ये छ वेदोंके अङ्ग  
 कहे जाते हैं। जैसे—

शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां षणः।

छन्दो विचित्रिरित्येषाः षडंगो वेद उच्यते ॥”

—कल्पवृक्ष

वेदोंका स्थान ससारके प्राचीन-से-प्राचीन इतिहासोंमें बहुत  
 उच्च है। इन वेदोंमें हम भारतीयोंकी अरम्भिक आध्यात्मिकता,  
 साम्प्रतिकता और नैतिक-सम्भक्तिकता का सुन्दर निदर्शन है। वेदों-  
 को भारतीय जन्मता अपौरुषेय, अर्थात् ईश्वर-कृत मानते हैं और जैसा  
 कि अभी लिखा जा चुका है—मन्माने वे चारों मुखसे कहे। अत  
 अग्नि-विन-विन अपिषोने जो-जो मन्त्र सुनकर संगृहीत किये वे उनके  
 अग्नि ( व्रथ ) कहलाये जाते हैं। प्राय सभी साम्प्रदायिक आचार्य-  
 षोनि वेदोंको परम प्रामाण्य माना है। स्मृति और पुराण आदिमें  
 वे, देवतादिके मागदर्शक मित्य अपौरुषेय और अप्रमेय कहा है।  
 ऋषियों और उपनिषद्दिमें कहा गया है कि वेद सृष्टिसे भी पहिले  
 उत्पन्न हुए और उभक्त निर्माण प्रजापतिने किया। पर वेदोंका  
 वर्तमानरूपसे संप्रदाय-विभाग और संकलन ऋषि व्यासजीने ही किया  
 है, इसलिये आप 'वेद-व्यास' कहल्यते हैं। विष्णु और वायु-पुराणमें  
 कहा है—सर्व विष्णु भगवान्ने ही वेद-व्यासजीका रूप धारणकर

वेदके उक्त चार विभाग किये और क्रमशः पैल, वैशम्पयन, जैमिनि और सुमन्त आदि चार ऋषियोंको दिये । जैसे—

‘वेदस्तुमस्य मैत्रेय शास्त्रामेवास्तद्वक्षशाः ।  
 न शक्यो विस्तारद्वक्तुं संक्षेपेण ऋणुष्य तम् ॥’  
 द्वापरे द्वापरे विष्णुर्ग्यासरूपी महामुने ।  
 वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हिता ॥  
 वीर्यं तेजो बल आस्यं मनुष्याणांमयेक्य च ।  
 हिताय सर्वभूतानां वेदमेवाम्करोति सः ॥  
 पयासी कुरुते तम्बा वेदमेकं पूयक प्रभुः ।  
 वेदध्यासाभिधानात्तु सा च मूर्तिमधुद्विप ॥

—विष्णुपुराण ३ अंश ३।४५६७०

वेदांतशास्त्री वेदोंको ऋषसे उत्पन्न मानते हैं । जैमिनि और कपिल वेदोंको सत सिद्ध कहते हैं । वेदोंकी रचना-कर्म-नियमों आधुनिक विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है । मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानोंका कथन है कि वेदोंकी रचना ईशासे प्रायः हजार वा डेढ़ हजार वर्ष पहिले हुई थी । उस समय ही आर्यजाति पनाबमें आकर बसी थी, परंतु लोकनाम्य बाल गंगाधर तिलकने अंग्रेज-शास्त्रके साथ अन्य कितने ही आधारोंसे यह प्रमाणित किया है कि वेद, ईशसे सारे चार हजार वर्ष पहिले स्थिर थे । मुहूर्तर आदि विद्वानोंका अभिमत है कि आर्य-सम्पत्ता ईशासे प्रायः चार हजार वर्षसे भी पहिले थी और वैदिक साहित्यकी रचना ईशासे लगभग तीन हजार वर्ष पहिले हुई । अधिकांश विद्वान् यही अभिमत; स्वीकार करते हैं, आदि-आदि ।

मेति—विस्तृति इति न हो, आदि हो, पर अत न हो, अंत-  
रहित, वर्तत, बहद ।

नेति—शब्द उपनिषद्गोत्रे ब्रह्म वा ईश्वरकी अनन्तता सूचित  
करनेके लिये आता है ।

आत्मा—शुद्ध आत्मा, अर्थात् ब्रह्म, जीव, चित्त, बुद्धि,  
अहंकार, मन, देह, स्वभाव, यत्न और धृति आदि ।

‘ अमरमा पत्नोपृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्मवर्म च ।

—अमरकोश १।४।११२

अथवा—

‘ अमरमा’ कसेबरे पत्ने स्वभावे परमात्मनि ।

चित्ते धृती च बुद्धौ च परम्यावृत्तिनिऽपि च ॥”

—वदवि

अथवा—

प्रत्यग्रूपा पराग्रूपादभ्यामृतोऽनुभवमात्मकः ।

प्रपत्तेयो स आत्मेति ’ प्राङ्गुरात्मविशेषो बुधः ॥”

आत्मा—शब्दका प्रयोग प्राय ब्रह्म और जीवके अर्थमें प्रयुक्त  
होता है, जैसा कि यहाँ अर्थ है । इसका यौगिक अर्थ ‘व्याप्त’ है ।  
जिस प्रकार ब्रह्म संसारके प्रत्येक अणु और अणुअणुमें व्याप्त है, उसी  
प्रकार जीव भी प्रत्येक प्राणीके अंग-अंगमें ‘व्याप्त’ है । इसलिये  
‘आत्मा’ शब्दका व्यवहार प्राचीन शास्त्रकारोंने दोनोंके लिये किया  
है । साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति इन तीनोंके लिये, अथवा  
अनिर्वचनीय पदार्थोंके लिये इस शब्दका व्यवहार करते आये हैं, परन्तु



मुख्यतया इसका प्रयोग जीवके सर्वधर्म विशेष और अज्ञ तथा प्रकृतिसे अर्थमें गौणरूपसे किया गया है। ससारमें प्रायः दो भेद देखनेमें आते हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी। प्रकृतिसे पूरक आत्मवादी पदार्थ-विशेष माननेवाले आत्मवादी और प्रकृति-विकार विशेषको ही आत्मा माननेवाले अनात्मवादी कहलाते हैं। उनके मतमें आत्मा कोई पदार्थ नहीं, अपितु प्रकृतिक विकारमय है। अनात्मवादी यूरोपमें विशेष हैं। उनका कहना है—आत्मा, प्रकृति-के भिन्न-भिन्न वैकल्पिक अंशोंके संयोगसे समुत्पन्न एक शक्ति विशेष है, जो कि प्राणियोंमें गर्भावस्थासे ही उत्पन्न होकर मरणपर्यन्त रहती है और बादको जिन तत्वोंके विच्छेदणसे यह उत्पन्न हुई थी उन्हींमें मिश्रकर नष्ट हो जाती है। बहुत दिन हुए भारतवर्षमें यही बात प्रसिद्ध विद्वान् 'गृहस्पति' न कही थी जो कि 'चार्वाक' नामसे प्रख्यात था। चार्वाकका कथन है—

तच्छीतम्यपिशिष्येह एव आत्मा देहातिरिक्त व्यरमनि प्रमाणाभावात् ।”

अर्थात्—येइके अनिरीक्त अन्यत्र आत्माके होनेका कोई प्रमाण नहीं है, अतः शीतम्यपिशिष्ये देह ही आत्मा है। इस मुख्य-मतेके बाद का और भेद उत्पन्न हो गये और क्रमशः शरीरकी स्थिति तथा ज्ञानकी प्राप्तिमें कारणमूल इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकारको आत्मा मानने लगे। कोई इसे विज्ञानमात्र, अर्थात् धार्मिक मानन मना, तो कोई पुष्ट और ही। वैशेषिकदर्शन आत्माको एक द्रव्य मानकर निम्नलिखित है कि प्राण, अपान, निमेष, उग्मेघ, जीवन, मन, शक्ति-

इन्द्रिय, अंतर्बिम्बर वैसे—भूष-म्यास, अर-पीडादि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्नादि आत्माके लिंग हैं, अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग का बिह दीस पवें, वहाँ आत्मा रहती है, लेकिन म्याफकर गौतममुनिने—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानादि ही को आत्माका चिह्न माना है। वैसे—

“इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानादित्पारमणो लिङ्गम्।”

—म्यामसूत्र १।१०

सांख्य-शास्त्रानुसार आत्मा—अकर्ता, साक्षीभूत, असंग और प्रकृतिसे परे ( भिन्न ) अतीन्द्रिय पदार्थ माना जाता है। योगशास्त्रानुसार आत्मा—वह अतीन्द्रिय-पदार्थ है जिसमें द्वेषा, कर्मत्रियाक और आशय हो। सांख्य और योग ये दोनों ही आत्माके स्मरणपर पुरुष शब्दका प्रयोग करते हैं। मीमांसकके अनुसार आत्मा कर्मोका कर्ता और फलको भोक्ता स्वतंत्र अतीन्द्रिय-पदार्थ है। पर मीमांसकमें प्रभाकर, कुमारिल-आदि आत्माको अज्ञानोद्भूत-चैतन्य मानते हैं। वेदान्तानुसार आत्मा—निरय, शुद्ध, शुद्ध, मुक्त-अभाव प्रकृत अंशविशेष है। बौद्ध-मतसे आत्मा, अनिर्बचनीय पदार्थ जिसका वादि और अंत-अवस्था न हो माना जाता है। पर उत्तरीय बौद्ध आत्माको एक शून्य पदार्थ मानते हैं। वैनी आत्माको कर्मोका कर्ता, फलको भोक्ता और अस्मै कर्मोसे मोक्ष और बंधनको प्राप्त होनेवाला एक अरूपी-पदार्थ मानते हैं।

उपनिषद्—वेदकी शास्त्र और ऋषिगोका वह अतिन माग जिसमें अज्ञानिवा, अर्थात् आत्मा और परमात्माका सम्यक् निरूपण

हो । वेदांत-शास्त्र, तत्त्व-ज्ञान, वेदका शिरोमणि, वेद-खस्य, ब्रह्म-विद्या आदि ।

“अमो रतस्युपनिषद्” ~ ~ १”

( अमरकोश १।४।१५ )

“अत्र उपनिषच्छब्दे ब्रह्मविद्यैकशोचरः ।  
तच्छब्दाक्षयवार्थस्य विद्यापामेव सभवान् ॥”

अथवा—

‘उपोपसर्गः सामीप्ये तत्प्रतीक्षिसमाप्यते ।  
सामीप्यताप्लव्यस्य विधातेः स्वारमन्निस्त्यात् ॥’

‘त्रिविधस्य सव्यस्य निःशब्दोऽपि विशेषणम् ।  
उपनीयतमात्मानं प्रख्यायास्तिद्वयं यता ॥’

‘निहन्त्यपिधां तज्जन्मयतस्मादुपनिषद् भवेत् ।  
निहत्यामर्घं मूलं स्या विधां प्रत्यक्त्यापरम् ॥’

‘शमयत्यस्तसम्भेदं भूतो उपनिषद् भवेत् ।  
प्रवृत्तिहेतुर्निःशोर्पास्तमूलोऽप्युच्यतेऽतः ॥’

‘यतोपसाद्येच्छिद्या तस्मादुपनिषद् भवेत् ।  
ययोक्तविधा हेतुत्वाभंगोऽपितद्भेदता ॥’

—उपनिषद्विद्यामणिः

बैसे तो—उपनिषदोंकी संख्या अठारह ही मानी जाती है, पर कोई-कोई अठारहके अनिश्चित शैलीस, बावन, एक सौ अठ तथा एक हजारसे भी अधिक मानते हैं ।

‘तत्राशीतिसहितशताधिकसहस्रसंख्याया उपनिषद्व्यतुषो  
येदन्ताम् ।’

पर प्रधानस्त दस ही है और उनके नाम ये हैं—ईश वा  
ब्राह्मसनेय, केन वा तपस्कार, कठ, प्रश्न, मुद्गल, माण्डूक्य, तैत्तिरीय,  
ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक । इनसे बहिरिक्त उपनिषद्  
कौषीतकी, मैत्रायणी और श्वेताश्वतर—उपनिषद्को बार्हस्पतीय  
मानते हैं तथा एक सौ छ उपनिषद् छपे हुए भी मिलते हैं ।

पुराण—सुद्ध पुराण, अर्थात् प्राचीन आख्यान, पुरानी कथा ।  
भारतीय धर्म-आस्तिके धर्म-सम्बन्धी आख्यान-मंत्र, जिसमें सृष्टि, व्यव,  
प्राचीन ऋषि-मुनियों और राजाओंके इतिवृत्त होते हैं । अथवा सृष्टि,  
मनुष्य-देव-दानव, राजा और महात्माओंके वृत्तों को परंपरागत बतले  
जाते हैं । कहते हैं जिसमें एक पौत्र ब्रह्मण हों वह पुराण, जैसे—

“सर्गाद्य प्रतिसर्गाद्य चतसो भन्वन्वराणि च ।

वशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चकसत्रम् ॥”

पुराण—अथवा हैं, जैसे—विष्णु, वैश्व, ब्रह्म, शिव, योग्यत,  
नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, धामनी,  
कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्माण्ड और भविष्य, जैसे—

‘ग्राह्य पाद्य वैष्यवश्च शैब माणवतं तथा ।

तथान्धं नास्तीति च मार्कण्डेय च सप्तमम् ॥

आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्त्वमं स्मृतम् ।

वशमं ब्रह्मवैवर्तं लौकमेवावरा स्मृतम् ॥

वाराहं द्वादशं चैव स्कन्दं चार्धमयोत्रशम् ।।

चातुर्विंशं धामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा ॥

मत्स्यं च गरुडं चैव ब्रह्माण्डं च तथा परम् ।

महापुराणान्येथानि द्वादश महाभुने ॥”

—विष्णुपुराण १ । ६ । २१—२४

पर कहीं-कहीं इन नामोंमें म्त्वभेद भी है। कोई श्रीमद्भागवत को महापुराण मानकर उसके बाद वायु-पुराणको मन्तर है, तो कोई विष्णु-पुराणके स्वामपर मुक्ति-पुराणकी सृष्टि करता है।

हरि, बेन, नेति, आत्मना, उपनिषद् और पुराण-आदि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

“हरि’ तेरी माया को न बिदेची।”

—पुराण

“बेन’ रत्न ज्ञाना रत्न भाव, मुक्त, ध्यास रत्न” १”

—जनकेन

“कथित-वचन समुहति मरु’ प्यारी ‘नेति-नेति’ व’ बेन।”

—हरियच

“ “आत्मना” अतंग कवि देह की विहार है।”

—सुन्दरदास

मोहि भुवाच क्व “उपनिषद्” धामि करम के भेद।

—जनक

जह में ह्य्या “पुराणनि” केरि मीर सुम्बीं कित-बीगुने पावन।

—रत्नान

### गोपी-वचन

२०

बीज—हृदयके वृक्षोंका गर्माँद त्रिससे वृक्ष अंकुरित होकर उत्पन्न होता है। यह गर्माँद एक छिन्केके भीतर न रहता है, और हमीमें अव्यक्तरूपसे भरी वृक्षका भग रहता है। जब यह गर्माँदको उपयुक्त सब वायु और स्थान मिलता है तब यह भग त्रिसमें अंकुर अव्यक्त रहता है प्रबुद्ध धारत बढ़ता है और अंकुररूपमें

परिणत हो जाता है। यही अंकुर उभयानुसार बढ़कर वेसा ही पेड़ हो जाता जैसे पेड़के गर्माँडसे वह स्वयं निकल्य था। आदि-आदि

तत्—वृक्ष, वृम, पेड़, गल्ल आदि

‘मृद्धोमहीरुहशाखी विठपीपादपः—’तदा

—अमरकोश २।४।५

माया—ईश्वरकी वह शक्ति जिसके द्वारा सब कार्य होता है। सृष्टिकी उत्पत्तिको मुख्य कारण। ब्रह्मिणा, अज्ञानता, भ्रम आदि।

बेद्यन्तवादिर्योक्त कथन है कि माया ऐसी वस्तु है जो न सत् है, न असत् है, अस्तित्व अनिर्बचनीय है और उसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण हैं तथा इनकी विरोधिनी है और केवल मान रूप है। आगे चर्चकर कहते हैं कि अतक मायाबन्धित उक्त तीनों गुण एकते, अर्थात् साम्यात्स्वामे रहते हैं तबतक जगत्की उत्पत्ति नहीं होती। जब इसमें तमोगुणकी अतिक्रम्य होती है तब इसमें एक प्रकार छोम उत्पन्न होता है, जिसके परिणामस्वरूप जगत्की उत्पत्ति होती है।

मायामें दो शक्तियाँ हैं, एक आवरण-शक्ति और दूसरी विश्लेष-शक्ति। आवरण-शक्तिसे वस्तुको यथार्थ रूप ढक जाता है और विश्लेष-शक्तिसे मिथ्या कल्पना हो जाती है। बाल सूर्यके सामने आ जानेपर सूर्यको दृष्टिसे छिपा लेता है, इसी तरह आवरण-शक्तिद्वारा आच्छिन्न होनेपर—आच्छादित होनेपर आत्मा भी दिखनायी नहीं पड़ती। अँधेरेमें सूखे वृक्षको देखनेपर मूलतः कल्पना हो जाती

है, उसी तरह विक्षेप-शक्ति भी आत्मापर मिथ्या-अगत्यकी कल्पना कर देती है। कोई मनुष्य अचिरे मकाममें जाय और वहाँ रस्सीके टुकड़ को पहा खेस सर्प मानकर डर जाय तथा फिर बाहर आकर दिया ले जानेपर उसके प्रकाशसे उसे ज्ञात हो कि अस्त रस्सीके टुकड़को मैं सर्प समझकर डर रहा था वह वास्तवमें रस्सीका ही टुकड़ा है, सर्प नहीं। यहाँ रस्सीका असभी रूप न दिखवायी पढ़ना एक बात है और रस्सीपर सर्पकी कल्पना दूसरी बात तथा प्रकाशसे उसके अस्तरी रूप ज्ञात होना तीसरी बात है। यहाँ पहिलीका कारण आवरण शक्ति है, दूसरीका विक्षेप-शक्ति और तीसरीका कारण वह वेदान्तिक शास्त्र-ज्ञान है जो कि माया, अर्थात् अविद्याको मोहक, भ्रमक और अज्ञानकर करण समप्रता है। माया, अपनी हम आवरण और विक्षेप-शक्तियोंद्वारा आत्मको छिपाकर उसपर मिथ्या-अगत्यकी कल्पना कर देती है, अतः अगत्य वास्तवमें सत्य नहीं, अपितु मायाका विकार है, पर रहना है व्यावहारिक सत्य।

मायाजनित अगत्यकी उत्पत्तिके निम्नमें वेदान्तियोंका कथना है—मायाका पहिल्य स्वरूप कारण स्वरूप है, अर्थात् अद्वैतक माया है, वह सब रूपके सत्त्व-गुण प्रधानात्मक अल्प अंशसे मिली हुई है और शरीर ससारमरकी अस्तिवस्तुओंका मंडल, अतएव इस माया पुत्र-शरीरके रूप जो ब्रह्मका वह अल्प अंग मित्र है, वह ईश्वर अनु रूप ही है—ईश्वर ही है। यह सत्त्व-गुणवेष्टित ईश्वर सर्वत्र, सर्व-शक्तिमान् और सबका नियन्ता ब्रह्मत्वता है। शरीर भी सत्त्व-गुणप्रधान है, इसलिये इसे आनन्दसे परिपूर्ण मानते हुए आनन्दरूप-

कोश) भी कहते हैं । शरीरकी व्यवस्था सुषुप्ति है, यह सुषुप्ति-व्यवस्था ही स्थूल और सूक्ष्म-शरीरोंका व्यवस्थान है, कारण शरीर इनके परे है । जगत्प्रकाश कारण, शरीर होनेसे प्रत्येकका अर्धपर मनुष्यादि का कारण शरीर होना ही चाहिये । अतः इस कारण शरीरका चैतन्यत्वके साथ जो सम्बन्ध है, वह चैतन्यत्व ईश्वरका ही एक भाग है जो कि 'श्रावण' कहा जाता है और मायाकी मलिन-उपाधिद्वारा अन्धकार और अनीत्य भी । अस्तु, इस शरीरके ही कारण अज्ञानके ही कमनीय कल्पना होती है, जैसे—सम्पूर्ण जगत्का कारण शरीर आनन्दमय कोश कहा जाता है उसी तरह शब्दका वह अल्पांश चैतन्यरूप भी आनन्दमय कोश कहा जाता है । इसकी भी व्यवस्था सुषुप्ति है और जीवके सूक्ष्म और स्थूल शरीरका व्यवस्थान भी यही है । अतः समस्त जगत्का कारण शरीर और किसी व्यक्ति-विशेषका कारण शरीर उक्त एकत्रके अनुसार पृष्ण-पृष्ण नहीं हैं, बल्कि एक ही है । पृष्ण-पृष्ण मन होना तो उचित विकारका फल है । जैसे वन और वृक्ष, जलधरम और जल, पृष्ण-पृष्ण बन्तुएँ नहीं, बल्कि एक ही हैं; इसी प्रकार संसारका कारण-शरीर और किसी व्यक्ति-विशेषका कारण-शरीर भी पृष्ण-पृष्ण नहीं हैं । जब वृक्षोंको पृष्ण-पृष्ण देखा जाय तब तो वे सब पृष्ण-पृष्ण वृक्ष हैं और जब उन्हें समूहरूपसे देखा जाय तो वे वन हैं । यही समष्टि और व्यक्तिव कहा जाता है । किसी समूहरूपको समुदायरूपनेसे कहनेपर वह समष्टि और उसका पृष्ण-पृष्ण वर्णन करनेसे—विक्रम-विद्युत अंशोंका निरूपण करनेसे व्यक्तिरूप कहा जाता है । सम्पूर्ण माया-पुंजका अन्त-अंश चैतन्यरूपसे मिला हुआ देखा





‘भापः स्त्री मूत्रिवा— ‘बारि’ सखिष्ठ कमलं जलम् ।’

—ममरकोश १।१।१

क्रीन—क्रीचक, एक, कर्म ।

बीज, तद, माया, दरपन, लमळ, बारि और क्रीय आदि शब्दोंके सरस-प्रयोग ।

“ब्रह्म-बीज” कथा में बोधै ।

—राजदयाल

“तद-तर” शब्द कर्म सुबोध ।”

—गोविंद स्वामी

“माया” कति कजुद कर कीये कोटिक गौच बचसै ।”

—दूरदास

“सुखदा क्या देखै “दरपन” में ।”

—कबीरदास

“कुंज-कुंज होइ ममराज-काचिडी रमत

रजनी-“अमाक” धरस-पस्त करत केकि ।

—कठनदास

“बसुधा अपने सुखहि नृबाचत, लखी-सीरी “बारि”हृत्कारै ।”

—गंगाधर

“माया-“क्रीच” फलां मन मैरी ।

—मदकदास

धीसूत्रने भी नन्ददासबीकी तरह धीउद्वयके बहुत निर्गुण-निर्गुण रटनेपर एक कतारी फटकार बतलायी है, जैसे—

कबो है तु हरि के हितको ।

इम निरगुण लखी तें अग्यों गुण मेंकी अब विदु को ०

समुझै नहु कबच है सुबिदु, मबड बलाभी मित को ।

नृप-रतबपदमहुं कबो निकसी विनु गुण बहुतै निज को ॥

पूरकता से तब ही बुझी लंप यद् है फित की ।  
हम ती कम्पी है "सूर" सुनि बर-बर, कोम बठक दित की ॥

—सूरकातर

कम्पू जगन्नाथदास रत्नाकरने मी धीठद्वयके बर-बार ब्रह्म-ब्रह्म  
बिह्वानेपर ग्रेपियोकाए कुठ ऐसी ही मीठी फटककर दिलवायी थी, यथा—

“कौन्द-वृत्त डैधीं ब्रह्म-वृत्त हैं बचने काय  
कारें त्रैम कैरव की मति मज्जारी की ।

कहै “रतवाकर” पै प्रीति-रीति बौद्धति का  
रौनति अवीति ब्रिमि धीति डै मंगली की ॥

माग्यो कौन्द-ब्रह्म पङ्कही क्यो ओ तुम—  
तीहू हमें भावति का मावक अन्वारी की ।

कहै बनि-बिभरि क बरिठिबिलकठिचि की  
बृदक बिछेदे बृद विचसि विचारी की ॥

अथवा—

“अग सबसो मी सब बरति दिखारै तुम्हें  
कारें तुम कयो ! हमें सीवत कक्यात ही ।

कहै “रतवाकर” सुने को बल सोवत की  
ओहै मीह जावत से विचल बवाल ही ॥

सोवत में अगत कक्यत अयवे की त्रिमि,  
त्वोही तुम अडुही मुन्नीमी समुसत ही ।

ओन-ओत क्यहूँ न कने कदा ओहि क्यो  
ब्रह्म-ब्रह्म क्यहूँ बरकि बररत ही ॥”

उद्धव-वचन

२१

सौंको—मित्राओ । भेद—उदस्य, ठिया हुआ हास्य, गुप्त-तत्त्व  
कामि । पदत—बढ़ते हैं ।

। सौम्यो, मेद और बदतके सुन्दर प्रयोग, यथा—

श्रीति-श्रीति सौ मोंहव “शौम्यो” विगरी सब बन जाई ।”

—शौबरी स्त्री

“सुर-साक कुति-श्रीम मूर्छन-‘मेद’ सब—

कानी सौ कदि करी मुषीजन यौन ।”

—छानसेन

“सुरवास” जगन्त “बदत” य, ह मनेई कमपुर वैहै ।

—सुरसागर

## गोपी-वचन

२२

सौंस—मुखसे निकलनेवाली हवा । निसरे—निकले, बाहर आये । किना—किस्ती प्रकार व्यापार, व्यवहार, कृत्य, उपाय, विधि, प्रयत्न, श्रेय, अनुष्ठान, प्रायश्चित्तादि कर्म ।

विशेषि—छुट्ट विशेष, कर्पात् मुख्य, प्रधान, अधिक ।

विशेष शब्दके और भी कई होते हैं जैसे—मेद, अन्तर, परक, सरह, डंग आदि । कणादने—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, “विशेष”, समवाय और अमयारूप सप्त पदार्थ मन्त्रकर “विशेषा”को अधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि विशेष वे गुण हैं जिनके कारण कोई एक पदार्थ शेष दूसरे पदार्थोंसे भिन्न सम्झा जाता है । दो वस्तुओंमें रूप, रस, गन्धको जो अन्तर होता है वह इसी विशेष-गुणके कारण होता है । रूप, रस, गन्ध, स्नेह, द्रव्य, बुद्धि, सुख, दुःख, एकाग्र, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार और शब्द ये वैशेषिक-गुण व विशेष गुण कहलाते हैं । कणादके दर्शनमें

इन्हीं विशेष-पदार्थों का गुणोक्त विवेचन किया गया है, इसलिये यह "वैशेषिक-दशम" नामसे कहा जाता है।

सौंस, निसरे, क्रिया और दिसेखि—जादि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

सौंस—सौंसमें रमि रहौ मोंहन मंदकिस्तोर।”

—मगरीदास

‘मो हारें है “निसरे” मोंहन, आठु बड़े ही भोर।

—गुणक-भाष्य

‘करि-करि क्रिया” न मरै पधि मूरक—

तौहु न पाबत संत।”

—अनन्दास

‘प्रेम तें नहिंन जीव विसेखि।” —प्रेमरत्नी

यही बात श्रुतियों भी कहती हैं—

तस्माद्यथात्सर्वदुत श्रुतः सामानि अशिरे।

छन्दसि अशिरे तस्माद्यजुस्तस्मात्जापत ॥”

—गुरुपत्रक

अथवा—

अस्य महतो भूतस्य निम्बसितमेतद्यद्यद्येवो—

यजुर्वेदः सामयेवोऽथपाङ्क्तिरसः ॥’

—बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०

स यथाऽऽर्द्धेयान्नेरम्पाहितस्य पृथग्भूमा विनिश्चरन्त्येव  
या अरेऽस्य महतो भूतस्य निदपसितमेतद्यद्यद्येव यजुर्वेदः सामये  
वोऽथपाङ्क्तिरस इतिहासः पुराण विद्या उपनिषद्: इत्येवम्। सूत्राण्य  
नुस्यादयान्नि ग्याख्यामानीएदुतमाशित पापितमर्ष च शोका  
परश्च स्मेचः सयाणि च भूताम्यस्यैवैतानि सयाणि निम्बसितानि।”

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।११

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

“हरि ध्यायक सर्वत्र समाद्य ।

मेम तें प्राय हीहि मैं ज्यग्य ॥”

—अधोप्याख्या

श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

“कधी चरच करी न जाइ ।

तुम न जायत प्रेम-पथ हम कहत श्रिय-सुकुजाइ ॥

कथा बचन सनेह की मिल, डर न जायत धीर ।

बेद-स्मृति-अभिपद्य को श्रिय रही नौहिंय डीर ॥

मोंब ही मैं कहन छाकी सुगत खोटा-बेन ।

सोब “बागर” तुम न जाँयत कहि न जायत बेन ॥”

—नागरतमुख्य

भारतेंद्रु भानू श्रीहरिचन्द्रजी कहते हैं—

“विपारी, पैपे केवल प्रेम में ।

नौहिं स्पर्शन में नौहिं ध्यौय में नौहिं करैम-कुल-नेम में ॥

नहिं भारत में नहिं रमाइय नहिं मनु में नहिं बेद में ।

नहिं इन्दरे में नौहिं सुगति में नौहिं मर्तन के भेद में ॥

नहिं मंदिरमें नहिं पूजा में नहिं बंद्य की खोर में ।

“हरौचंद्र” की बेबी तु खोख्य पङ्क प्रीति की खोर में ॥”

—बैनकुदरल

श्रीरसनिभिजी कहते हैं—

अकल-आल हन एग्य सो बिदत न देखी जाइ ।

प्रेम-कांति वा की प्रयत सब-ही-दौर दिखाइ ॥”

—रिच-द्वारा

इन्हीं विशेष-पदानों का गुणोक्त विवेकन किया गया है, इसलिये वह "शैशोमिक-दर्शन" नामसे कहा जाता है।

सौप्त, निस्तरे, क्रिया और विस्तेशि—वादि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

'सौप्त'—सौप्तमै रमि रघी मौहन नंदकिसोर।

श्री हारें है निस्तरे" मौहन, अष्ट बने ही भोर। —नगरीराज

'अरि-अरि क्रिया' न मरै पक्षि मूरक—

तौह न पावत भंत।" —गुणक-नामक

—कठनराज

श्रेम तें बहिंन औठ किसेलि।" —श्रेमकली

पही बात श्रुतियों भी कहती हैं—

तस्माद्यज्ञात्सर्वदुष्ट भ्रूषः सामानि जघिरे।

छन्दाश्चि जघिरे तस्माद्यज्ञस्तस्माद्यजापत ॥

—दुर्बराज

अथवा—

अभ्य महतो भूतस्य निभ्यसितमतद्यद्यभ्येदो—  
दुर्षेदः सामयेदोऽथर्षाङ्गिरसः ॥

—इदरात्पञ्चोपनिषद् २।४।१०

'स यथाऽऽश्रैषान्नेरम्यादितस्य पूषण्णूमा विमिधरमभ्येय  
या अरेऽस्य महतो भूतस्य निभ्यसितमेतद्यद्यभ्येदो यदुर्षेदः सामय  
दोऽथर्षाङ्गिरस इतिहासः पुराण विद्या उपनिषद्। इत्याद्यः पूषाण्य  
नुभ्याबयान्मनि भ्याप्यानामीष्टदुतमाशित पापितमयं च खोकः  
परद्य स्तेकः सयाणि च भूताम्यन्धीपैतामि सयाणि निभ्यसितानि।"

—इदरात्पञ्चोपनिषद् ४।५।११

श्रीकृष्णदासजी कहते हैं—

“हरि व्यापक सर्वत्र समाप्त ।

प्रेम तें प्राप्त होंहि मैं आप्त ॥”

—भगवद्भक्त

श्रीनामदासजी कहते हैं—

“कभी चरचा करी न जाइ ।

तुम न आगत प्रेम-पथ इस कहत विप-स्तुथाइ ॥

कथा थक्य स्नेह की बिना उर न आवत और ।

वेद-स्मृति-उपनिषद् को बिना छी बौहिन और ॥

मौल ही में कबूत तानी सुकत खोटा-बैठ ।

स्येव भागर” तुम न जौगत कहि न आवत बैठ ॥”

—नागरसमुदाय

भारतेन्दु बानू श्रीहरिभक्तजी कहते हैं—

“दिपारी पैये केवल प्रेम में ।

नहिं अज्ञ में नहिं ध्यान में नहिं करम-कुल-भेद में ॥

नहिं भारत में नहिं रमाइव, नहिं मनु में नहिं वेद में ।

नहिं धारे में नहिं कुमति में नहिं मर्त्य के वेद में ॥

नहिं मंदिरमें नहिं पूजा में नहिं बंध की बोर में ।

“हरीचंद्र” को बैच्यौ छु खोकर, पृथु प्रीति की बोर में ॥”

—श्रीकृष्णदास

श्रीसुनिविजी कहते हैं—

ककल-काक इव दगल छौं, निरत न देखी जाइ ।

प्रेम-कति ना की प्रबट, सब-ही-और निजाइ ॥”

—रिक्त-द्वारा



इन्हीं विरोध-पदार्थों का गुणोक्त विवेचन किया गया है, इसलिये वह "वैदिक-दर्शन" नामसे कहा जाता है।

सौंस, निसरे, क्रिया और बिसेसि—आदि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

सौंस—सौंसमें रमि रह्यो मीहन बंदकिसोर।”

—जगदीशचर

“ओ हारें है बिसरे” मीहन, ब्यठ बने ही ओर।

—गुणक-नाटक

“अरि-अरि क्रिया” न मरै पबि मूरक—

तौहू न पावत अंत।”

—कृष्णचर

“भेम तें अहिं न भीब बिसेसि।”

—प्रेमकवी

यही बात सुनियौं भी कहती हैं—

तस्माद्यसात्सवद्रुत श्रुत्वा सामानि अचिरे।

छन्दार्थसि अचिरे तस्माद्यस्तस्मादजायत ॥”

—पुरुषसूक्त

कथना—

अस्य महतो भूतस्य निम्नसितमत्तघटग्यदो—

यद्युषेद सामपेदोऽथर्थाङ्गिरसः ॥

—बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०

‘स यथाऽऽर्द्रैपाम्नेरम्यादितस्य पृथग्भूमा यिनिष्परस्येष या अथेऽस्य महतो भूतस्य निदयसितमेतत्तदम्यदा यद्युषेद सामप दोऽथर्थाङ्गिरस इतिहासः पुराणयिद्या उपनिषद्; इत्यादि। सूत्राण्य सुध्याप्यात्मानि भ्याप्यामानीष्टदुतमाशित पायितमयं च श्लोकः परब्रह्मसोकः सपानि च भूताम्यस्यैपतानि सपानि निम्नसितानि।”

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।११

श्रीकृष्णसीदासजी कहते हैं—

“हरि ध्याक्य सर्वत्र समाग ।  
प्रेम तें प्रगट होई मी जावा ॥

—भक्तोष्वाक्य

श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

“कौ चरणा करी न जाह ।  
तुम न आवत प्रेम-पत्र ह्यम कहत त्रिभ-स्तुचाह ॥  
क्या अक्य समेह की त्रिभ उर न आवत नीर ।  
वेद-स्मृति-उपनिषद् को त्रिभ रही बौद्धिग ठौर ॥  
मौन ही में कहन छाकी सुबत कोटा-बेन ।  
स्त्रेव “नागर” तुम न बौद्धि कहि न आवत बेन ॥

—नागरसमुच्चय

भारतेंद्रु वामू श्रीहरिधरजी कहते हैं—

“पिबोरी पीवे केवल प्रेम में ।  
नौहि म्यौन में नौहि ध्याम में नौहि करैम-कुल-नेम में ॥  
नहि भारत में नहि रमनहन, नहि मनु में पदि वेद में ।  
नहि शगरे में नौहि शगति में नौहि मर्तेन के भेद में ॥  
नहि मंदिरमें नहि पूजा में नहि बंट की बोर में ।  
“हरीचंद्र” बौ बौली तु कोकट पुरु प्रीति की बोर में ॥”

—चैतकुण्डरु

श्रीरसनिविन्दी कहते हैं—

ककक-आक ह्यम रगन सौ विदत न देखी जाह ।  
प्रेम-कीति वा की प्रबत सब-ही-हीर दिखाह ॥”

—उक्ति-हयट

इन्हीं विशेष-शब्दों का गुणोक्त विवेचन किया गया है, इसलिये वह "वैशेषिक-दर्शन" नामसे कहा जाता है।

सौंस, निसरे, क्रिया और बिसेरि—आदि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

'सौंस'—सौंसमें रमि रही मौहन नंदकिशोर।"

—नगरीदास

'मौ हारे है क्सरे' मौहन आहु बने ही भौर।"

—गुणक-नाक

'करि-करी क्रिया' ब मरे पधि मूरक—

सौह न पावत अंत।"

—कृष्णदास

'श्रीम तें मरिहिन बीष बिसेरि।' —देमलकी

यही बात श्रुतियों भी कहती हैं—

तस्माद्यथात्सयदुत श्रुचः सामानि जग्निरे।

उन्दाशसि जग्निरे तस्माद्यनुस्तस्मात्प्रशयत ॥"

—गुरुपदक

अथवा—

'अस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्येदो—

यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्षाङ्गिरसः ॥"

—बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०

स यथाऽऽर्चयाम्नेरभ्याहितस्य पृथग्भूमा विनिश्चरस्येयं  
या अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्येदो यजुर्वेदः सामवे  
दोऽथर्षाङ्गिरस इतिहाम्नः पुराण पिथा उपनिषद्ः दलोकः सुप्राण्य  
नुभ्याद्यानानि म्याप्यामानीष्टुतमागित पापितमयं अ सोकः  
परश्च लोकः सयाणि अ भूताम्यह्यैवैतानि सयाणि निश्चसितानि।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।११

श्रीलुछ्सीदासजी कहते हैं—

“हरि व्यापक सर्वत्र समाप्त ।

प्रेम से प्रगट होहि मैं जगत् ॥”

—अमोघाक्षर

श्रीनागपीदासजी कहते हैं—

“कभी चरवा करी न जाह ।

तुम न जातव प्रेम-पथ हम कहत जिय-सकुआह ॥

कथा भक्त्य समैह को बिन उर न जावत और ।

बैद-स्युति-अवनिपद को जिय रही नोहिप और ॥

मौन ही में कहन लक्षी सुगत खोता-बेन ।

सोच “बागार” तुम न जौगत कहि न जावत बेन ॥”

—नागरसुषय

मारुतेन्दु बानू श्रीहरिसुन्दरजी कहते हैं—

“पिबारी, पैये केवळ प्रेम में ।

नोहि ध्यान में नोहि ध्यान में नोहि करैम-कुल-बेन में ॥

नहि भारत में नहि रमइल, नहि मनु में नहि वेद में ।

नहि जगरे में नोहि सुगति में नोहि मर्त्य के मीद में ॥

नहि मंदिरमें नहि पूजा में नहि बंट्य की बोर में ।

“हरीचंद्र” बी बैच्यौ तु बोळव एक प्रीति की बोर में ॥”

—कैसुदरक

श्रीरसनिधिजी कहते हैं—

अकल-अकल हम उगत सौं चिहत न देखी जाह ।

प्रेम-कॉति वा की प्रबट, सब-ही-और दिखाह ॥”

—रसिक-हबरा

इन्हीं विशेष-पदार्थों का गुणोक्त विवेचन किया गया है, इसलिये वह "वैशेषिक-दशना" नामसे कहा जाता है।

सौप्त, निसरे, किया और विसेक्ति—आदि सरस-शब्दोंके सुन्दर प्रयोग।

"सौप्त" "सौप्तमे रमि रगौ मोंहन मंत्रविस्तोर।"

—अग्नीवश

सौ हारें है निसरे" मोंहन आठ बड़े ही भोर।"

—गुणाड-नाम्क

"अरि-अरि किया" न मरै पति शूरत—

तौह न पावत अंत।"

—कठनपत्र

धेम तें नाहिन बीह 'विसेक्ति।" —वेमठली

यही बात श्रुतिपौ भी कहती हैं—

तस्माद्यहात्सर्वद्रुत श्रुत्यः सामानि जसिरे।

छन्द्याधिसि जसिरे तस्माद्यस्तस्माद्भाषत ॥"

—गुरुपदक

अथवा—

'अस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यहस्येदो—

यशुपेदः सामयेदोऽयथाहिरसः ॥"

—इदशराम्यधोपनिषद् २।४।१०

। न यथाऽऽत्रैषामेत्स्याहितस्य पृथग्भूमा विनिश्चरस्येय या अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यहस्येदो यशुपेदः सामयेदोऽयथाहिरस इतिहासः पुराण विद्या उपनिषद् इत्येकया सूत्राण्यनुप्याषयान्निष्याद्याभानीषद्द्रुतमानित पापितमर्वं च श्लोकः परद्यश्लोकः सयापि च भूतास्यस्यैवतानि स्यान्नि निश्चसितानि।"

—इदशराम्यधोपनिषद् ४।५।११

श्रीहनुमतीदासजी कहते हैं—

“हरि ध्यापक सर्वत्र समक ।  
प्रेम तं प्राप्त होहि मैं जगत् ॥

—मयोभावाच

श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

“कौ बरवा करी न चाह ।

तुम न जानत प्रेम-यय हम कहत किय-स्तुचाह ॥  
क्या बन्धन सबैह की किल जर न जानत बीर ।  
बैह-स्तुति-उपनिषद् को किय रही बौहिग और ८  
मौन ही में कहन ताकी सुकत छोटा-बैब ।  
सोच “बागार” तुम न बौकत कहि न जानत बेब ॥”

—नागरसुबब

शारसेन्दु बानू श्रीहरिचन्द्रजी कहते हैं—

“विद्यारो, वैदे केवक प्रेम में ।

बौहि ज्यौन में बौहि ज्यौन में नौहि करैम-सुक-नेम में ॥  
नहि भारत में नहि रमाहन, नहि मनु में नहि बैर में ।  
नहि झगरे में नौहि लुगाति में नौहि मर्तब के मीर में ॥  
नहि मंदिरमें नहि पूजा में नहि बंट की खोर में ।  
“हरीचन्द्र” बी बौची तु छोळत पूरु प्रीति की खोर में ॥”

—सेन्दुबानू

श्रीरसनिधिजी कहते हैं—

ककक-आक इन टगन सों विदत न देखी चाह ।  
प्रेम-कांति वा की प्रपट, सब-ही-बीर दिखाह ॥”

—रसिक-हकार

दृष्टि—देखना, लक्ष्यलेखन, निरीक्षण, बुद्धि, विवेक, विचार, मजर, निगह आदि ।

“दृष्टि”र्थात्तेऽद्विष्य दर्शने ।”

—अमरकोश ३।४।४१

वक्ष्य—

“बहुर्बन्धममोवृत्तिविद्युत्कारूपमासिद्ध

“दृष्टि” रित्युच्यते द्रष्टा दृष्टेः कर्त्तन्ति लौकिकौ” ३”

तरनि—उद्ध तरणि, अर्थात् सूर्य, रवि, भानु, दिवाकर

“धुमनि” स्तत्त्व”मिथश्चिमानुर्विरोधना ।”

—अमरकोश १।३।३१

चंद्र—चंद्रमा, चंद्र, चंद्र, सुधांतु, विषु, निशापति

आदि ।

‘हिमांशुश्चन्द्रमा ‘चन्द्र’ इत्युक्तमुपबन्धना ।”

—अमरकोश १।३।१५

बद्धते हैं—चंद्र वा चंद्रमा आफ्नारामे चमकनेवाला एक उपग्रह है, जो कि एक महीनेमें पृथ्वीकी प्रदक्षिणा एक बार करता है और सूर्यसे प्रकाश पाकर चमकता है । चंद्रमा पृथ्वीके अन्य नक्षत्रोंकी बजाय निरक्त है । यह पृथ्वीसे २०८८०० मीलकी दूरीपर है, और इसका व्यास है २१६२ मील तथा इसे पृथ्वीके चारों ओर

१ महीने में एक बार चंद्रमा के साथ एक साथ घूमनेपर ही अर्धचंद्र की स्थिति बनेगी । बस्तु—दृष्टि, अर्थात् प्रत्यक्ष चीज, देखी हुई वस्तु आदि ।

घूमनेमें सत्ताईस दिन, सात घंटे सैकालीस मिनट और साढ़े ग्याह्र सेकेंड लगाते हैं, लेकिन व्यवहारमें जो महीना जाता है वह ठन्तीस दिन ग्याह्र घंटे चौवालीस मिनट और सत्ताईस सेकेंडका होता है। चन्द्रमाके परिक्रमणकी गतिमें सूर्यकी क्रियासे विशेष अन्तर पड़ता रहता है। जब वह अपने अक्षपर महीनमें एक बारके हिसाबसे घूमता है तब प्रायः उसका एक ही पार्श्व पृथ्वीकी तरफ रहता है। इस बिच्छवणताको देखकर ही कुछ लोगोंको यह भ्रम हुआ था कि यह अक्षपर नहीं घूमता। चन्द्र-मण्डलमें बहुत धम्ब दिखलायी देते हैं, जिसे पुराणानुसार बरलंक, पृथ्वीकी छाया, काळा दाग, हिरन आदि कहते हैं। यूरोपीय विज्ञानोंका इन धम्बोंके विषयमें कथन है—ये धम्बे नहीं, अपितु पर्वत, घाटी, गर्भ और आबमुखी पर्वत आदि हैं। चन्द्रमामें वायु-मण्डल नहीं जान पड़ता और न बादल वा जलधरीके कोई चिह्न दिखलायी पड़ते हैं। उसमें गरमी भी कम दिखलायी देती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियोंके अभिमतसे चन्द्र एक मण्ड है। मास्कराचाय कहते हैं—यह जलमय है और उसमें निजका सेज नहीं है। उसका मितना भाग सूर्यके सामने पड़ता है, बस उसना ही दिखलायी पड़ता है और बही चमकता है। जिस दिन चन्द्रका निचला भाग जो कि हमलोगोंकी, अर्थात् पृथ्वीकी ओर रहता है, उसपर सूर्यका प्रकाश न पड़नेसे अंधेरा होनेके कारण अमावास्याका दिन मना जाता है। ऐसा तभी होता है जब कि सूर्य और चन्द्र एक ही राशिपर यानी सम-सूत्रमें होते हैं। यह सूर्यकी सीधसे—सम-सूत्रपत्तसे बहुत शीघ्र पूर्वकी ओर हट जाता है जिससे उसकी



एक-एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। यह चिंतना ही इस सीधसे हटता जायगा उतना ही उसका अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीयाके दिन चन्द्रके पश्चिमांशपर सूर्यका चिंतना प्रकाश पड़ता है उसका उतना ही भाग प्रकाशित दिखल्यपी पड़ता है। सूर्य-सिद्धान्तानुसार चन्द्रमा जब सूर्यकी सीधसे छटी राशिपर चला जाता है तब उसका समस्त आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमाका पूरा चौर दिखल्यपी पड़ने लगता है। पूर्णिमाके अनंतर म्यो-म्यो वह बढ़ता जाता है त्यो-त्यो ही उसका अंतर सूर्यकी सीधसे कम होता जाता है, अर्थात् वह सूर्यकी सीधके आरंभ होता है और उसका सूर्यकी सीधमें आनेके कारण प्रकाशित भाग क्रमशः अन्धकारमें पड़ता जाता है। अनुपातक मसानुसार उक्त प्रकाशित और अप्रकाशित भागोंके इस हास और वृद्धिका हिसाब जाना जा सकता है। यही मन आय-भद्र, धीपति, ज्ञानराज, छल्ल और ब्रह्मगुप्त आदि प्राचीन म्यातिरियोंका भी है। चन्द्रमाके घम्बोंके प्रति इन महानुभावोंन कुछ नहीं कहा, यहाँतक कि सूर्य-सिद्धान्त, सिद्धान्त-शिरामणि और गृहसंहिता आदि भी इन घम्बोंके प्रति चुप हैं।

पुराणानुसार चन्द्र समुद्र-मन्थन-द्वारा निकले हुए प्रसिद्ध चीन्ह रत्नोंमेंसे एक उन हैं और उसकी गिनती देवताओंमें की जाती है। चन्द्रमाके प्रति पुराणोंका रूप है—समुद्र-मन्थनके अन्तमें जब अमृत निकला तब रुद्र-देव उसे टिन ले गया, तदुपरान्त विष्णु-भगवान्ने मोहिनी स्वरूप-द्वारा राक्षसोंसे उसे पुनः लपट सम्प्रीतेके

साथ पहिले देवताओंको अमृत पिबने लगे । अस्तु, चंद्रमाके पास बैठकर और देवताओं-जैसा बेश बनाकर एक राक्षसने चन्द्रमाके साथ अमृत पी लिया । यह वृत्तान्त चन्द्रमाको किसी प्रकार मालूम हो गया कि यह देवता नहीं अपितु राक्षस है—असुर है और उसने अमृत पिजाते हुए मोहिनी-स्वरूपसे यह भेद प्रकट कर दिया । मोहिनी-स्वरूप विष्णु मगवान्ने सुदर्शन चक्र ( एक हथियार-विशेष ) से उस असुरके दो कण्ठ कर लिये जो कि राहु और केतुके रूपमें परिणत हो गये । इस वैर-विरोधके कारण ही राहु ग्रहणके समय चन्द्रमाको प्रसा करता है और उदर—पेट न होनेके कारण उसे हजम नहीं कर पाता और वह ( चन्द्र ) बाहर निकल आता है । चन्द्र-धर्मोंके प्रति जैसा कि पूर्वमें कहा गया है विभिन्न मत हैं । कोई इसे दक्षप्रजापति-द्वारा पाये गये यक्ष्मा-रूप शापको शांति-मिथित गोममें लिया हुआ हिरण्य मत्स्यते हैं, तां कोई इसे गुरुफणीगमनक कारण गुरु बृहस्पति-द्वारा दिये गये शापका फलरूप कण्डा दाग बताव्यते हैं और कोई इसे अहिण्याके सतीत्व-भंग करनेवाले देवराज इन्द्रके सतीत्व-भंगमें सहायता देनेपर क्रोधावेशमें गौतम ऋषिद्वारा मारे गये कर्मदण्ड और मृग चर्मका दाग बताव्यते हैं । इससे इसके नामोंमें भी वृद्धि हो गयी, जैसे—मृगलाञ्जन, राक्षसी-पति हरिणाह, दोषाकर आदि-आदि ।

चन्द्र, कवियोंकी भी अरुण उद्धानोंका, बिच पुरानेवाक्या घौमान रहा है । संस्कृतसे लेकर तमाम भाषाओंके कवि-कोविदोंने चन्द्र पर, उसके धर्मोंपर, इन निरंकुशों ( कवि ) न बड़-बड़ पुन्नाहू

बोचे हैं, समीन-आसमान एक कर लिया है—तुफान वर्षा कर दिया है । तपमा-उत्पन्नादि अर्कवरोसे लङ्कृत निब-निब भयाओंमें बह समूह मिहाये हैं कि कुछ कहा नहीं जाया, जैसे—

“ततः कुमुदनाथेन कमिनीगणपातुना ।  
 मवानन्दम खत्रेण माहेद्री विगलंफुता ॥”  
 विनष्टीय तरंगार्मः समुद्रः फेमचदनम् ।  
 नदादाय करैरिबुलिपनीय विगगताः ॥”  
 भाष्यशयापीसितपुङ्गरीक  
 शापोपलं मम्मयसायकानाम् ।  
 पश्योदितं शारदमयुजाक्षि  
 सत्पांगताकबुफमिन्बुविबम् ॥  
 धीधीषु धीधीषु मिव्यासिनीना  
 मुखाणि सर्वाक्ष्य द्रुचिसितानि ।  
 जालेषु जालेषु करं प्रसार्य  
 सापण्यभिस्तामदनीय खद्रः ॥

‘नयबुबुन्मचर्षिका रजम्या गगतागोक्तरो प्रबालपतिः ।  
 मणिकुंतलता क्षरस्य मम्ये शशिनः प्रापमि ॥ मयूखलम्पा ॥”  
 “शांकगघननुपदपार्थनी बुकुमाष्टबुयश्चेरकाहृतिः ।  
 सुष्यत कमदिमीभिरुन्नमम्यघ काशकरसीत्ताप शानी ॥  
 ‘प्रद्विन्मर्मपरमाकलयन्करैस्मृदितपेकजकाशापयाभर ।  
 विक्रमदुत्पलमेप्रयिन्प्रकितः सगि मिशां सरसीबुद्धत पिचुः ॥  
 प्यदतच्छत्रांतजलदलरसीमं प्रदुदन  
 तदायष्टे साकाः शानक इति नो मा प्रति तथा ।  
 भटं निबुं मम्ये त्पदरिपिरदाभ्रांततदणी  
 कदाशोहदापानप्रप्यकिणकलकाकितनुम् ॥

अकं केऽपि दाशकिरे मलनिघेः पकं परे मे निरे

सारंग कतिविष्य सजगदिरे भूमेऽथ विष परे ।

हंवी यहि तैर्द्रीनीलशकलदयामं वरीहृदयते

तन्मन्ये रविभीतमन्धतमस कुक्षिस्वमालक्ष्यते ॥”\*

पश्य चंद्रमुखी चंद्रमडल ध्योममार्गसरसीसरोदहम् ।

यामिनीयुवतिर्ज्वलकुण्डल भारमार्गणानिर्घर्षणोत्पलम् ॥”

अरिपुत्रीहृष्यसुवर्णनिधिध्रमान्—

किमु विधुं प्रसते स विधुंतुवः ।

नियतितं यवने कथमन्यथा—

यसिक्करभनिर्भ निजमुज्झति ॥”

‘कुठ करे गुठमेकमयोधन

विदिरितो मुक्कर च कुठप्य मे ।

यिशाति तत्रयदैव विधुस्तवा—

सक्षि । सुखादहितं सहितं द्रुतम् ॥

● संस्कृतश्री इत अक्षरर गोस्वामी तुम्हीदासजीश्री से मुमधुर  
सृष्टिर्वां बरपस याद आ जाती हैं जैसे—

‘अहं प्रमु तति मई मेवकतार्ह । अरु अह निब-निब-मति भारं ॥

अह सुप्रीव सुनहुं रगुयार्ह । तति मई प्रगट मूमि के शार्ह ॥

मारणो राहु सखिर्है अह कोई । उर मई परी स्वोम्ता छेर ॥

कोठ अह अविधि रति-मुल अन्हा । सार-माग सति कर हरि अन्हा ॥

छिद्र छे प्रगट इहु उर मौही । तिहि मग बलिय नम-परछोही ॥

प्रमु अह गरल-बंधु तसिक्केर । मति प्रियतम उर दीन्हा कसेर ॥

दिय-समुत अर-निअर प्सायी । भारत विरुद्ध नर-नापी ॥”

अह इनुमंत सुनहुं प्रमु, सति तुम्हार प्रिय-शास ।

तव मूर्ति विधु-उर बली, छेर स्वोम्ता भास ॥

‘ छिन्नपविप्रसमाहितपातक-  
 प्रभवकुष्ठसिमीकृतविग्रहः ।  
 यिरहिषीवदनेषुमिघांसया  
 स्फुरति रादुरय न निशाकरः ॥ ’\*

श्रीसीतलक्ष्मीने भी इस मन्त्र-भाषपर एक बड़ी खन्वी उक्ति कही है, जैसे—

“श्री शरद-वंश की औगद छिन्नी—  
 स्तेरै था सब-गुण बरा हुआ ।  
 शोभा की कमल-ज्योति-बिहसल—  
 रस भीजा-दाहिम-जटा हुआ ॥  
 हतने में प्रसन्न समे केव—  
 कछि कपाक बड़ा अटपटा हुआ ।  
 जलनी से नम नम से जलनी  
 उज्ज्वै नगु बरका बरा हुआ ॥

—श्वनदक्षम

जब तनिक “श्रवभाषा”-कवियोंकी सूझ-बूझ भी देखें, उन्होंने क्या-क्या उद्दानें उकी हैं, जैसे—

“कति ही जलद-वंश चंद्रिका मुपाकर की  
 पुंडरीक पथिक-विषा की कतिहूक है ।

\* श्रीहरिजी उक्त उक्तम उक्तिपर किछी श्रवभाषा-कविकी यह कुरसस्युक्ति किछनी सुन्दर है। हेस्तिय न शिषे—

“अँगन में मत्त-शोरे री शोभे,—  
 मैंन मुनी श्यम प्रहँन परीते ।  
 छे मुन-वंद चंद्रहू से निरमल—  
 चं छौदि प्यारी छेदि गरीये ॥”

—अँगन में मत्त -

कदम 'किसोर' निम्न-बारि के द्विपु की मनि  
 दरसमी कुँवरि-किसोरी दिन-बूक है ॥  
 बर-हरै न बर-परब की बुद्ध स्वप्न,  
 सरद सुहृदिरा की मुक्त मुक्त भूक है ।  
 तारकान-ककित मैहरार अब बुक्ति पुष्पौ  
 अंतरिष्क ककप-तरोवर की बूक है ॥३॥  
 'प्यत्न-नार्यद' वै करि हंकर-बंध—  
 पिक-बौव बागें-भागें होत मन भायौ है ।  
 मन्त "कविदू" लारे सुमद अघोर खोर—  
 पैदर अघोर-मोर सोर सरसाबी है ॥  
 तोहि तम जमा-जमा छेकर अदगा बर  
 मयक-हरीक मौन-गद पैठ बाबी है ।  
 यमू-बंकिर्कॉन के पसारे अकळेस-नख—  
 तेसु भाहु बौतम-नोस बनि भायौ है ॥  
 'कदत' निसाकर दिवाकर सीहीठि परबौ—  
 अंधकार से लौ पृष्ठ पक्ष में पक्षयौ है ।  
 धोर-भरौ जीमि के विहृंगन में सोर मच्छी  
 अकवि-अकवस में प्रकस सरसयौ है ॥

\* संदेहात्मकारसे अस्मृष्ट कुछ ऐसी ही बनूठी उक्ति महाकवि  
 वैश्यादासने भी करी है बया—

'पृष्ठन की तुम गेद नई, सँभि सची बनु डारि बई ।  
 दरफन सौ सति भीरति की आरेंन क्रौम-महीपति कौ ॥  
 मोंखिन की सुति मूफन मनो, भूखि गर्द रवि की तिय मनो ।  
 देव-नही-कद रैम कइयो, मौनहुँ भूखि सरोब रयो ।  
 रैन किषो नम-सिंधु छते देव-नही-कद-इस बसे ॥'

—आदि-आदि ।

परी बरकतक बाक-बमू कुरंगिनी में—

“नगर” तप्त तैज मत्र पर भायी है ।

बंदरों न होदि यह मीनिनी के जीतिवे की

मैत-महारपी बह-बह छै बरकतौ है ॥”

“हरत किमोर जो बधोरैत को ताप किछ—

कुमुद ककप सुकलीकर सुछद मौ ।

मीनिनीव हूँ के हिय-दरप-दकित पर

कंदरप-ककित कर अति अग-रंज मौ ॥

मुदित ककक-अबली कर तिमिर—

कबली कर दिसौव-अबली कर अमंज मौ ।

जानद अमित कर कोक-प्रमुदित कर

कोक अमुदित कर संमुदित चंद मौ ॥”

संज्ञा

“विय-द्वैतन मानों रम्य उल्लसौ सुप्र कुमकुम-रजित आगत है ।

रजबी-उर को अनुराग हुई किधों मूरतर्चत विरागत है ॥

किधों पूरप-चंद सुछद अदोत “मुकुंद” सचै सुप्र सजगत है ।

किधों प्राची-दिसा नव बाक के भाक गुकल की किनु विरागत है ॥

“सिधारे दिन बारि पहार समेत तभी अति दुस्तह एवम मौ ।

मई मैली महा “रघुनाथ” करै बह उर बपार के रूपन सौं ॥

एक छीके कगाइ न जाइ लगी इमि भूमि रही भरि वृत्तन सौं ।

छोई छीपठ सौ सति’ आगत है द्विनि भीजी पिपूष मपूषन सौं ॥

चंद चरक—

“बाद चंद्रिका मिथु में सीतक म्वरुठ सनेत्र ।

सरी सेम भै सो भित्री हिरवाधिष्ठिन-नैत्र ॥”

८

“कोट करै है कडक, कोट करै मिथु-चंकर,

कोट करै प्रया है तमोगुन के भास की ।

खेड करे मृग-मनु, खेड करे राहु-रव,  
 खेड करे नीलि-गिरि सोमा भास-वास की ॥  
 "मंत्रव" मू मेरे जौन बंधुमा की छोकि विधि—

बैज बौही समता जो राधा-मुख कास की ।  
 तादिन तें जगती छीव भई है जवाकर की  
 पार-पार हीकत है भीछमा अन्वयस की ॥

सुंदर बदन तेरी सोमा की सर्वेन राधे ?  
 मर्दन बतापौ अरि-बर्देन बणाइ कैं ।  
 ता की कधि कैं कैं उदित मयो रति-पति  
 राहौ मछि-मूह निज कर बाराइ कैं ॥  
 कई कधि बितामनि" तादिनिहि-चोर जामि-  
 रई है सबा मु पाक-सासन रिसाइ कैं ।  
 पातें सदाँ किरै अमराबली के अयस-वास  
 मुक्त है कर्क-मिसि करिक जगाइ कैं ॥३३

• कुछ ऐसी बात कवि राविवर गिस्स्य भाइने भी कही है

अमृत कौं पेचि परस्यै राजिअ के भोठन में  
 चंद्रिका-छिनारि हई देली दसनादि कौं ।  
 पोटस-कवनि-काटि बधिग फनाए वंत  
 जा कौं विद्यकि हीच पावत प्रमद कौं ॥  
 पोरैन-सकति छिन प्रायी है कवन मौरि  
 ऐसैं सब छौन स्थिौ मँदि मरनाइ कौं ।  
 'प्योर्बिंद' कहत तब कत्र में कसेव पाव;  
 चंद्र से कसेक नम-किरत किरा" कौं ॥

अवस्था—

"अगमगस्त है हौन कौं, वा भौनन खैं चंद्र ।  
 ताही तें पून मर्ये, मंद परत छम चंद्र ॥



पूरव ईसित-वनिता की मुक्त-पत्र तामे  
 रचना छबिर बर सुगाम-रंग की ।  
 बौधी गम-सरवर कृष्णी ई कर्मक ठामे-  
 मेचक-दभा ई बली भवकी उमंग की ॥  
 नीरीं कवि श्येविन्द उपमा भेवेक कहीं  
 "बंदन" बखामें पुरु इहि विधि रंग की ।  
 बिरही बिरखि पाहि बौछन बिसौस वा लें-  
 शानिक दिखत मारीं धारसी अर्बग की ॥

### सवैया

'विच ब्रह्म-कुमार की चक कि या मधि रागति कबिमा रेंनु कगी ।  
 छकिंके सुर-मीर पिपूष की कीच कि बौहन पीठि की छौंइ गगी ॥  
 कवि "अकम" रेंदि लेंबोगिनि ई विच के सुम अंक सुरंग पगी ।  
 गपु अवेक बूकि बडोरेंन के सु मकीं पुतरीन की पौंठि अगी ॥"

### दोहा

"बदि-बदि मुक्त-समता अपुं बदि अयो निसंक ।  
 ता लें अंक मयंक ही पाकी अंक-अर्बक ॥"

### चतुोपाठम—

'पूरे मठिमंद बंद, षिग ई अनंद ठौी  
 को वे बिरदिनि जरि आव लेंरे ताप से ।  
 दू लीं होपाकर, बूजें भरे ई कडक डर  
 लीसों कगाबी-संग बेकबी सिर छाव से ॥  
 कही "मतिराम" इल अर्धिर अर्धोन ठौी  
 बाएनी की बासी भयसी लवि के प्रताप से ।  
 बौंधीगबी प्रप्यी गपौ, विपी गबी लारी भकी  
 बापुरी ममुइ ली कटल ही के बाप से ॥"

सिद्ध की अपत्य-सुत सिद्ध-तन्मा की बंधु  
 मंदिर भग्नु सुभ सुंदर सुबाह के ।  
 कौ 'पद्माकर' गिरीस के बन्नी है स्तिस  
 तारन की हंस कुक-कर्रन-कॅन्दाई के ॥  
 हाक ही तू विरह-विचारी ब्रज-बाक ही तै  
 ज्वाक से अग्रकत सुबाक सी लुन्दाई के ।  
 ऐरे मति-मैद-बैद अकत न तोहि काज  
 है के द्विजराज काज करत कसाई के ॥१॥  
 अकरत मिर्होम-कौम कौम-मुक बाफी भयो  
 विधि सब बंग लौम कोइक बनाई तू ।

● पद्माकरजीके इस भष्म-मालको असोप्यनरेस महाराज मानसिंह  
 अपना नाम "द्विजदेव" बने मी अपनाया है जैसे—

स्तौस ही तै भावत हकवत क्यारी-कर  
 पाइ के कुतगत ह्योतु-हुलबाह की ।  
 निपट निरंक है तबी तै कुक-कौनि कौनि  
 भोगुन अनेक नैकु तूसे न बाप मर्ई की ॥  
 ऐरे मतिमद-बैद, अकत न काज तोहि  
 देखि हुल बापुरे विभोग-समुबाई की ।  
 है के सुषा-कौम कौम-निप को बगारै मूड,  
 है के द्विजराज, काज करत कसाई की ॥१॥

कुछ ऐसा ही किसी संस्कृत-कविने मी कहा है जैसे—

‘मृतिर्दुःखसमुद्रतो मत्कत श्रीकौस्तुभो सोऽरो  
 लोहर्द कुमदकरेयु किरण पीयूषधराकिर ।  
 स्वर्षा ते श्वनाम्बुबैर्मुगाहृषां तस्त्वापुचूडामने  
 इहो पन्त्र ! कथं न सिद्धसि ममि ब्याजमुच्ये सेषि ॥’

पौहव जैमम धी सुजग-धम संग सर्ज  
 बंधन जवीर-पीर जानें का पराई तू व  
 "ज्याक कवि" काम हे मजोर मजमप चारे,  
 विनु की नसीया कर्षो न होदि तुज-नाई तू ।  
 मिशु-सिर पाइ सिधु-नैद कहि बाइ  
 द्विजराज-पद पाइ इइ होत कर्षोकसाई तू ॥"  
 बिरह की जारी मजमप की मरोर मारी  
 जपका बिचारी जानें मारग मकाई की ॥  
 जति सुकुमार ऐसी कौल-बैती कुक-बधू  
 गमों गुन वैच-बधू जाकी सुमनाई की ॥  
 ऐसी बिरहई बई इई तिनई चोसीयो—  
 मितारे उपाइ धी कही तें पतिताइ की ।  
 माई वैदराज की अपृथताई नौम पाइ  
 बौमन कदाइ काम करत कसाई की ॥"  
 "मूस मकबज के मसूक जरि जैवो मय—  
 गुन-गारि जैवो या सुगोब सरमाई का ।  
 कवि जैवो भूतक तें कैतकी-कमक पूक  
 हूत्रियो कठक जकि-कुक-मुगनाई की ॥  
 "प्योतीरौम" सुत्रि मजोर माकनी की हुओ  
 नूओ जमि कास बिरही-जन ईसाई की ।  
 राजहंभ-बलन के बंस निरबंस हुओ  
 भंग मिदि जैवो या कमागिध-कमाई की ॥"

सुधिया

सेन-पछार अगार भण, अचणी जनु पारद-मोदि बन्धरी ।  
 होत ही इंदु उरोम कसी बई जोर तें मरे पछोर को मारी ॥  
 पून्ही कसोद कसी मिइकी अचणी अकि की बनि वै मिरधारी ।  
 कोवि कें बंदु निर्याम के मोंन वै मारी मिशोंन तें तेग जिधारी ॥"

गुणोत्तीत—गुण+उत्तीत, गुणोंसे परे, पृथक्, निर्गुण । गुणों के प्रभावसे पृथक् । त्रिगुणात्मिकासे निर्मित ।

वेदान्तवादी जिसे माया कहते हैं उसीको सांख्यवाले त्रिगुणात्मक प्रकृति कहते हैं, अतः त्रिगुणात्तीत होना ही गुणोंसे परे होना ही, मायासे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त होना, पहिचान ज्ञान कहा है । इसीको 'ब्राह्मी अवस्था' भी कहते हैं, जैसे—

‘प्रकृशं च प्रकृतिं च मोहमेष च पाण्डव ।  
न द्वेषि न सप्रवृत्तानि न निवृत्तानि चक्षति ॥  
उदासीनत्वदासीनो गुणैर्यो न विधाह्वयते ।  
गुणा वर्तन्त इत्येष वोऽधतिष्ठति मेहते ॥’

× × × ×

‘समदुःखसुखः स्वल्पः समलोषाश्मदाश्नः ।  
मुस्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्द्रारमसंस्तुतिः ॥  
मान्यपमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो ।  
सधारम्भपरित्यागी गुणात्तीतः स उच्यते ॥’

—भीमदृग्मन्त्रगीता १७ । २१ २१ २४, २५

—अर्थात् हे पाण्डव ! प्रकृश, प्रकृति और मोह ( क्रमसे सत्त्व, रज, तम आदि गुणोंके फल अथवा फल ) होनेसे जो उनका द्वेष नहीं करता और प्राप्त न हों तो उनकी आकांक्षा भी नहीं रखता, जो उदासीन-सा रहता है, अर्थात् गुण जिसे चम-विचल नहीं कर सकते, वह इतना ही मानकर स्थिर रहता है कि गुण अपना-अपना काम करते हैं, मुझसे उनका क्या प्रयोजन । जो डिग्रा नहीं—निकर नहीं पाता, सुख-दुःख जिसे एक-से ही हैं । मिठी, फरफ और

स्तेना जिसे सम्मान है, प्रिय-अप्रिय, मित्र-स्तुति भी जिसे सम्मान है और जो सदा भेदसे मुक्त है। मान-अपमान का मित्र और शत्रु जिसे तुल्य हैं—बराबर हैं और जिसके सब उद्योग (कर्म) छूट गये हैं, उसे 'शुणातीत' कहते हैं।

भगवौन—यद्-ऐश्वर्य-मुक्त, मारुणा । पठ ( १ ) ऐश्वर्य,  
यस—

‘‘वेभ्यर्षस्य समग्रस्य धर्मस्य यदासः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैष वप्यां भग इतीरणा ॥’’

—विष्णुपुराण ६ / ५ / ७४

कर्ण्डि सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यज्ञ, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदिसे संयुक्त, भगवान्, अपना—

‘‘उत्पत्तिं प्रसव्यं चैव भूतामामागतिं गतिम् ।

येति विद्यामविद्यां च स याच्यो भगवानिति ॥’’

—विष्णुपुराण ६ / ५ / ७८

अर्थात् उत्पत्ति, प्रसव, प्राणियोंका जन्म-जन्म, विद्या और अविद्यासे ज्ञाननशास्त्र 'याचान्' कह्ये जाते हैं। अथवा—

‘‘भर्गुश्री योनियैवैच्छाज्ञानवैराग्यकीर्त्तिभुः ।

माहात्म्यैश्चयद्यन्त्रेषु धर्मो माह च शरणी ॥’’

—मेदिनीशेखर

इति, कर्मि, शत्रु, गुर्नोतीत और भगवौन इत्येके सप्त प्रयोग ।

‘‘यदि दुष्टा अगतिं नर नार्ह ॥ —श्रीमूर

‘‘येष्वन्ये ‘वतनि-जनया तीर ।’’ —गणेशभक्त

‘‘यद्यद् निष्ठाया केशो मया मेरी ।’’ —श्रीमूर

‘‘गुर्नोतीत भगवौन कदाचै ।’’ —मयूर इति

२४

गोपी-वचन

दुरार्द्र—छिय रहा । दिव्य-दृष्टि ( दृष्टि )—अनौचित्य ज्ञान-संपन्न । सर्वाङ्ग । त्रिसन्वास ( विश्वास )—प्रतीति, धारणा, भयोसा । यथा—

समी विभ्रभविश्वासी ।

—अमरकोश २।८।२३

विश्वास, अर्थात् वह धारणा जो कि मनमें किसी व्यक्ति-विशेषके प्रति उसके सद्भाव, हितैषिता, सत्यता, दृढ़ता अथवा किसी सिद्धांत आदिकी सत्यता वा उत्तमताका ज्ञान होनेके कारण होती है । अथवा किसीके गुण आदिका निश्चय होनेपर उसके प्रति उत्पन्न होनेवाले मनके भावको—प्रतीतिके विश्वास कहते हैं ।

कूप—कुर्छों, इनारा आदि " ।

‘पुस्त्येषाऽऽम्बुः प्रहिः कूप उद्वपानं तु पुंसि वा ।’

—अमरकोश १।१।२५

दुरार्द्र, दिव्य-दृष्टि, त्रिसन्वास और कूपक सरस प्रयोग ।

‘राधे परम सुज्जन दुरार्द्रं किल मो बंसी ॥’

—रसिकवाच

‘अहं न देव्यौ दिव्य-दृष्टि-विभु कोटिक करी बपार्द्रं ।’

—परमानन्ददास

‘सुनि राधे नवतागरी हो हमन करें त्रिसन्वास ।’

—हरिराम

‘चितुङ्क—‘कूप’ की का कहौ सोमा ।

—कृष्णदास

श्रीनन्ददासजीके इस उच्चम-भावपर म्भरतेन्दु बामू हरिचंद्रजीके भी एक सरस सूक्ति है, जैसे—

“बहिष्ते ह्व वास्तव की प्रेम ।  
 छोरी हम सों कौम बछे गहि मरी कृपों करि नैम व  
 सब की मूरति प्राणप्राय की भौषिण में न समाह ।  
 तब कों सब बह पीतम-प्यारो कीस सपदि कस्यह ॥  
 मई प्रसा' सब मूरत मीसैं म्पान-गकर बकाह ।  
 तमक चोट के कागठ डकठ हैं रोह-रोह करि हाह ॥  
 जो तुम बह-चोट बिहि क्यगी रोह लकी बयों प्राण ।  
 “हरीचंद्र’ हौसी बाहो ई करतों म्पान-बिघौन ॥”

—बैतकुण्डल

कवि रसप्रपञ्ची कहते हैं—

“कसि गई कसिक्र में बहम-सरोज वास  
 कसि गई ओटम मिझई थोड सारे की ।  
 तसि गई रस-रीति रसे से रोम-रोम हैंसे—  
 भावै कहर सहर जमें करे की ॥  
 तसि गई मुगति पृथै मनझी अरैड संग,  
 ऊपब बिचारि देगी विपव दिखरे की ।  
 कसि गई ‘रसरप’ कौन में मुबंसी-लौन  
 बमि गई भौषिण मुरति बंसीबारे की ॥”

—उत्तरार्धमण्डक

२५

उद्धव-यचन

भक्ति—परमात्मामें परम अनुराग । यथा—

सा परानुरक्तिरीभ्यरं ।”

—एकविंशत्यधिक्याय ७ । २

मऊ-मकर श्रीनारदजीने अपने मक्ति-सूत्रमें—फिस्ती भी पदार्थसे गाढ़ प्रेम रखनेको 'मक्ति' कहा है, जैसे—

सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।”●

—नारदमक्तिसूत्र-२

मक्तिके सबसे प्रथम दो भेद—रागस्मिका,† जिसे 'अहंत्वकी' भी कहते हैं और 'वैधी' ( स्वार्थमय, वा गौणी ) कहे जाते हैं । वैधी जिसे कि 'गौणी' भी कहा जाता है पुन तीन भेदोंमें विभाजित की गयी है, जैसे—

‘ गौणी त्रिधा गुणभेदावार्तादिभेदात् । ’

—नारदमक्तिसूत्र-५६

अर्थात् गौणीमक्ति, सात्विक, राजस और तामस तीन गुणोंसे युक्त हो सात्विकी ( पवित्र ), राजसी ( अहंमायिक ) और तामसी ( मोहरूप )—आदि तीन प्रकारकी होती है ।

● मक्ति-रसधारमक्तिपुके कथने भी—‘हृदये इह पशुपती अघोर एव स्मृत्यन्तरिक प्रेम रहता है, उनी उस्ताहित प्रेमको मक्ति कहा है ।’

† रागस्मिका 'मक्ति'की व्याख्या करते हुए श्रीराम गेस्वामीजी करते हैं—

‘अष्टे स्वस्मिको रमा परमाविष्टा भवेत् ।

कमयी वा मधेन्द्रकिः खत्र रागस्मिकेदिता ॥ ’

अर्थात् अपने प्रियमें स्वभाविक प्रेम पूर्ण आवेद्य और लम्पक्यायुक्त को मक्ति ही उसे 'रागस्मिका' मक्ति करते हैं ।



साधनाके अनुसार 'भक्ति' नौ प्रकारकी और कही जाती है, जैसे—

अथ च कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।  
अर्चनं बन्धनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥'

—भागवत ७।५।२३

जैन-ग्रन्थानुसार भक्ति, वह ज्ञान है जिसमें निरतिशय आनन्द हो—सर्वांगिय, अनन्य, प्रयाज्यम विशिष्ट और क्लिष्टाका उदय-कारक हो ।

नबधा भक्ति जैसे—कि अथवा, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्धन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदनके अनन्तर एक प्रकार की और भी कही जाती है, जिसे 'प्रमरूपा फलार्थिभ्यः' भक्ति कहते हैं ।

भक्तिमें दो विभाग हैं, एक प्रवृत्तिकर दूसरा प्रत्ययकर, अतः 'भज्' प्रवृत्ति है और 'ति' 'प्रत्यय' भज्कृत अथ है सेवा—परिचर्यारूप क्रिया और 'ति' कृत अथ है भाव, प्रेम वा रति । अतएव प्रमात्तर सेवा, अर्थात् भगवत्-प्रेम होनेके लिये जो सेवा की जाय उसे 'भक्ति' कहा जाता है । भक्ति शब्दके अर्थके साथ एक बात और भी कही जाती है, वह यह कि जिस प्रकार भक्ति शब्दके प्रवृत्ति और प्रत्ययमें सेवा और प्रेम समाया हुआ है उसी प्रकार उसमें ज्ञान भी समाया हुआ है, क्योंकि—

‘ न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दाऽनुनयादते ।’

अर्थात् ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं जो कि शब्दके रूप नहीं

रहता, अतः सेवा-संबन्धी, अत्मसंबन्धी और ब्रह्मसंबन्धी ज्ञानसहित प्रेम होनेके लिये जो विविधकी सेवा या हस्ति की जाय वह 'भक्ति' कहावती है।

नारदजीने अपने 'भक्तिसूत्र'में स्याह प्रकारकी भक्ति जैसे—  
ईश्वरके गुण महारम्यमें, उसके सुन्दरतामें, स्मरणमें, सेवामें, दास,  
मित्र और कांसा-भावमें, पुत्र-भावमें आत्म-सम्पन्नमें, लम्बकालमें और  
परम बिरह मान उसके ध्यानमें प्रेम-आदि कही है, जैसे—

'गुणमाहात्म्यासक्ति कृपासक्ति, पूजासक्ति क्षरणासक्ति  
दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति आत्म-  
निषेव्यासक्ति लम्बकालासक्ति परमविरहासक्ति,—कृपा एक-  
धाप्येकावशाधा भवति ॥' —नारदभक्तिसूत्र-८२

निहकृतम्—छुट निष्कर्म, कर्पात् कर्म-रहित, कर्मोंसे परे,  
कर्मों, जो कर्मोंमें छिप्त न हो।

भक्ति और निहकृतम् शब्दके सरस प्रयोग—

'बिना भक्ति कथों जन्म गमावै रे मूरख जन्मोंम।' —सूर

'बिन्दु मरान्न कृष्ण जो बामुदेव ही मया ॥

परमेस्वर परमप्रमा बिस्वंबर विहकर्म ॥'

—विद्यामसागर

उपनिषद् भी यही बात कहते हैं कि कर्मोंसे ईश्वर-प्राप्ति नहीं  
होती, अपितु निष्कर्म होनेसे ही प्राप्ति होती है। जैसे—

'आनाम्यहंशोषधित्यमित्यं

न बामुदेवः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

तत्ते मया साधिवेशमितोऽग्नि-

रमित्यैद्गर्भैः प्राप्तवान्वासि नित्यम् ॥'

—उपनिषद् १।२।१

मंघन्तमः प्रपदिन्ति येऽविद्यामुपासते ।  
 ततो भूय इय ते ततो य उ विद्यायाश्चरताः ॥  
 भ्रम्यद्देयाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।  
 इति शुभ्रुम धीगणां ये नस्तद्विषयसिरे ॥”

—ईशाक्योगनिसू १।१

‘परीक्ष्य लोकात्कमविताम्याङ्गणो  
 निर्वेदमायान्यस्त्यक्तः कृतेन ।  
 तद्विद्यानार्थं स गुहमवाभिगच्छेत्  
 समित्याधिः शोत्रिय प्रह्वनिष्टम् ॥”

—मुण्डकोनिसू १।२।१२

धीमद्भागवत भी यही बात कहती है—

येत्रोक्तमेव बुयांणो निःसर्गोऽर्पितमीश्वरे ।  
 नैष्कर्म्या लभते सिद्धिं रोयनाया फलभ्रुतिः ॥

—धीमद्भागवत ११।३।४४

२६

गोपी-यवन

परमान—सीमा, सन्त, सचचान विद्याम, प्रमाण । प्रमुता—  
 वाधिपूय, एरुय । खनीन—धीना बुधा मूत विरक्त, म्यार, परे,  
 गहर, सिद्धेय, लक्षण आदि ।

परमान, प्रमुता और खनीन शब्दोंके सरस प्रयोग—

येन उपनिषद् वदत ‘परमान्म ।’—भीमर

‘प्रमुता’ वाह कर्तृ इत्यतै ।—मुग्धनगम

सूरदासजी कहते हैं—

“वसिष्ठेन सव कोड समुद्राभै ।

वेसौ कोड नौहिन आछी पीतम सिरी प्रजनाथ मिछारै ॥  
 आषौ हृत्त कपट कौ बासी निरगुन-नवान बछारै ।  
 सन्त हमारे क्यौम-मनोहर नैतनि-भरि न दिखारै ॥  
 म्यौम-म्यौम कौ मरम न छारै चतुरहि चतुर कहारै ।  
 ‘सूरदासा’ सबे क्यहूक्ये अपबो ही हित भावै ॥”

भारतेन्दु बानू हरिश्चन्द्रजी कहते हैं—

औ पै ईश्वर सौची जौन ।

तौ क्यो जग कौ मगरे मूरख छुँतौ करत बलौन ॥  
 औ करता सौची ई तौ सब करअई सौच ।  
 औ छुँतौ ई ईश्वर तौ सब जग हू जानौ कौच ॥  
 औ हरि एक बई तौ माया पह बूझी ई कौन ।  
 ‘हरी चंद’ कसु मेरु मिख्यौ नहि बख्यै जिय आबौ जौन ॥”

—बैर कुगरल

२७

उद्धव-वचन

नखर—नाशकन, मंगुर, मिथ्य । वासुदेव— वासुदेवजीके पुत्र, भगवान् श्रीकृष्ण अपका—

धसति घासयति आञ्जयति सर्वमिति वा वासुः ।  
 क्षीप्यति क्षीडते विजिगीषते व्ययहरति घोसते स्तूयत  
 गच्छतीति वा वेयः वासुश्चासौ वेवश्चेति वासुदेवः ॥

—विष्णुसहस्रनाम ४ भा

अर्थात् बसते हैं, अपना वासिल यामी आनन्दित करते हैं  
 इसलिये ‘वासु’ हैं और विष्यति, अर्थात् क्षीडा करते, जीतनेकी इच्छा

करते, म्पशर करते, प्रकशित होते, मृत्ति किये जाते, इसलिये 'देव' हैं। अतः इस प्रकार जो 'वासु' भी है और 'देव' भी है उनका नाम मगशान् 'वासुदेव' है, यथा—

“अदयामि जगत्सर्वं मृत्वा सूर्य इवांशुभिः ।  
सर्वमृताधिवासव वासुदेवजनतः स्मृतः ॥

—महाभ० शा १४१।४१

अथ—

“वासनात्सर्वमृतागं वसुत्वादेवबोमितः ।  
वासुदेवस्ततो देवाः “ “ “ “ ॥”

—महाभ० उचो ७ । १

अथ—

“जगदाच्छब्दयति भाययेति वासुः स एव देव इति  
वासुदेवः ।

अर्थात् जगत्कर्म म्पसे आच्छादित करते हैं इसलिये 'वासु'  
हैं और वे वासु ही 'देव' भी हैं, इसलिये 'वासुदेव' हैं। यथा—

“अदयामि जगद्विषय मृत्वा सूर्य इवांशुभिः ।”

—विष्णुन दं० म

अथोक्तम्—शुद्ध अश्वेश्वर, त्रिसत्रा सम्य इन्द्रियोसे प्रत्यक्ष  
न हो वह अश्वेश्वर, अर्थात् मगशान् विष्णु, यथा—

“अज्ञात् इन्द्रियात् आपत भद्रञ्च प्रत्यक्षनामम् ।

अथ—

“अथो न शीघ्रत यस्मादीनास्तस्मादुपोस्तजः ।”

—महाभ० उचो० ७० । १०

कर्मो नीच, अर्थात् अने म्पसे शीघ्र न हो वे अश्वेश्वर ।

व्यय—

द्यौरक्षं पृथिवी व्याधः तयोर्धस्माद्जात्यत मध्ये वैराज्यरूपेण इति वा अधोक्षजः ।”

अर्थात् आकाश अक्ष है और पृथ्वी अध है, मन्वान् उनके मध्यमें विराट् रूपसे प्रकट होते हैं, इसलिये ‘अधोक्षज’ हैं ।

व्यय—

अधोमूते प्रत्यक् प्रदाहिते अक्षगणे जायते इति वा अधोक्षजः ।”

अर्थात् अक्षगण ( इन्द्रिय ) के अधोमुख यानी अस्तर्मुख होनेपर प्रकट होते हैं, इसलिये अधोक्षज हैं, यथा—

अधोमूते अक्षगणे प्रत्यक्प्रदाहिते ।  
जायते तस्य वै ज्ञान तेनाधोक्षजे उच्यते ॥

अन श्रीकृष्ण नारायण—

यममासी बलिष्यसी कसापतिरधोक्षजः ।”

—अमरकोश

सरूपी—सरूपी, अपने सरूपके—रूपकी । प्रापति—प्राप्ति, पाना, छाम अधिगम, उपार्जन ।

प्राप्तिर्महोत्सये स्रामेऽपि च स्त्रियाम् ।”

—मेदिनीकोश

नक्षर, वासुदेव, अधोष्ठन, सरूपी और प्रापति आदि शब्दोंके सरस प्रयोग ।

‘नक्षर सञ्ज विस्व हरि नोही । —धीस्त

“जबमे आइ बसुदेव-देवकी वासुदेव’कहिवापु ।” —कृष्णदास

“मेति-वेति कहि वेद पुकारत सुख (अबोधप्रश्न रूप)।”

—उमदास

“बुद्धि-सकपी कहीं नाहि कहु खोज बजायी।

—धीरबहाल

“प्रापति सैद्वैज खौम की होइ।

—चरनशाम

२८

### गोपी-वचन

मास्तिक—ईश्वरको न माननकाळा, अनीइबरवादी, अपना जो  
सुनि-सृष्टिकोको प्रमाण नहीं मानते, वे मिदक पावडी।

मास्तिकी वेदमिन्दका।

अपना—

मास्तिकप्रय इतप्राय ।

—मुक्तिशेखरिभू ? । ४८

निज—अपना, यथार्थ सत्ता, काम । मौनु—सूर्य, सूरज,  
नास्कर जाति—

“भानुर्देव महश्चाद्युस्तपनः सयिता रविः।”

—अमरकोश ? । ३ । ३१

पारछोड़ी—शरीर या अन्य वस्तुकी ममा, प्रतिबिम्ब, प्रतिउपमा ।

रत्नक-आमाम—हृदयीपर छाया, प्रतिबिम्बकी तरह । कणिक—  
करोड़ों । अथ—पमेदवर ।

मास्तिक, निज, मौनु पारछोड़ी, अमरक-आमाम, कर्णों की  
अथ दाम्बोके सरम प्रयेना, यथा—

“नाटिकेन” कैसी रीति क्यारूँ ।”

—गोकुलदास

क्यारूँ उबनि कमक-ककई क्यीं ही ‘नित्र’ गप् दग्यारूँ ।

—सुरदास

“इन्दी मीनु” जाहु किउ इत तें ।”

—मानदास

“सुभेन पैहो क्यक ‘परछोही’ किउ ” ।”

—अस्यदास

‘काक करी ‘ओदिक’ बपुरारूँ । —पानदास

‘अस-अस कवीं बकत हूबो ही गुरुकाये ।” —सुरदास

लाभ्यकति कहते हैं—

“पतिबो-यद्यप्य अकृपात छे मके पै होत

बतिबेन बिछ बिलेबो कसु हौंसी है ।

“अस्य” निराम बेन-सुभे कौन कोरे नैन

दिय कौ कटिब पैसो कौन बस-बासी है ॥

कबो पै सेंदेसे बौये बाही बिछ-बोर पे छे,

जापुन कटिन मये और को विस्वसी है ।

बहो कौ न क्यबे नेंकु बासुरी सुन्यबे कौनि

बिबयैगी कसु जाये जी पै कबिबासी है ॥”

—भारतनेत्रि

रत्नाकरजी कहते हैं—

“बेस बत मंजम के पीअरै परै को बब—

क्यम-कुल-कौनि-पतिबंभरूँ निवारि कुयीं ।

कौन हुन-गौरव को कंगर लगाथै बब—

सुबि-सुधि ही को भार देह करि छरि कुयीं ॥



दुरि-दुरि—छिप-छिप । खोन—खण, मौन, नमक ।  
कोरि—करोब, गिनती विशेष, संख्या विशेष, गिननेकी संख्या  
विशेष । बहुताइत—विशेषता, व्यक्तता ।

दुरि-दुरि, खोन, कोरि और बहुताइत शब्दोंका सुंदर प्रयोग ।

‘दुरि-दुरि विप-विप बति तरलबै’ — मधुरमयी

‘साई-खोन कारि-कोरि’ — १” — सुरदास

‘अतन कोरि करि ईम सग हारी’ — कुम्भनरुप

‘बहुताइत’ की प्रीति न छोरो प हो क्युर-विहारी ॥

—पदुर निररौगम

बुछ ऐसी ही बात भर्मासजी भी कहते हैं—

‘साहिब बितबी हमरी खोर ।

हम बिनबै तुम बितबी नौही तुम्हरी बिबी क्योर ॥

कोरै न को ती और भरोसो हमें मरोमी तोर ।

‘बरमदास’ बिनबै कर-ओरी साहिब कबीर बंशी-खोर ॥”

—श्रवणी संवत् २ माग

भानंदजी कहते हैं—

‘अतक दुरल बहूँखोर बौहे सौति ही की

सुरीपन-पुरे जिम्हें विप-सिम धेमी है ।

प्रकुलित होत भौंनु के उरीत केज-पुंज

ता बिन बिछरि ही ओति-आन तैमी है ॥

बौही-अनबौही खोन प्यारे पै ‘आनंदपन’

प्रीति-रीति बिषम सु रौम-रौम ईमी है ।

मोहि तुम पक तुम्हें मो मम अनेक बौहि

कदा कदा बंदहि बखोरन की कौमी है ॥”

अपना—

हम एक विहारिये हेतु गेहें तुम डेक अनेहेंनि सों सत्सो ।  
हम बौम-अपार विबाधत ज्यो तुम है बिसबास बिदे बरसो ॥  
'धन आनंद मीठ सुखम सुगोँ उब गों-गहि बचों अब मों सरसो ।  
तकि नेकु रहै त्यों दया दिग है, सु कहूँ किन दूरहूँ तें बरसो ॥

—सुबानधमार

३३

इतराह—इत्याना, धमड कतना । अधिकार—प्रमुख, एक ।

अकला—कटहीना, मारी, स्त्री, यथा—

'श्री गोविन्दबख्त बोधा मारी स्त्रीमन्तिनी बपू ।'

—धम्मरकोश २ । १ । २

इत्याह, अधिकार और अकला शब्दोंका सुंदर प्रयोग ।

'बात कहति आकिति 'इतराह' । —सुददास

अब को का 'अधिकार' छपौ तुम ~ १'

—गोविंद स्वामी

कुछ ऐसी ही बात आत्म कविने भी कही है, जैसे—

“मैंम मैंम गहैं पैह बातें निरबहैं बातें

अब उन्हें कहा परी 'महाराज' भए हैं ।

कहुक सैसो कबी मुख के सुभाड अँनि

हम मुख मारें उब बेते बुन एए हैं ॥

इहो 'अधि ध्यकम' पुरीमी पैहि-चौनि औनि

बोगी मुधि ध्याए ते बिपोगी भूकि गए हैं ।

इहो बेरी विरह बिहाक करै धर-धार

सकत अदेजे नटसक कित गए हैं ॥

—आत्मचेकि

त्यक्त कवि कहते हैं—

“विगरी व कपो कपो बिल के चंद्रोच्छ कट्टे  
 विगरी नहि सुधरै सनेह सरदेन की ।  
 आपनेई हाथ छे छे करत हवाक ठेमी  
 काप हौनहार थीं इकाक गारदेन की ॥  
 “अकुरा” कइत हों विचार यो विचारि देल्वा  
 विरली मिलै ई जो लयाइ सरदेन की ।  
 बेर प्रीति गीति जातो जैसी जहाँ मौनि कइ  
 एक लो विवाहियो ई कौम सरदेन की ॥

भारतेन्दु बानू हरिश्चंद्रजी कहते हैं—

जोष को मोत्रि करल करिपु ।  
 हम अचर्येन वै विना बात ही रोष नहि करिपु ॥  
 मधुमूदन हरि कंस-निर्बंदन, रावन-हरन सुरारि ।  
 इन नामन की सुरत करी क्यों डौलत हममीं शरि ॥  
 निचलैव की बध अब नहि वैही सोची कइत गुणक ।  
 हरीचंद्र’ मज ही ई इतने कइा किर्काने काक ॥

—विम प्रथर

३४

श्याल-अनल—मर्त्य, सौरके जहरकी श्याल, अग्नि, आग ।

यथा —

‘सृशानुः पावक्रेऽनलः ।’

—भ्रमरकोश १ । १ । ५४

विप-श्याल—विप, जहरकी श्याल, मर्त्य, यथा—

पल्लव्यांश्याल शीला - १”

—भ्रमरकोश १ । १ । ५७

ब्याल-धैरुल त्रिप-ब्याल-आदिके सरस प्रयोग ।

‘ब्याल-अर्क’ सों सब सकल अरत कबि ।

—सूरदास

‘त्रिप-ब्याल’ तें सब न उपकृत ।” —स्यमदास

श्रीनन्ददासजीने उक्त भाष श्रीमद्भागवतसे लिखा है । जैसे—

‘त्रिपञ्चाप्ययावृष्यालराससावृ  
वर्षमास्ताद्वैद्युतानस्रवृ ।

वृषमपारमजाद्विभ्यतोभया

वृषभ ते वय रक्षिता सुदुः ।

—भीमदासकृत १ । ३१ । ३

अर्थात्—

‘सवित्र-ताक सों ब्याल-अक सों

अनिक-संघ सों विष्णु-वेग सों ।

वृषम-अयोम सों विष्व-कोप सों

रिषम वृ कृषी है सहाइ हो ॥

—कन्दैयस्यस्य केदार

नन्ददासजीके—‘शोकरधैरु कर धारि करी रण्य तुम कैसै’

रूप इस उक्त अवतरणपर ‘शहीम’ की भी एक सरस सूक्ति है,

जैसे—

‘शही ‘रहीम’ करिबो बुल्ले, अजकी इहे हवाक ।

ती कपड़े कर पर भरवी शोकरधैरु शोपस्य ? ॥

—शहीम-रत्नावली

मनिरामजी कहते हैं—

“कदा ईवागिनि के विरुं, कदा घरे गिरि नीर ।

विराहाक में अरत अज वृषत कोपन-नीर ॥”

—मनिरामकृत

नददासक इस अक्षर कि—'चोरि भित छे गयो ग रस  
निभिबीकी एक सूक्ति देखिये, जैसे—

मन्मथ-बोरी सौ भरी पाकि रहवी नैरुलस ।

चोरन मन्मथी भव कबो भेदिय की मन्म-भास ॥

—रजनद्वारा

और भी—

'तब गोबरधौन मल-बन्धो गोपी-मन्मथ-बन्धु ।

अब गिरिधर यह बिरह सिर कबो न उद्वलत जगु ॥'

—रजनद्वारा

बिरोध—

अमर-गीतकी सपूर्ण प्रतियोंमें इस छंके दोनों—'व्याज-जनक  
और विन-ज्याज' को समासांत पं माना है, जिससे अर्थमें पुनरुक्ति  
शेय का जाता है । 'व्याज-जनक' और 'विन-ज्याज' एक ही पंनाके  
बोतक हैं । अब 'व्याज-जनक' समासांत पं न मान उसे पृथक्-  
पृथक् अर्थात् व्याज पृथक् और अनज पृथक् करके अर्थ परनेसे  
उत्पत्ति—घटनाक्रमकी संगति बैठेगी । अतएव व्याज, अर्थात्  
ज्याज और अनज, गामिन, विन-ज्याज—परमिय सर्पके जहरकी  
लप्टीसे नाला ली—बधा ली, इत्यम् । सुरासर्वाने भी इनको  
पृथक् पृथक् ही पगन किया है, जैसे—

'ऊचो हरि कर्पुं प्रतिगमक ।

जै रियु तुम पहिले हनि ठाँवे बहुरि भए अति सासक व

अप बह बधो निरनापन केसी ए सप मिस्त्रि मउ पैरत ।

सुनो जौनि नैरु-मैरुन-बिन धैर भाजुनो केरत ॥

बस बनवी हौंसी केन को इंद्र रहयो बरि पात ।

सन्धु गुर मरुह करै को रही ठिबक की पात प्र'

—परमनाथ

३५

पातक—वह कर्म जिसके करनेसे नरक जाया जाता है, कर्ता-  
को भीचे पट्टने—उकेलनेवाला कर्म, पाप, कर्मण्य, ऋष, बदफारी,  
गुमाह-आदि ।

पातकोद्योगधरक - - ११

—अमरकण्ड १।५।११

प्रायश्चित्त-मत्तानुसार पातका के नौ भेद कहे जाते हैं, जैसे—  
अग्निपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, सक्तीकरण, अग्नी-  
करण, जातिभ्रंशक, मध्यवह और प्रकीर्णक ।

करनहार—करनेवाले । पै—द्वय—दूध पित्राते,

यद्य—

‘प्रथम कंस पूतना पठाई ।

नंद-धरणि बहें सुत कपें बैठी जति तिदि घौमहिं आई ॥  
अति मोंहिनी-रूप धरि धीन्हों देखति स्तपही के मन-भाई ।  
अमुमति रही देखि बाकी मुक्त का की बधू कौन घों भाई ॥  
नंद-सुधन तबहों पहिचौनी अमुर-धरनि अमुरेंन की भाई ।  
अपुन बधु-सैमान भए हरि माता दुपित भई अतिगई ॥  
अहो महरि पाछगन मेरी हों तुम्हरी सुत देखेंन आई ।  
अह कहि शोड कबीअपनेतब धिमुधन-पति अति मन मुस्तिअई ॥  
मुक्त-बूम्यो गहि बंड कगाए, विप-अपठधौअसनमुक्त कमाई ।  
वै-सिंग प्राद वैधि हरि कीए, अजेन एक परी मुरिछाई ॥  
अहि-आहि करि मज-अन धाए अति बाधक कबों पच्यो कँहाई ।  
अति जौनंद-सहित सुत पाधौ किरदे-मोंशि रहे अगटाई ॥  
अबर डरी बही मेरे की बर-बर भौनंद करत पभाई ।  
‘सूर’ कौम पूतनो-पछारी पै सुनि किय डरप्यी लुपराई ॥

—सूरदासर

पूतनों—राक्षसीविशेष, इस राक्षसीको—दानवीको वंसने  
 वृष्णके मारनेके लिये गोकुलको बना था । यह मायासे अपनेको  
 सर्वसुंदर बनाकर नदके घर गयी थी और वहाँ धीवृष्णको अपनी  
 गोपीमें ले करि-अग्र स्नान पान कराने लगी । धीवृष्ण भी स्नान पान  
 करने लगे, जिससे दानवी पूतनाके स्नानोंमें पीड़ा होने लगी । वह  
 उसने अपना असली रूप प्रकट कर स्नान छोड़ना चाहा, पर मन्वान  
 धीवृष्ण कष छोड़ने लगे । विशेष बेचना होनेपर दानवी घोर गर्जन  
 करती हुई सनाके लिय सो गयी थीर धीवृष्ण उसकी छातीपर  
 खेदने लगे ।

मित्र—वह जो सब बातोंमें अपना साथी सहायक, समर्पक  
 और दुर्भितक हो, सब प्रकारसे अपने अनुकूल आचरण करनेवाला  
 और अपना हित चाहनेवाला । कंधु, सस्य, सुहृद्, दोस्त भादि ।

‘ भय मित्रं मत्ता सुहृद् ।

—भ्रमरगीत २।८।१९

पातक, परतहार, पै-प्यावन, पूतनों और मित्र शब्दके सुन्दर  
 रोग, धप—

‘वदि व्याप्त तवत्रै तव ‘पातक करत-करत-आप ।’

—सूरदास

‘जग के ‘करतहार’ तुम क्योंही मचाकर छु समाण ।

—प्रेमचंददास

‘यदि त्वे गरत लागद् हरीरैत छै कबि सी वै-प्यावत ।

—सूरदास

‘कपर करि बरहि ‘पूतनों आई ।’

—सूरदास

‘कपटी भिम’ कौन्द कुलरार्ह “ “ ।”

—करनदास

कुछ-कुछ ऐसी ही बात खीसूर भी कहते हैं—

“उबरी भाए, कौन्द कपट की कौनि ।

सरबसु हरी बजाइ-बोसुरी भव ऐही पैहचौनि ॥

जिन पै-प्यावत पूवनी मारी दावत करी न हौनि ।

बकि-छछि बौधि पताछ पझया, नैक न खीनी कौनि ॥

बौत बकिक अधिक सुग बिचवत राग-रगिनी हौनि ।

अबधि-अस परतीसि ज्येद हे हौवत बिपन-सर-सौनि ॥

जैसे नादस टरत न जर तें तुम ऊबौ अति बौनी ।

सुरदास प्रभु के जिय भाबै अयुस माबै मानी ॥”

—सुरदास

३६

जागे—अगाधीसे ही, पहिलेसे ही । रामचंद्र—अयोध्याके इत्याकु-  
बशी राजा महाराज दशरथके बड़े पुत्र जो ईश्वर या विष्णु मगवान्  
क बाह्य कर्मयुक्त मुख्य अकार माने जाते हैं और जिनकी कर्माय  
कथा रामायणमें बर्णित है ।

बिस्वामित्र—एक लोकप्रसिद्ध ऋषि, इनको गर्वित्र, गाधेय  
और कौशिक भी कहते हैं ।

विशामित्र, कर्म्यकुम्भ देशक महाराज ‘गाधि’ के पुत्र  
थे, अतः क्षत्रियकुम्भमें जन्म लेनेपर भा अपने तपोवृत्तसे ऋषि  
कहाये । ऋग्वेदमें अनेक मंत्र हैं जिनके दाय विश्वामित्र और उनके  
वंशज माने जाते हैं । इनसे विश्वामित्र नाम राजगण्य प्राप्त करनेपर



पञ्चम पंक्त सुमन सिर स्नेहत क्यों क्यों कैम सुनार्ह ।  
 मनु मूर्ति धरि उमै माग मई विमुक्क सुन्दरताह ॥  
 पैठति सरनि सिद्धमि-बदि दितवत जग-भुग-जन-सुधिरार्ह ।  
 माहर समै सप्रेम पुष्पकि मुनि पुनि-पुनि छेति पुष्पह ॥  
 पञ्च तीर तकि हठी 'तारिका' बिद्या बिप्र पदार्ह ।  
 राक्षसौ जन्म जीति रजनीचर भइ जग-विदित बहार्ह ॥  
 चरन-कैमल-रज-परसि बहिरुपा निज पति-श्लोक पदार्ह ।  
 पुष्पनिशास' प्रभु के बूझें मुनि सुरसरि-क्या सुनार्ह ॥

—गीताबली

वपना—

‘इसरप सों अपि भाकि क्यौ ।

अमुरैज सों जग होंन न पायत राम-कनक तब संग हबो न  
 मारि तारिका करष करावो बिस्वामित्र अनंद भवो ।  
 श्रीक-मुपेचर जामि सुर' प्रभु कों अपि छे ता खीर गवो न

—सूरदास

कुलदीप—कु उके दीपक, ठगल्य करनेवाले ।

आगे, रामचंद्र, बिस्वामित्र, तारिका और कुलदीप शब्दोंके

सरस प्रयोग, यथा—

जामें गाय पाछें गाय इत गाय इत गाय ।

—श्रीकृष्णामी

'घरम मुप्यौ कौंनिक्या माता रामचंद्र' मिथि जाई ॥

—सूरदास

बडे जात मुनि शीघ्र रिगार्ह ।

मुनि तारिका श्लोक कर जाई ॥

—मुपेचरदास

‘मछे मय हुकरीप’ कविछे मागत जात्र न भाई ॥

—भंगवार

कुछ ऐसी ही वक्त झीसूर भी कहते हैं—

‘को गोपाळ कहा को बासी कसों है पैहचौंनि ।  
 तुम खेस कोन के पठ्य, कहत कोन के जौनि ॥  
 अपनी सोप मयुप डकि बैरत भीर मछे रस-जौनि ।  
 पुनि कह बेकि कही के सुखो ताहि कहा विर-हौनि ॥  
 मधस बेंजु मन हस्यो अहीरिन राग-रागिणी-जौनि ।  
 पुनि को बधिक बिसरत सुभाती हेंकत बिसर-सर-जौनि ॥  
 दे-अबत पूतबौं बिनौसी छके सु बकि से हौनि ।  
 सुपनकर तासकर मियासी, सुरदास वै बौनि ॥

—सुरसागर

३७

झी-मित्त—झीके जाधीन, झी-कस्य, झीने जीत लिय, झीज । छछ-आबब—छर्य, निस्ताना मारनेमें चतुर । कोपि—कोपकर, कोवित होकर, गुंस्तेमें जाकर । बिरूप—कुरूप, मोहा, छेपि—छोकर, तोड़कर, नष्टकर ।

झी-मित्त, छछ-आबब, कोपि, बिरूप, और छेपि शब्दोंके सुंदर प्रयोग, क्या —

‘य बिरजे हुकरी-मित्त’ पुरे तनक न मॉन-अमौंन ।

—अनदास

छछ-आबब में चतुर कहावत ये होय होक बरे ॥

—रामदास

भितरि ये ‘कोपि’ कर कछो हंज रिक्याह ।”

१ १ १ १

—केशोदास

"वामन रूप-विरूप" कियो बति हरप बहायो ।"  
 —गदापरदास

"काज खेपि गिरिधर सब पैरी लखियेन करि क्युगई ।"  
 —पद्मसुंदरदास

सूरदासजी कहते हैं—

‘दंडक-बन बापू दोऊ माई ।  
 कौम-बिबस ब्याकुल ठर-अंगर राखसि पुरु तहौ बकि जाई ॥  
 हंसिकर रौम क्यो सीख सों हृदि कज्जम के बिकर बजाई ।  
 मृकुटी कुटिक अलन जति खोजन जगिनि-सिरस-मुकुट-वाधिराई ॥  
 ये योरी भाई मदन-बिबस सो ध्यान बन रहुराई ।  
 बिरह-बिधा-सन काज गई पुरि बार-बार जहुआई ॥  
 रघुपति क्यो निकस विपट दू नारि राखसी हौं तें जाई ।  
 ‘सुरज’ मसु पतिनी-जत जड़े क्यो नौक गई कितियाई ॥  
 —सूरदास

३८

मास्त्री—सखी, सखी, सहेरी । बराबरबानी, समकपत्क,

रवा—  
 मास्त्री सखी ययम्या बा — ॥१॥  
 —अमरकोश १।१।१२

बति रामा—दानक-गति, बति, दानकपति शिरोधनके पुत्र  
 और परम मत्क प्रहादके पौत्र ( नानी ) थे । विष्णु मगवानून  
 बामन अवतार लेखर इसे उठा पा और पुन पताका राज्य दिया पा ।

वनमास्त्री—मगवान् धीहृत्पावक नाम विशेष, यथा—  
 वनमास्त्री बलिष्यंती — ॥१॥  
 —अमरकोश १।१।१२

अथ—

वनमाळी तु शोचिषे ।”

—भेदिनीकोष

अथ वनमाळीको जो धारण करे वह 'वनमाळी' । वनमाळ—

'भाषावपच्चं या माळा वनमाळि' इति सा मता ।

—कर्मिणे

अथ—

मृततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां वनमाळां

वहन् सा वनमाळी' । —विष्णुछासनामर्षाच्छ्रभाष्य

अर्थात् मृततन्मात्रोक्ती बनी हुई वैजयंती नामक वनमाळी  
धारण करनेसे भगवान् 'वनमाळी' कहल्यते हैं ।

श्रीमान्—शुद्ध ब्रह्मण, विष्णु भगवान्का नाम विशेष, विष्णुका  
पौत्रो अर्थात् जो कि दानवपति बलि राजाको छलनेके निमित्त हुआ था,  
अथ—

अथैते मयो श्रीमान् अथर ।

अथो मूर्तो सो अथ शित-आर ॥

हरि अथ अमृत धुरन्-पिबापी ।

तव अथि असुर बहुत हुष पापी ॥

सुख अथि पुनि अम्य करापी ।

सुर वै राज्य विजयी पापी ॥

विश्वानरौ अम्य पुनि अथि ।

तव अथि मवी अथि अथि के अथि ॥

हरि-अथि अथि अथि अथि अथि ॥

'सुर' श्रीमान् श्रीमान्-अथि अथि ॥”

×

×

×

×

इहो यो ई द्विज भौमन ।

चारों पैद पवत मुख-आगर, अस्ति सुगन्ध सुर-भौमन ॥  
 बौमी-मुनि बलि पृथग कागे इहो विप्र कर्तौ भौमन ।  
 चरन्ति चंद्रन नोक कच्छेपर वरसत बृहत् सौमन ॥  
 चरन घोड़ चरनोत्क छीयौ मोगि वृद्धे मन-भौमन ।  
 तीन पैद बसुधा हों चोहों परम-कुटी के छौमन ॥  
 इतपी कहा विप्र तें मोग्या बहुत रतन वृद्धे भौमन ।  
 सुरदास' प्रभु पीठि छप्पी बकि चरधौ पीठि ई भौमन ॥

—सुरदास

शामन शब्दका एक और फमनीय अर्थ हाता है, जैसे—

“सम्भजनीय इति शामना ।”

—वि स धां भा

अर्थात् मछी प्रकार मजने योग्य होनेसे आप 'शामन' है,

जैसा कि मंत्रवर्णमें लिख है—

“मध्ये शामनमासीनं विद्ययेया उपासते ।

—ऋषिनिर्ग १।५।३

अर्थात् मध्यमें स्थित शामनको विद्ययेया उपासना किया  
 करते हैं ।

परबत—गहाड़, शैल, गिरि, नग । यथा—

‘मदीधे शिखरिश्मामुद्धार्यघरपक्ताः ।’

—अमरकोष १।३।१

वक्रार—शरीर, बिना मन्त्रक । सत्त—साय, टीक यथा—

“सत्य तप्यमुत सम्पग् ॥”

—अमरकोष १।७।२२

श्लोक—तुष्णा, लम्बव, लुब्ध, दूसरेके पदार्थको स्नेही  
करना ।

शाली, बडिराजा, बनमामी, बौमन, परबत, लकड़, सत और  
श्लोक शब्दोंके सुंदर प्रयोग, यथा—

‘ही मेही लम्बि भौंनु-मुठा के तीर बौंवीर उड़ाहीं।’

—परमानंददास

मुनि बौंवर बडे ‘बडिराजा जाहुति लम्ब किसारी।’

—सूरदास

‘डाही उत लम्बाली’ यैक में ‘मौंगत गौरस दौंन।’

—पद्मभुक्तदास

‘धरौ वैह पदत मुक आगर है बौमन’ लघुधारी ॥

—सूरदास

‘लबौ सिमटि सलक लजबासी ‘परबत’ को बडि हीनै।’

—आनंदकरन

बडि लम्बहू’ धरि मुक लीन्हीं “ । —सूरदास

‘लम्बिबि ‘सत’ पवन मुक भौंकि।’ —कृष्णदास

‘दूध रही को ‘श्लोक न मेरे’ चाई बेता काह।’

—माधोदास

श्रीनंददासजीने ३० और ३८ में छंद, श्रीमद्भागवतके निम्न-

छिद्रित श्लोकोंके आधारपर रचे हैं—

‘मृगयुरिव कपीन्द्र विश्वघे लुब्धधर्मा

क्षियमकृत विरूपां लीयितः क्रमयान्नाम् ।

यस्मिपि यस्मिन्स्यायेष्यद्व्याहृषय

स्तद्वलमसितसर्षीर्दुस्त्यजस्तत्कथायः ॥”

—श्रीमद्भागवत १० । ४७ । १७

वर्षात्—

बिहुर बनि बघी है व्याप क्यों बकि ही को  
 स्व-रत तिव कुन्म श्रीन्द की के बसी हो ।  
 बकि धूप बकि पू है नाक क्यों पास ही है  
 तज सैक न कथा वै क्या-भीती तुरी है ॥

—करीबालस बेदार

श्रीसूर कहते हैं—

कधी तनक सुजस हरि की सचनेन सुन ।  
 कपक-कौच कपूर कटर रम सम दुप-मुन गुन-ओगुन ॥  
 भौम सुगत छत्रि पर कुरव सप बाहू बनत पर कीनम ।  
 परमहंस विहंग देलतहि कषत जिप्या-मोगन ॥  
 बालकवैभ की राव संहारपी कोक-साव डर-दापी ।  
 सुपनछा की नाक विशारी तिव-यस मए मुरारी ॥  
 बकि को पौधि फाण्ड पण्यौ कीन्दे पावनि बाई ।  
 पूर प्रीति कनी तें हरि की कथा जात नही गाई ॥

—सुदामर

श्रीनन्ददासजीके—'मोगत भौमन रूप धरि .. पर फकिर

खजुरकी भी पड सुकि देखने कायक है, जैसे—

सौचो करारें करी हम सौ हम तो तज नेंडु न मोगती है ।  
 उम कामन है बनि बाहू एके, हम मो बनिचो पहिचोमनी है ॥  
 करि 'छाकुर बीधि गहू बगिचो निमभो मिडि के सुन मोगनी है ।  
 तुम ता अह राम के राव करर हम तो परे बात न मोगती है ॥

—डाकुरपतक

पद्मकरजी कहते हैं—

श्रीवि शैव पुद्गुमी कई मन्मर्दि परम पुनीत ।  
बहुरि बहुरि कलि नाममर्दि मे बलि कसुक समीत ॥

—मन्मर्दिनोद

बिहारीअपने भी 'बलि नामन' की कतव्यपर बड़ी व्यंगमयी  
रुचिर रचना रची है, जैसे—

इहै विगुमी पहुँचौ निरुति धति शीन्ता विलाह ।  
बलि-शौमव को कहीत कलि को बलि तुम्हें परमाह ॥

—बिहारी सतसई

३९

परशुराम—परशुराम, मर्दिनिरोप । कहते हैं परशुराम ईश्वरके  
छठे अवतार हैं । इनके पिताका नाम मर्दिनि जमग्नि और माला रेणुका  
थी । पहिले इनका नाम केकच श्राम था, परंतु गंधर्वदन पर्वतपर  
अपनी घोर तपस्यासे म्हादेयको प्रसन्नकर उनसे एक तेजोमय परशु  
पाया, तभीसे आपका नाम परशुराम पडा । पुरुषोत्तम सिखा है—  
इन्होंने अपने पिताकी आज्ञासे माता रेणुकाका सिर काट डाला था ।  
इसीसे धर पृथ्वीको अत्रिभ्रष्ट भी किता था आपन पिता-  
के बदले ।

संपारी—संहारी, नाश कर दी, मार डाली । सौमित्रकुण्ड—  
सौमित्रकुण्ड, रुचिरकुण्ड, रुचिरक कुण्ड, चहकम्पा, स्रष्टा, मन्हा ।  
पोसे—पावित किये, पावन किये, परवश किये । शत्रु—पुत्र,  
पिता—प्रपितामहादि, बाप-दादे-परदावे आदि । शिरग—युग, रज ।



परसरौम, सपारी, सौमितकुंड, पोसे, पित्र और विष्णु आदि शब्दोंके सुन्दर प्रयोग, यथा—

भक्ति सेवक बहुतक सपारी ।

—कनाराम

मन्त्री क्यौ परसरौम अक्षतार ।

—सूरदास

सौमित-कुंड बहुत तई भरे ।

—तापनिधि

अनम कियौ बसुदेव-बैबली मंद-असोमति पोसे हो ।

—अनन्यमन्त्री

भक्ति-करम करन मँदराई असे अमुन-अक न्हौन ।

—माधोदास

विष्णु अति मार्गी क्यौ प्यारि ।

—सूरदास

परसुरामजी इस कपापर सूरदासजीका यह पद देखिये, आप कहते हैं—

परसरौम अमरुति-वर कीन्हों यौ अक्षतार ।

माता छाडी अमुन-अक, सँन राई इच्छार ॥

कागी तहाँ अक्षर तिहि अपि करि प्रोब अपार ।

परसरौम सौ यौ कही या कौ फणि मँहार ॥

और सुठन तब कही विष्णु कहि कीजे कृष्ण ।

प्रोबसंग रिपि कछौ करी इन्हूँ सौ बैसी ॥

परसरौम तिन सचक की मारपी अरुण प्रहार ।

रिपि कछौ होइ प्रमथ्य वर मोगी देऊँ कुमार ॥

परसरौम तब कछौ बदै वर देउ तान वर ।

आनें आदिन सुए करि कें कीये व सच ॥

रिषि क्यो बह बर दिवा मी हनको देहुं क्योई ।  
 परसरोम उमको दिपी सोबत मर्षी क्योई ॥  
 परसरोम बन गप, ठही विन बहुत छम्प ।  
 सहस-बाहु तिहि समे रिषी के अक्षम भाप ॥  
 कौमबेनु अमर्षि की छै गयी कृपति छिन्नाह ।  
 परसरोम की बोकि रिषि दिखै वृषांत सुवाह ॥  
 परसरोम सुनि पिता-बचन ठाकीं संहारपी ।  
 कौमबेनु हईं औनि बचन रिषि की प्रतिपरपी ॥  
 सहसबाहु के सुतेन सुनि राखी भात-क्योह ।  
 परसरोम क्य बच-गप, मारे रिषि की पाह ॥  
 रिषि की हृदि गति देखि मय्य तब रोह पुच्छरी ।  
 परसरोम तुम भाह क्यस्त बनीं नाहिं गुहारी ॥  
 कीं सुनि के भाप तुरत मारे तिन्हें प्रचार ।  
 बहुरी विव-धरि श्लेष इति छत्रिय इदिसपर ॥  
 बग अनाह छै गयी रिषिंन तब अति दुख पायी ।  
 छै पूषी की बौन छाहिं किहि बगहिं पठाया ॥  
 बहुरि राज दिपी छत्रियन भयो रिषिंन भाग्य ।  
 पुराणस पाकह इरल गलत गुन-गोविन्द ॥

—नरकमर

४०

हिरण्यकश्यप—दैत्यविशेष, जो कि प्रह्लाद मकड़े पिता थे ।  
 छुद नाम हिरण्यकश्यपु और प्रसिद्ध विष्णु-विरोधी । हिरण्यकश्यपु  
 मूर्धनि वक्ष्य और त्रिक पुत्र थे । इन्हें प्रह्लादे यह बर मिश्र था कि  
 मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी आदि किसीसे न मर्दें । इससे ये अत्यन्त  
 प्रकृत और अजेय हो गये । जब इन्होंने अपने परम भाग्य पुत्र

प्रहादको भगवद्भक्ति करनेके कारण बहुत मत्तया और एक दिन उसे खंभेसे बाँव और लछवार खींचकर मारनेको धार धार पूछने लगा कि क्या ! तेरा भगवान् कहाँ है ! जो आकर बचाये, तब भगवान् गृसिंह ( जाधे सिंह जाधे मनुष्य ) का रूप धारणकर खंभेको फाड़ प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुको फाड़कर मार डाला ।

हीठ—गृध्र, बेअदब, पढ़ी न माननेवाला ।

घृष्टे घृष्वाधिपातश्च ।

—अमरकोश ३ । १ । २५

ग्रहल्लद—ग्रहाद, दैत्येव हिरण्यकशिपुके परममत्त बेटे बिनके निमित्त विष्णु भगवान्का चौथा घृसिंह अवतार हुआ था ।  
 जगरपी—जगदा कृत्या, तरुतर टनी । सिष्टा ( शिक्षा )—गिज्ञा, उपदेश । वपु—शरीर, अकार । नरसिंह—गृसिंह, प्रसिद्ध गृसिंह-वतार जा अपने भक्त प्रहादके उिये मिया था । नखैन—नाग्यूनोसे ।

हिरण्यकण्ठय, गीठ, ग्रहल्लद, जगरपी, सिष्टा वपु, नरसिंह और नखैन शब्दोंके सुन्दर प्रयोग, यथा—

“हिरण्यकण्ठय” जति प्रथम वपुश्च ई तर खीग्हों पाचइ ।”

—गुरदास

मारय ज्ञान न पाचत खोऊ भया ‘हीठ’ जति खीम ।”

—मानसराज

तपदिं जमुर ग्रहल्लद’ बुझण जप सोद भरिभइ ।

—गुरदास

“भोरदिं खीग्ह करन मोयीं जगरपी ।”

—परमाश्रितान

विच्छा' इहं मह इति म्वाकिति सिव वै हाय बराहं ।

—सूरदास

प्रघट भए मरहरि 'बपु हरि हरि करकरकर उचारी ।"

—सूरदास

"तब बोक मरसिय' कृपाकरि सुनहुँ मरु मम बाव ।"

—सूरदास

'यकरि लिप्पा छिन मोंहि बसुर बसि, करयी मरौन' बिदारी ।"

—सूरदास

## ४१

शिष्टुपात्र—शिष्टुपाठ, चे देशके राजा दमघोषक पुत्र थे । दमघोषके भगवान् श्रीकृष्णकी भूआ (मूला) ब्याही थी । शिष्टुपात्रकी माता सुप्रभाको यह माटम हो गया था कि इसे (शिष्टुपात्रके) श्रीकृष्ण ही मारेंगे, अतः उसने भगवान्से शिष्टुपात्रके सौ अश्वध क्षमा करा लिये थे । महाराज युधिष्ठिरके प्रसिद्ध राजसूय-यज्ञमें भगवान् श्रीकृष्णका सर्वोपरि पूजन होनेके कारण शिष्टुपात्रने श्रीकृष्णके बकी गालियाँ दीं, अतएव भगवान् श्रीकृष्णने उसकी सौ गालियाँ खानके बाद मार डाली । इस घटनाके आशङ्क माघ कल्पिन एक बड़ा सुन्दर नाटक बिसवस नाम शिष्टुपात्रका है रचा ।

भीष्म—भीष्मक, राजा विरोच, भीष्मक पित्र्भ देशके राजा थे । इहीकी पुत्री श्रीकृष्णकी भगवान् श्रीकृष्णका ब्याही थी ।

दसै—देशका, नगरके । दुल्ही—दुखिन, मया बहू, बपु, मव परिर्णना बपु, नरि ब्याही बहू । छुधिन—शुधित, भूख, विमुधित ।

'बसत कई प्रायत ही कतई सग-कुछ-कहा-बोपी ।

—मानदास

'प्रगतिपाक 'श्रेष्ठी कमलपति । —सुरदास

कुछ ऐसी ही बात श्रीशुक भागवतमें कहते हैं—

शार्पस्यः प्रियकर्माणि रुद्रत्पञ्च गतद्वियः ।

तस्य नस्मृत्य सस्मृत्य धानि कैशोरप्यास्त्यपोः ॥

—श्रीमद्भागवत १ । ४० । १

अर्थात् अपने प्रियके कर्मोंका नाम कतती हुई और उनके बाछ-कैशोर जन्मसाके नो कार्य उनका स्मरण करती हुई मज्जा छोडकर रुद्रम करने लगी ।

श्रीनन्ददासजीकी—सा पाछे इकबार ही रोइ ठठीं ब्रज-भारि' रूप सुक्तिपर श्रीशुकने श्रीमद्भागवतमें और भी कहा है, जैसे—

इति गोप्यः प्रगायस्यः प्रहपस्यञ्च विषधा ।

रुद्रुः सुस्वरं राजभृष्णदर्शनमहासता ॥'

—श्रीमद्भागवत १ । १२ । १

अर्थात्—हे उग्रनु, इस प्रकार गोपियों गाल करती हुई और नामा प्रकारका प्रलाप करती हुई श्रीकृष्णके दर्शनमें व्यक्त मम्मसा मग्ना अति उत्तम स्वरसे रोहन करने लगीं । उत्तम स्वर, यथा—

'सुस्वरं कठज्वदीर्घस्वरेणेत्पर्या ।' —श्रीवसुदेवजी

वयम्—

'सुस्वरं तिलंजतया दीर्घस्वरेण रुद्रुः ।

—श्रीरामनारायण

६१

सलिल—ब्रह्म, पत्नी, यथा—

‘आपा स्त्री भूभिर्वाषांश्चि सखिलं’ कमल जलम् ।

—अमरकोश १।९।३

कंसुकी—कल-विशेष, जो कि ‘खोली’ कहल्यता है और स्तनोंपर पहिरी जाता है । कंसुसी, खोली, अँगोपा ।

स्त्रीषामगरक्षिणी ।’ —हेमचन्द्र

कंसुको पारबाण स्यामिमौके कथयेऽपि च ।

अथापकगृहीतागस्थितयस्त्रे च खडके ॥

—मेदिनीकोश

मेदि—घेरा, भाङ, हृद, सीमा । कूट कौ तुँन मयी’—

किनारेका तिनका हुआ । कूट—किनारा, तीर, तट, नदीके किनारे-का तृण, अर्थात् तिनका हुआ । कूट, यथा—

कूटं रोधश्च तीरं च प्रतीरं च तटं त्रिषु ।

—अमरकोश १।९।७

मेदिनी कोशकार ‘कूट’ के इतना और अर्थ बतल्यसे हुए कहते हैं—

‘कूट तटे सैम्यपृष्ठे तडागस्तृभपोरपि’

—मेदिनीकोश

और तुँन, (तृण)—

शर्पं वाळतृणं घासो ययस तृणमभुनम् ।

—अमरकोश १।४।१६७

१ उक्त पद्यमें तुँन वा तृणको जन मानक ( कर्तुं सुनयदक्रेनि इत्येके वदे-अके विचित्र अर्थ किये हैं । कोरें ता इत्यत्र अर्थ प्रायः रख इ मानता है तो कोर औपचि और काइ किनारेका वेइ इत्ये वच मानता है परन्तु हमारी दृष्टि बुद्धिके अनुसार उक्त शब्दका अर्थ यही उपयुक्त है ।

सन्धि, कचुकी, मैदि-आदि शब्दका सुन्दर प्रयोग, यथा—  
इंद्रि पति बरी गिरि पूजा 'सन्धि' बरहि मज-गौड़ मिठबौ ।

—सुरदास

एक सोध मरी हृदि बारन कसी एक बिन 'कचुकी' रीति छप्यौ ।

—द्विज भगवान

मनों स्मरणौ मैदि दबाई बरि कर्मन के बीच ।

—रसिकमन्य

श्रीनंददासके ठक सुमधुर भाषण मारतेन्दु बाबू हरिचन्द्रजी-  
की भी सुन्दर सूक्ति हैं, जैसे—

हँसरे बँल बही नदिया ।

कीती जामि बाधि आबध की को हमसी बरिया ॥

अपमद्यौ इन सक्क-मंग मज भंजन को घोयो ।

अमेक, वैर कुक-बौमि बहाई सुख न कसी कोबी ॥

हुकत हों अकुकरु मपाईब बई रीति कैसी ।

'हरीचंद्र' निब महाबाहु तुम आछति गति कैसी ॥

—प्रेमभुक्चन

शब्द अगानावास्त रसाक्षर कहते हैं—

'जस रस मधुर-सुगार्ह' रतनाकर को

कौनब पासि घटा बर को नही छयी ।

बदि नून पात को तनीम कुक बौमि गर्ह

गुह-गिरि-तोड़-टोक ही जिमि रती छयी ॥

काक-अभिकारन-भौर-भौमन गौमीर कगी

हैमगि-हैमंग बादि करत बही छयी ।

धीरज-धरार कोरि रुज्जा हुस-धोरि धोरि

नौकरार नैनवि तौ निकसि नरी छयी ॥

—शुंयारखरी

अमर-वारि-वर्षापर कवियोंने बड़ी-बड़ी सुंदर सूक्तियाँ सृजी हैं,  
अमर-वारि-वर्षाकी विविध बहारें मस्तान कहे हैं, बड़ी-सी ख्या दी है।  
इन सबमें प्रथम श्रोसूक्ती नेत्रवारि वर्षा देखने लायक है, जैसे—

नैन-भन रहत न एक बरी ।

कबहुँ न बटत सर्वा पावस इहि अगति रहति हरी ॥  
विरह-इंद्र बरनाथत निसि-दिन ब्रह्म पै भविक करी ।  
ऊरव-सौंस-समीर तेज बछ उर मुभि ईमगि मरी ॥  
बृहति मुखा रौम-द्रुम अंबर भव कुच उच्य घरी ।  
बकि न सक्य पग पथिक रहे बकि, संदन कीच नारी ॥  
राम-रितु मिरौ भई मन एकै इहि विधि उचरि परी ।  
'सूरदास' मनु तुमरे मिलन को रितु-सरजाव टरी ॥

—सूरदास

अपना—

'सखी इव नैनकि तें बन हारे ।

बिनही रितु बरसतु निसि-बासर सदाँ मखिन होठ तारे ॥  
ऊरव-सौंस-समीर तेज भति सुल-अर्धग-द्रुम-बारे ।  
दिसैल-दरैल करि बसे बचैल-जग हुल-यावस के मारे ॥  
हरि-हरि बृंद परति कंचुकि पै मिळि-मिळि बंजन करे ।  
मौबों परन-कुटी सिन कीन्ही विविधि कम्य करि म्यारे ॥  
सुमरि-सुमरि गरजत बछ-ठाँइत भँसुबा छमिक ह्यारे ।  
बृहत मअहि सुग को राखै बिन गिरिधर बर प्यारे ॥

—सूरदास

प्रह्लाद कवि कहते हैं—

'अगे-वैन गयी हो विभोग-वारि-वारिय में

हूबत घबों हों नाय नारी-वैन धों बहै ।

पंग की रहत अपर-नुबार-भार

इंद्र-अपे बाहि को बचौगे गिरि को गहि ॥



सगर में न देखी देखी ना बननी वै कहीं  
 मुनिव वै अलैग्रे नाहिं बौन-बोकिमें करी ।  
 'कवि प्रकाश' का मिश्रण-सेतु बौधी नगौ  
 बट के पत्नीवा वै राबरे मळें रहै ॥

रसिकप्रियोगि रसखाननी कहते हैं—

बाप कहा कहिमें कहिये, रूपमौन-कवी तें कका रग-बोरत ।  
 ता छिन तें अमुबौन की धार न खेरति बचपि खेरत-बिहोरत ॥  
 बैगि कबरे रसखान' बकाइ कबों कबों अमिमौन तें मीह-भोरत ।  
 प्यारे पुरंदर होहि न प्यारी अमै एक अदिक में बज-बोरत' ॥

पुनीत प्रेमके पुनारी 'धनानंदजी' कहते हैं—

'धनानंद' बीबक-मुरि सुबौन की खेरेन हूँ ना कहीं परसें ।  
 कहिं बौमियें बीं कित छगइ रहे इत अटक-मौन परे तरसें ॥  
 बिन पावस सी इव पावस होइ न सु कबों करिये अज लो परसें ।  
 बहरा बरसें अगु-में बिरके, बिब पावस ए अछिपों बरसें' ॥

१ रसखानके उक्त भावपर हजरत 'नू' फरमति हैं—

'मुझे रोने नहीं देता तसबहर तेरी आँसों का ।  
 बगर-ना होनों आँसुम को हुवाता अपनी आँसों से ॥

—मुरदवारवी

२ उक्त भावपर कविपर 'अज्ञ' अर्थात् प्रसिद्ध महाराज 'वीरकव' की  
 भी एक छस सुक्ति दे जैसे—

'अस्ति के बौंह गए मयुत, मनीं बीति गय जुग-बासर ठै ।  
 बिहामिनि, अम अग्रइ बई दे दतो-मि-वेसि नही बरतै ॥  
 अचिराज भनें मोहिं बौन परे सनि स्वाम-अदा-नछठी परतै ।  
 बिरदी बरि बाउरि बार ठठै रग-नीर किबों फन बों बरतै ॥'

कवि रघुनाथजी कहते हैं—

अप्युष के विद्युते मनमोहन बीती अर्थात् बरी एक कि ही है ।  
 ऐसी वसा इतने में आई, 'रघुनाथ' मुझे तें बसो भी ही है ॥  
 कादिम्बी के अँसुबौन की सगर' बाइत आत मनीं नम ही है ।  
 बात क्या कविये मज की अथ बूझीई ही है कि बूझत हो हे ॥<sup>१</sup>

दो-एक संस्कृत सुक्तियों भी देखिये, जैसे—

‘ अनुदिनमतितीर्षं रोविपीस्वमुञ्चैः  
 सखि किल कुरुपे त्व वाच्यता मे मुधैव ।  
 हृदयमिदमनंगागारसंगाद्विस्तीय  
 प्रसरति बहिरभाः सुस्मितं नैतदभु ॥<sup>२</sup>’

१ कादिम्बीके अँसुबौन को सगर' पर ठपूके प्रसिद्ध कवि शौचा' शाहबका एक छेर देखने समय है, जैसे—

‘समहर कर विद्या नम, उतकर नाहक अपने कर कहकर ।  
 हुए वे कुछ बसा औसू मेरी औँकों से बह-बहकर ॥’

२ रघुनाथ कविके पहिले बही बात भीतरने बड़े सुन्दर ढंगसे व्यक्त की है जैसे—

‘ निशि-दिन बरलत नैन हमारे ।

सर्वो रहत पाकल-रितु हम तें अब सौँ स्त्रीम सिधारे ॥

अँकन फिर न रहत अँसिपन में कर-कनोक भए करे ।

कँबुकि-पद सुगत नहिं कबहुँ उर-विच बहत पनारे ॥

अँसुवा-सलिल भए पा पाके, बहे जात मित-तारे ।

‘सुरदास’ बूझत है मज अथ कहे न सेति ठपारे ॥

३ “कोई निरा-विधुल-नायिका सखीके पूछे जानेपर कि ‘तू नित्य-प्रति—हर समय इतना क्यों रोती है’ । इत्पर वह ( नायिका ) उत्तर देती

‘अस्मत्प्रपापसमये कुरु मगकामि

किं रोदिति मियतमे वद् कारणं मे ।

हे प्रापनाय विरहानलतीव्रताय

धूमेन वारिगच्छितं मम शोचनाभ्याम् ॥’

अंगामि मे वहसु कातवियोगवद्विः

सरसता मियतमो हृदि वर्तते य ।

हस्याशयाशशिसुखी वसन्धुर्बिभु

धाराभिदृष्णमभिपिच्छति हृत्प्रवेशम् ॥’

हुई कइती है कि सखी ऐस्य—इतना रोव-व-रोव क्यों रोती है—कइकर सुने क्यो अर्थको बदनाम करती है । मरी विरह-पीडासे मनमित्र स्वस्य विषयासी मे मेरी आँसुओंमें आँसु नहीं है अफिनु कामाग्निसे पिसल-पिसलकर हृदय पानी हो नेत्रोंके पाइप-हाय फिस्टर होकर बाहर निकल रहा है—धम रहा है । बही बात कबितप्राट् विहारीबाबूजीने अपनी सुमधुर भाषामें इस प्रकार कही है, जैसे—

‘सख्यो आँसु अति विरह की रस्यौ प्रेम-रस-मीमि ।

नैननि के मग जस करे दिवो पतीवि-पतीमि ॥’

—विहारीसतलई

१ प्रदेश ( वृन्दे दश ) यमनके समय पत्नीके रोनेपर पति पूछता

है कि हे प्रियतम मेरे प्रस्थान-समय—जानेके बख मंगल-बार न कर तुम रो रही हो—इतका क्या कारण है ! यह बात सुनकर नायिक—प्रियतम—बचर देती हुए कहती है प्रापनाय, आपकी विरह-वद्वि ( आग ) का ठठा हुआ धूमों इन आँसुओंमें समा है निमके कारण मरी आँसुओंमें आँसु निकल पड़ हैं और कुछ कारण नहीं है । ’

२ ‘आँसुकी—प्रियतमकी वियोग वद्वि ( आग ) मेरे आँसुओंके

भस्के ही जल्य रहे किन्तु हृदय-प्रदेशामिधत प्रियतमका यह उदाप ( भयका ) न स्यो, इन आशयसे वह पंडितमुखी, धाराप्रवाह धनु-जस बरमाकर अपने हृदयको धींच रही है—मिगो रही है ॥’

अधुच्छलेन सुदृशो ब्रुतपावकधूमकलुपास्याः ।  
अप्रप्य मानमगे धिगन्नाति छावन्धवारिपूर इव ॥<sup>१</sup>

दा घर उर्वू-स्रष्टिस्फत्री सूकियो देखिये, जैसे—

भ्रिउडे-जन्क पैना गिता दामावे-मिहर्गो छेवकर ।  
किर न उट्टा हूवपु, चाडे-गिरेवो छेवकर ॥<sup>२</sup>

—बोध

जन्क के लूव छिरमत की हमारे दीदये-तरसे ।  
कि हर औंसूने मूँ बोवा चावे-महतावे-दिजारीका ठ<sup>३</sup>  
× × × ×  
मेरे जन्को में है या तेरे बंशने-मुसल्ला में ।  
गुहर की भाव हारे की तन्कनी बूर तारे का ॥<sup>४</sup>

—दाता

१ हमी गयी अग्निके धूपसे धूमरित औंसवाले उव सुचेचराज-  
नाबिकाका लौदर्य-जन्क ( आवशर पानी ) शरीरमें प्रतिज्ञ ( मान ) न पाकर  
औंसुभोके बहाने भर रहा है—निकक रहा है ।

२ तिजब ( बाकक ) औंसु, मातृसूरी पकझोछ पस्वा स्वागल  
देसे गिरे कि किर उद्यमे न उठे ।

३ भाकारने मेरे भार औंसुभोसे तमझंरुत नैशोते—औंसोमे लूव  
सेवा की क्योंकि मित्रके बिरहमें मैं एवमर राया और अन्नी औंसो-  
के हर एक अधुकरवसे विरहाभिरति चंदरेबका मू चाया किवा । तभी तो  
बह अविश्रपिक उवजल होना जा रहा है ।

४ तुझे अपनी दंत-पंकिनी सज्जरीका बड़ा गुमान है—अमिम्यन  
है, पर यह तो बता कि मेरे औंसुभोसे बढकर क्या वे ( बंतावपी ) लप  
है । मानी छे धामा होरेकी दमक और लरें-बैठा प्रप्यय तेरे लौंसोमें है  
या मेरे औंसुभोमें ।

'घर मेरा गर मैं न रोता तौ भी बीरों होता ।  
बहर गर बहर न होत तौ बयाबीं होत ॥'<sup>१</sup>

—ज्ञानि

'पुष्करा कसिन्दे-अरुण आब प्रौख-गम के हाथों से ।  
हुआ ताराब पहिले बहारे-जों दिख क्य नगर पीछे ॥  
सुनो मैं हूँ जो अपने साथ के थावा हूँ और बाकी ।  
कले अति है ठठते बैठने उठते-बिगर पीछे ॥'<sup>२</sup>

—नबीर

१ अंग्रेज कहते हैं कि मैंने अपने घरको रो-रोकर बहा दिया मुझे अपनी आँसुओंकी आँसुओंकी इस शक्तिसे तनिक भी इन्कार नहीं किंतु इस कारण मैंने अपनी ही हानि की, इस बातको मैं क्यामि नहीं मानता । बेधाक, मेरी आँसुओंने आँसू बहा-बहाकर घरको साफ कर दिया—बहा दिया, परंतु वह ( आँसू ) ऐसा न भी करते तो भी मेरी बरबारीमें कुछ एक नया क्योंकि पृथ्वीके दो ही बल और एक विभाग हैं । यदि आँसू आँसू न बरसती तो कल न होता—बलसे न बहता बरबारी होता, अपर्यंत अंग्रेज होता ।

२ किराहमें प्रेमीके नेत्रोंसे आँसुओंके साथ बहुत भी—बल भी आने लगा है । अतः उससे यह ज्ञान पड़ने लगा कि अमर कुछ दिन बही हास्य होती रही—नित्य-मति रोता ही था तो कछेअके टुकड़े-टुकड़े होकर आँसुओंके साथ बाहर आने लग्येगे । इस भावको प्रार्थन करते हुए कबिबर नबीर साहब फरमाते हैं कि—'हरकायस्मी अभु वह सँदेख स्या है कि आज प्रियतमके किराहकी स्नाने पहिले जान ( शरीर ) कपी नगरको और इसके बाद दिख ( हरब-पुर ) को खर-भारकर चौफट कर बाह्य, अतपव उस ( ज्ञान और दिखकी प्रत्यारूप ) सङ्को मैं अपने इमराह ( सायमें ) सिबा मावा हूँ और पीछे उठते-बैठते पकित-से बियर ( कसेने ) के टुकड़े चले आ रहे हैं ।'

यहाँ तक गिरिबा में रोय़ सहर तक ।  
 गभी-कूचे में पायी है कमर तक ३' —तबस्ती  
 अश्रु ज्यों-ज्यों से एक नहीं धमक ।  
 क्या बख़ा दिख-ही-दिक में जब हुआ ३' —लेन  
 मज़ा बरसात का देखो तो का बैठे इन ज्यों-ज्यों में ।  
 खिपाही है सज्जीवी है, सऊक है बने-बारी है ३'  
 —घोरे धापर

६२

### उद्धवकी प्रेम-दशाकर वर्णन

गिलौन—म्हनि, मानसिक व्यथा, निंदा, अरुचि, भ्रांति, चित्त-  
 की शिथिलता या क्षिप्तता, रोग-निर्मुक्त, स्नेह । मनकी एक वृत्ति  
 भित्तमें अपने किस्ती कार्यकी सुराई या दोग वाणि देखकर अनुरसाह,  
 अरुचि और क्षिप्तता उत्पन्न होती है ।

१ मैं ठगनी पुत्रायगीमें—विरहमें यहाँतक रोया कि गभी-कूचेमें  
 मेरे आँसुओंका पानी कमर-कमर हो गया ।

२ अर्ध तक है ।

३ ओ निद्रुर प्रियन्म, बरि बरसातका ही—कर्पाश्रुतुअ ही भानंद  
 सेना है तो मेरी इन ज्यों-ज्योंमें आकर क्यों नहीं बैठवा क्योंकि मेरी आँसुओंमें  
 बर्या श्रुते रंभित बनपोर कभी पदा है उत्रेअ है अछाई है और पानीसे  
 मेरे पलककूप बादलोंसे आच्छादित मेघ भी है ।

उक्त शेरको पढ़कर सेयद गुम्हमन्वी ( रतष्मिन ) बीजा यह बोहा  
 बरबस याद का व्यथा है । जैसे—

अभी हवाहम, मद भरे, सेत स्योम, रतनार ।

बिपत, मरत छकि छकि परत बिहिं भित्तवत इकवार ॥'

और इनका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा जाता है—

‘गोपिकाः भुक्तयाऽभयन् ।’

—गोप्येवनिम्

अथवा—

गोप्यस्तु भुक्तयो ज्ञेया म्नाधिज्ञा गोपकम्यकरः ।

देवकन्याश्च राज्ञेयः न मानुष्य कथञ्चन ॥’

—कथपुराण

और इनके नाम—

पूर्णसा, रसम्बरा, रसात्म्या, रससुन्दरी, रसपीयूषाम्बा, रस-  
तरंगिणी, रसकण्ठोष्मिनी, रसनायिका, अनंगमंजरी, अनंगमनिनी,  
मदर्यती, रंगविह्वला, रस्यिता, कलितपौषणा, अनंगकुसुमा, मदमंजरी,  
कलावती रसिकरम, कलकंठी, अम्बास्या, रसोत्सुका, रसिकर्ष्या  
रसिधितामणि ।

श्रुतिरूपा—

उद्गीता, रसगीता, वरुणीता, वरुणस्त, वरुणद्विती, विपची,  
कल्पदा, बहुमता, बहुकर्मसुनिष्ठ, बहुहरि, बहुशाखा, विशाखा,  
सुप्रयोगता, त्रिप्रयोगा, बहुप्रयोगा, बहुवला, कलावती, किरावती ।

मुनिस्वरूपा—

उमता, सुतपा, प्रियका, सुरता, सुरेशा, सुपर्वा, बहुप्रदा,  
करोरु, मणिमीना, अपर्णा, सुपर्वा, मत्ता, सुकृष्णा, सुरती, गुणकती,  
शैवलिनी, सुश्रेयसा, सुमता, सुमता, सुशीला, सुरभि, सुकदायिका ।

और गोपबाल—

चंद्रावली, चंद्रिका, चंद्रचनमाला, रुक्मनाड्यप्रती, चंद्रानना,  
चंद्ररेखा, चंद्रश्यापी, चंद्रमाला, चंद्रप्रभा, चंद्रकला, सौवर्णशाला,  
मणिमालिका, वर्णप्रभा, सुवर्णचनसन्निभा, भारती, मूर्ध्नी, वासुती,  
मन्मथिका, मन्थी, मन्मथी इत्यादि सौगंधिका, करती,  
पद्मिनी, पुष्पवती, रसाला, सुरसा, मधुमंजरी, रंभा, ठण्डी, सुरेखा,  
सर्परेखिका, वसन्तिलता ।

—पद्मपुराण, पाताळसंख्य

निस्पृधिया सहचारी—

चंद्रावली, विशाला, मन्थिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रिका,  
तारा, विचित्रा, गोपाली, धनिष्ठा, पांडिका, संजनाक्षी, मनोरमा,  
मंगला, विमला, मीना, कृष्णा, सारिका, विशारदा, तारावली,  
चक्रेशी, शंकरा, पुष्पुम ।

सूय-पति—

चंद्रावली, सुशीला, शशिकला, चंद्रमुखी, मावली, कर्णवन्ध्या,  
कुंडी, पमुना, ज्योतिषी, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, सुभ्र, पद्मा,  
गौरी, सर्वमंगला, सरस्वती, भारती अर्पणा, रति, गंगा, अश्विनी,  
सती, मन्थिनी, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, मधुमती, चंपा, चंदा ।

मर्मे, मरजा, रोप और गोपिका इत्येके सुंदर प्रयोग ।

पद्म—

“मर्मे” की पीर व आकृति कोइ ।”

—अनन्वधली



“देखी तब ‘भरजाए’ सिद्धारी बासर बरनत बीते ।”

—अनदास

“कहा ‘शेष’ रहे ए बातेँ तनक बिधारी मजुकर ।”

—सूरदास

‘हरि सैग बन्त ‘गोपिका’ सैग भीनी ।

—परमानंददास

उक्त भावपर श्रीसूर कहते हैं—

‘अब अति अकिनबंत मन मेरी ।

अपनी हो निरगुन उपदेसैब मभी सगुन की बेरी ।

मैं कस्तु र्भ्योन कझौ गीता की तुमहि न परवी सुनेरी ॥

अति आर्षान आनिकें अपनी हूठ भवौ उन बेरी ॥

निज बन जौनि हरि हूँ पदापी दीन्हों भोग बेनेरी ।

‘सूर’ मजुप उठि बन्वौ मजुपुरी होरि अंग की बेरी ॥”

—सूरदास

श्रीनंददास उक्त सूक्ति—“ए सब प्रमासकति है खीं छाब-

कुच्छ-स्येप । घन ए गोपिका” —पर श्रीमद्भागवतमें गोपियोंके प्रति मगधन्

कहते हैं—

‘न पारयेऽह निरवधसयुजा

स्वसाधुहृत्य विदुभायुपापि वा ।

या माऽभङ्गमुर्जरगोदृष्टकसाः

संबृहदप्य तद्वः प्रतिपातु साधुना ॥’

—श्रीमद्भागवत १ । ३२ । २ः

अर्थात्—

“तुम जो करी सी कोऊ न करै मुनि नबस किमोरी ।

जोक-बेद की सुरद-भुंनका हूँन-सैम तोरी ॥”

—नंददास

६४

मेटि—मेटिकर, नाशकर, तोड़कर । परमार्जन—सम्मानद,  
अत्यंत आनंद, विशेष सुख, बहुत बड़ा सुख । पटतर—बराबरी,  
समता, उपमा, उदाहरण, मिसाल, तुल्यता, सादृश्य कथन ।

मेटि, परमार्जन और पटतर शब्दों के सुन्दर प्रयोग, यथा—

‘मेटि सख्ये सुरपति की पूजा गिरि का जन्म रखायौ ।

—परमानंददास

‘परमार्जन’ काहु घोड़ुख में पर-बर बजत बधायौ ।

—कृष्णदास

सुख ‘पटतर’ नहीं हों आम्हें को कबि मति हूँ अति मूखी ।”

—विठ्ठलपुत्र

कुछ ऐसी ही बात श्रीनारदने प्रेमका निरूपण करते हुए अपने  
‘भक्ति-सूत्र’ में कही है, जैसे—

‘अघातो भक्ति ध्याय्यास्यामः ।

सा स्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।

अमृतस्वरूपा च ।

‘यत्कृप्या पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति एतौ भवति’”

१ यही बात भीमरामकृतमें भीमगवान् करने हैं—

‘न पारमेष्ठ्यं न महेश्वरिण्यं

न स्वर्गभौम न रत्नाधिपत्यम् ।

न योगेश्वरीपुनर्भव वा

मर्त्यार्थित्तमेच्छति महिनाम्पत् ॥”

—भीमरामकृत ११ । १४ । १४

यत्प्राप्य न किञ्चिद्व्याम्वृत्तिं न शोचति न ह्येपि न रमते,  
नोत्साही भवति । १

\*

सा न अमयमाला निरोधरूपत्वात् ।

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारम्यासा ॥१११

—नारदभक्तिसूत्र १—५, ७, ८

अर्थात्—‘अब हम भक्तिकी व्याख्या करेंगे । वह परमप्रेमरूपा है और अमृतरूप भी है । जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है—मृत हो जाता है । जिसके प्राप्त होनेपर मनुष्य किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तुमें आसक्त होता है और न उसे विषयादि भोगोंकी प्राप्तिके निमित्त उस्ताह ही होता है ।

वह—प्रमदभक्ति कर्मना युक्त नहीं है, क्योंकि निरोधस्वरूप है । लौकिक और वैदिक कर्मोंके त्यागको ‘निरोध’ कहते हैं ।

१ भीष्मक करते हैं—

अस्य भक्तिर्मग्नतिं हरो निम्नमसेखरे ।

विभीषणतोऽमृत्युमग्धोषो किं कुर्वैः सातकोदकेः ॥

—भीमन्नागवत ६ । १२ । २२

२ कुछ देली ही बात गोविन्दोंने मगवान्ते करी है जैसे—

ध्विषं मुन्नेम भक्त्यापहृतं यदेषु

यधिर्विदस्तुत क्त्वापदि पद्महृत्स्ये ।

याही पद न अस्तस्य णदमूवात्

याम कर्षं ब्रह्ममयो करणाम किं वा ॥१११

—भीमन्नागवत १ । २९ । १४

श्रीशाण्डिल्य ऋषि भी अपने मक्ति-सूत्रमें यही बात कहते हैं,

जैसे—

‘अथातो भक्तिजिज्ञासा । सा पयनुरक्तिरीदधरे ।

तरसस्पस्यामृतत्वोपदेशात् ।’<sup>१</sup>

तत्रैव कर्मिभ्यामियोगिन्य आधिक्यशाब्दात् ।<sup>२</sup>

—मक्ति-सूत्र ११ २ ३, २२,

यहाँ भक्तिसे प्रेम का अनुरागका ही अर्थ मेना चाहिये, क्योंकि द्वेषसे प्रतिकूल होनेके कारण और रस शब्द-द्वारा प्रतिपादित होनेसे भक्तिकार नाम ही अनुराग है—इसे ही प्रेम कहते हैं, जैसे—

द्वेषप्रतिपक्षभावात्प्रसशाब्दाच्च रागः ।<sup>३</sup>

—शा भ सू १६

१ अब भक्तिकी विवक्षा—विचार भ्रमर करते हैं । वह भक्ति

ईस्वरमें पूर्ण अनुरागको कहते हैं । उधमें जो बिच अगाथा है वह अमृत फल पाया है ।

२ इससे भक्ति ही मुख्य है क्योंकि भक्तको कर्मद, स्थानी और योगियोंसे उच्चम कहा है । गीतामें भी यही बात कही गयी है जैसे—

‘स्तपस्विभ्योऽधिको योगी कानिम्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी महाकुंन ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्भूतेनास्तराध्मना ।

अद्यावाग्भवते चो मां त मे मुक्तम्यो मत ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ६ । ४६ ४७

योगी तपस्विभ्योऽपि अनिष्ठोंकी और कर्मिभ्योऽप्यधिकी अपेक्षा भेद है

इसलिये महाकुंन, व योगी द । परंतु योगियोंमें मैं उते ही उचसे भेद, उच्चम मुक्त समझता हूँ जो कि मुक्तमें भंठ करव अग्रकर अद्या-वदित मुसे मने—मुसमें ही ध्यान अगाध ।

सुदरदासजी कहते हैं—

“न खाज तीन-क्येक की न बेर की कइ-थौ करे ।  
न संक-भूत-मेत की न बेव-अच्छ ते उरे ॥  
सुने न कौन और की प्रसौ न और इच्छया ।  
क्यै न बल और की सुसक्ति-मैम-अच्छया ॥”

✽

कबहुँक हँसि उमि नृत करै रोषन फिरि करी ।  
कबहुँक गर-मद-कद, सबद बिकसी नहिं धारी ॥  
कबहुँक हरे उमंग बहुत हँसे-सुर गावै ।  
कबहुँक है मुख-मोव धर्मन बैसी रदि आवै ॥  
चित्त-बिच हरि-सौं क्यो सावधान कैसे रहै ।  
पह मैम-अच्छया मक्ति है, सिख सुखें 'सुंदर' करै ॥

—सुंदरविभव

६५

लघु-म्यौन—अस्य ज्ञान, न कुछ ज्ञान, थोड़ा ज्ञान । मद-  
गर्भ, अहकार, अहंमन्यता, धमप्य, अज्ञान, मतिभिन्नता, प्रमद ।<sup>१</sup>

“मदोपेतसि कस्तूर्यां गर्वे क्षयेभदानयोः ।

—विकल्पे

१ तादृश्यमे पार मी एक संवारी मय—अभिचारी मय मन्त्र  
ब्याप है, जैसे—

संमोहानंदलमेदो मदो मद्योपयोगः ॥<sup>१</sup>

—अहित्वदर्पण १ । १४९

अर्थात् विषम बेहोशी और भ्रान्तदृश्य संमिथन हो वह मयका  
पार कह्यती है ।

व्याधि—व्याधि, रोग, पीडा, क्लेश, दुःख । यथा—

‘स्त्री रुम्रजा खोपतापरोगव्याधिगवामयाः ।’

—अमरकोश २ । १ । ५१

साहित्य-शास्त्रमें ‘व्याधि’ एक संचारी मात्र भी माना जाता है, साहित्य-दर्पणमें लिखा है—

व्याधिर्न्यरादिर्वाताघैर्मूर्मीच्छोक्तम्यनात्रिकृत् ।’

—ता व वृ० प ११४

ब्रज-भाषाके सुप्रसिद्ध कवि ‘पद्माकर’ मद् संचारीकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—

‘ब्रज जोषन व्याधि ते कै मदादि के पौन ।

प्रबट होत ‘मद्’ भाव तई औरें गति बठारौन ॥

—ब्रजहिनोर

और उदाहरण जैसे—

‘भृंदावन-बीबिनि में बंसीबट-छोह बरी ।

कौतुक अर्धोत्थी पङ्क भाव छलि ध्यार् मैं ।

कागौ हुते हाट पङ्क मदन-बनी की कहीं—

गोपिन की बृंह रहवी इमि चहुंचाई मैं ॥

‘द्विजदेव’ सौदा की न रीति कसु मँकी काइ

है रही तु नैननि उलमल की दिखार् मैं ।

छे-छे कसु रूप मवमोहन तीं और

वे अहीरने गैचारी हेति हीरन बटाई मैं ॥

—भृंगारकविका

अथवा—

‘बौम ठमासी करि रही बिबलि बाली सेइ ।

छुकि हैसति हैसि-हैसि छुकि छुकि-छुकि, हैसि-हैसि देइ ॥’

१. बात, पिच और कक उल्लभ अणुदिको ‘व्याधि’ करते हैं ।

भविष्यत् कभीकी मन्त्र सिव बहकि बादली सेह ।  
 ल्यों-ल्यों कति मीकी छौ क्यो-क्यो हीक्यो देह ॥”

—विहारीछन्द

व्याधि संचारीकी व्याख्या करते हुए पद्मकरजी कहते हैं—

विरह-विषस कामादि सँ तब संतापित होह ।  
 ‘काही कौ सव कनि कहति ‘व्याधि’ कहायत सोह ॥”<sup>१</sup>

—कामदिशेख

और उदाहरण—

‘भेदेव ए क्यो कौन केहेन ए मीनि कौन  
 केहेन कहोत होत केव नए करती है ।  
 पौकी बतिबोनि सुनि ली कें कति बौसुव की  
 कामकी नयी-सी बधी नयी-सी सुहाती है ॥  
 सोक है सुहात कादि सोक है विषम-गात  
 विर-विष मेख की कहर कहराती है ।  
 भूमि-भूमि गिरति सुबनि-मरे हूमि-हूमि  
 सखी-सुख बंध-भूमि-भूमि विखवाती है ॥”

—कोई कनि

१ अथवा—

‘पतये ताप वैबरन ह, वीरस केह उखसु ।  
 भूख प्याठ सुधि बुद्धि पट, व्याधि कहती है तासु ॥

—दिव्यकवि

रोग और विभोगसे उत्पन्न मनके संतापका भी ‘व्याधि’ संघारी  
 भाव कहा जाता है ।

कवचा—

देखि री ब्यह वै गीय-बधु, माई बाबरी बेंकु न देदि सैमारे ।  
 माह सुबायन देबैत-पूजति सामु-सयौनि सबौन पुकारै ॥  
 बी 'सखौब' बिरयो सगरीबत्र भौबके भौन उपाह बिचरै ।  
 कोऊ न मोहन के करतें यह बरिनि-बौसुरिबा गहि कारै ॥”

—सुभनरत्नान

एक और—

‘पकनि प्रबत बहोधि बदि नहि कपोल छरौह ।  
 ते बौसुबा कठियो परे उमरनाह डिप जौह ॥”

—बिहारीउत्तर

बाधो-आधि—तनक भी, जग भी, उसके समान नेक भी नहीं । तनक भी मही, कराबर नहीं ।

अमु-अधिन, मद, ब्यधि और बाधो-आधि आदि सरस शब्दोंके सुंदर प्रयोग—

‘अति अमु-अधिन बनात आपुनो कहि निर्लुन भी बार्ते ॥”

—दण्ड

मद' मर' अर्थियो करक ठियारी ।

—नागरीराज

‘बाधति' 'आधि' तबकि बिपुर् सकि होइ त कपु मच हौनों ।”

—बिहारी

कुछ ऐसी ही मधुर बात धामझागकामे धीशुक कहते हैं—





मैं जान्यों नहीं प्रेम तु पलमरि हों बसमास बसेरी ।  
 'सूर' ज्ञान वै ज्ञान्या हीने खेरि खोग की बेरी ॥”

शब्द—

मैं जज्ञ-वासिनि की बकिहारी ।  
 जिनके सग सरीं खीबत हैं अमिगोबरपवधारी ॥  
 किनहूँ के घर मॉखर खोरत किनहूँ के सँग हॉनी ।  
 किनहूँ के सँग चेंबु बराबत हरि की बरज-कहाँनी ॥  
 किनहूँ के सँग जमुना के तट, बंसी-धेरि सुनाबत ।  
 'सूरदास' बकि-बकि बरमनि की वै सुख कित मोहिं माबत ॥”

—सूरदास

६६

### उद्यम-अभिलाषा-कथन

धूरि'—मूछि, रज, रेणु । जीवन-मूरि—संजीवनी मूट्टी,  
 जिजनेवाली जबी । अस्पंत प्रिय वस्तु । जीवन् औपवी ।

धूरि और जीवनमूरि शब्दके सुन्दर प्रयोग, यथा—

हे उद्यम बंका गहि पौंउति सबै 'धूरि भरि देह ।

—धूरदास

रामदास' की उद्यम गिरिधर, जज्ञ-जव जीवन्-मूरि ॥

—रामदास

१ प्रवरबकी—धूरि की महिमा नागरीदासजीने बड़ी उच्चम वर्णन की है जैसे—

'अपि नृप न भई-यति जाति क्यार है पौंनि ।

तदपि न तीरथ-जक कोऊ प्रबकी धूरि समौनि ॥”

—नागरकुण्ड

कविहर रसखानजी भी कुछ ऐसी चाहना करते हुए फर्मते हैं—

“मानुष होंडें तो बही रसखानि बसों मख मोकुळ-गोंब के प्यारेंन ।  
 जी पणु होंडें तो बहा बस मेरी बरों मित मंद की बेंगु-महारेंन ॥  
 पावव होंडें तो बही गिरि की जो बरवी कर छत्र पुरंदर बारेंन ।  
 जी बग होंडें तो बसेरौ बरों मिकि कर्किरी-कूळ-कर्कबकी बारेंन ॥

—सुखानरसखान

श्रीहठीमी कहते हैं—

गिरि कीबै गोबम मपूर नव कुंजन की  
 पणु कीबै महाराज मंद के बगर की ।  
 गर कीबै लोंब बोंग राये-राये मम रई  
 तव कीबै कर कूळ-कर्किरी-कगर की ॥  
 इतने वै कीह कहु कीबिये कुंमर कीन्द  
 राबिये न बौंनि केरि ‘हरी’ के मगर की ।  
 गोपी-पद-पंकज-पराग कीबै महाराज,  
 एव कीबै राबरेहै मोकुळ-पगर की ॥

—उभामुखायतक

मम प्रेमी ललित किशोरीनी कहते हैं—

‘कैरम-कुंज है हों कबै श्रीसुंदरान-मोहि ।  
 ‘कमितकिसोरी’ कबिके बिहरेंगे लिहि छौंहि ॥

•

“सुमन-वाटिख बिपिन में है हों कब मैं कूळ ।  
 कीमल कर रोड मोंबते धरि है कीमि कुकूळ ॥  
 मिकि है कब भोग छार है कीबन-कीबिमि भूरि ।  
 धरि है पद-पंकज किमल मेरे कीबन-मूरि ॥

•

‘कब काकिरी-कुक की हूँ तबबर बार ।  
ककिरकिसोरी काकिले कुकिलेँ कुकल बार ॥’

—रघुरसकवि

कृष्णगढ़के महाराज श्रीनागरीदासजीने भी कुछ परम प्रेममयी  
व्यभिचयार्थें की हैं, जैसे—

‘कब बुंदावन-बरनि में बरन परंगे बाह ।  
कौरि बूरि परि सीस वै कसु मुकई में पाह ॥



रिज केकी कोकिल कुक, बंदर-बंद जपार ।  
पेरे तल ककि निकट कब मिळिहों बौह-स्तार ॥’



‘कबै सुकत मो खोर कोँ पैरें मह-गज-बाह ।  
गर बौड़ी बीचें बोक, प्रिया-नयक-नंदकाह ॥  
‘कब हुलवाई होइगो मोकें बिरह जपार ।  
रोह-रोह उदि हीरि हों कहि-कहि बंदरुमार ॥’



‘नैन प्रभें बरुबार बह छिब-छिन केति असास ।  
रनि अँबेरी सोकियोँ गजबत लयक-उपास ॥’



‘‘बरेन किन्तु कौहेतु तें कबत कपिर सुधि-नाहि ।  
एकति हों छिरि हों तहाँ कग युग तक, बन-मौहि ॥



हेरत हेरत सोकि हों कहि-कहि लोम मुजौब ।  
छिरत गितत बन-सावन में बों ही छुरि हें मौब ॥’

—नसरतमुबब

सुदृढ म्यासनीकी अमिष्रया है कि मगवन्—

“ऐसी क्य करे ही मय मेरो ।

कर करक हरवा गुञ्जन की कुञ्ज-मोहि बसेरी ॥

मूँज सगे लो मोंगि काईके लखों न सोंझ-सकेरी ।

मज-वासिन बें दूक बूँद बर बर-बर काइ-महेरी ॥”

—म्यासनीकी वाली

रसिक अनन्य सहचरिसरणनीकी अमिष्रया है—इच्छ

पिठ-पति मोक-पसु-परिहैम इहि बिधि क्यै करौगे ।

रकि-हुकिता सुख-नरित-भूमि किमि रस डर क्यै करौगे ॥

पकरत शृंग कीट कीं बैसें तैसें क्यै करौगे ।

सहचरिसरण मरक भाव-सर-मन इमि क्यै रहौगे ॥

“कहि कहि बचन बिहैसि मोंगिपर कर क्यै करौगे ।

कन्याकर पित-धोर कहरकत पित कीं क्यै करौगे ॥

हरकि हँसारी जोकिन में सुख-सुकमा क्यै करौगे ।

“सहचरिसरण रसिक नाथिक मुहि मोहन क्यै करौगे ॥”

—सरसभंजनकी

परम प्रेमी जायसी कहते हैं—

“यह तब शरीं छारिकै, क्यौं कि पवन उदाव ।

मऊ तेहि मारग बदि परै कंत बरै कई पाव ॥”

—पद्याक

१ जायसीके इस सुन्दर भावपर किमी मकप्रवरकी कुछ ऐसी ही अमिष्रयामयी सरस सृष्टि यह आ गयी है, जैसे—

पंचसं वनुरेति भूतनिबहा स्वार्थेकिञ्चिद्दुःखं

प्राप्तारं प्रथितस्य इव धिरसा तत्रापि यन्नेकं ।

उर्दू साहित्यके महाारवियोंने भी अपने-अपने प्रेमियोंसे अनम्य अभिप्रायों की हैं, उनमेंसे कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

‘मुँह में गर पानी चुबाने घर अपने हाथ से ।  
मर्ब की वस्त्रीसे सीरी-तर छोड़ सर्बत नही ॥’

अपना—

‘जौं मेरी ललुओं से बह मक जाय तो अच्छा ।  
यह हसरते पा बीस निकल जाय तो बरका ॥’ —बौक

व्यापीय पयस्तहीफ्मुकुरे ज्योतिस्तहीयागन—  
ज्योमि ज्योम तदीप्यवर्मनि यय तत्तावुंठनिष्ठ ॥

—मुम्पित

अर्थात्, यह गकर-म्य शरीर पञ्चतन्त्रोंके पूषक-पूषक स्वप्नरसोंमें कम्य हो तो कृपाकर इतना कीजियेज कि कम-विभाग तो उन मुम्पित लोचन में सम्य ज्ञाय जिसमें प्रियतम ज्ञान करता हो—यान करता हो और तेज तत्त्व उस दिव्य दर्पणमें छीन करता जिसमें बह अनन्त मुक्तज्ञ देलता हो । व्याकाश-तत्त्व उसके बरका वैशेष बन जाय जिसमें बह रहता हो । पृष्ठी-तत्त्व उसके मनोहर मार्गमें सिद्ध जाय जहाँ कि बह छने-छाने-पैर भरता हो । इसी प्रकार वायु-तत्त्व उस पंखेकी हवामें परिवर्तित हो जाय जिससे कि बह अपने भ्रम-सीकर मुक्तता हो ।

१ परछे समय अमर मेरा प्याय मित्र, अपने हाथसे जरी पानी मेरे मुँहमें चुभा दे—रपका दे तो मौतकी कड़वाहटसे बहकर मेरी ललाटेसे जूनिशोंमें लक्ष्मण छोरे मीठा सर्बत नही ।’

२ बह मेरा प्याय मरछे समय भी ब्याकर अपने पैरके लज्जसे मेरी माझगिनी जौंजौं ब्याकर मक जाय तो बहुत अच्छा हो क्योंकि किसी तरह मेरे दिवसे उसके पैर जूमनेकी इसरत तो निकल जाय—इच्छा तो पूर्ण हो जाय ।

‘पञ्चन करना मुझ को कृपण-धरमें ।

इस बुसबुस की बने गुल्लहार में ॥’ —छोरे धर

बाँके का फुल रही है मरने के बाद मेरी ।

हस्ततः प वा कि उनके में एक निगाह देखी ॥ —धीर

निकल जाय वस तीरे इन्दुओं के नीचे ।

वही विल की हसरत वही व्याहृ है ॥ —कोई छपर

एक और—

“कर्वुवकी छेह हो अमुना का उर हो ।

अवर मुरखी हो साधे पर मुकुट ही ॥”

“कवे हीं भाप एक बाँकी कश से ।

मुकट छोके में हा सौजे हवासे ॥

“मिरै गरवम हुलककर पीठ-पद पर ।

कुछी रह जीप पे बाँके मुकट पर ॥”

“हुसाक की पवज हो प्रकपी वह पूक ।

पके उठे हुए वहाँ सिंगार के फुक ॥”

मिळे कलने की स्पन्दी ब्रज के बन की ।

किहक भी जाय छुकी पा मरुत की ॥”

अगर इस तीर हो अजाम मेरा ।

तुम्हारा नम हो भी कम मेरा ॥ —कोई मक

६७

हुम—शुभ, तरुवर, सुख, पेड़ ।

‘युसो महीरहा शास्त्री विटपी पादपस्तकः ।

अनोकहा कुटः साजः पस्त्रसी तुतुमागमाः ॥”

—अमरकोश २।४।५

गुन्म—शुभ विशेष, साड़ी, शास्त्र-शून्य शुभ, ठूठ । यथा—

अप्रकण्ठे स्तम्भगुल्मी ।’

—अमरकोश २।४।९

अप्रकाश—शास्त्रार्थित वृक्षकी परिभाषा लिखते हुए 'भारत' मन्त्रान् लिखते हैं, कहते हैं—

'मधिष्ठानप्रकाशस्तनुप्रकाशो वा बहुपत्रवान् मल्लीमिटी—  
मल्लकमलघरापीरणादिर्मूलादारभ्य पूर्वभागः प्रकाशः ॥ —भरतमते  
जपवा—

गुच्छगुस्मत्तु विविध तथैव तुण जातयः । —मनुः  
गुस्मकी व्याख्या—परिभाषा लिखते हुए 'कुच्छकमहा' कहते  
हैं । यवा—

'यत्र स्यात्सूहा भवति न च प्रकाशानि ते गुच्छम मल्लिका-  
श्याः गुस्मा एकमूलाः सघातजाताः ।' —अमरकोश टीका

श्या—केन, वल्ली बडुरी । मला वह वृक्ष विशेष होता है  
जिसकी छंवाई तो बहुत हो, परंतु बिना आश्रय मकी न रह सके ।  
यह प्रायः सूत वा डारीके माफिक फलना होता है और बिना सहारे ये  
मही बढ़ता या मही बढ़ती । अमरकोशमें इसके नाम पों लिखे हैं, जैसे—

“वल्ली तु मल्लिसंज्ञा ।

—अमरकोश २ । ४ । ९

वेली—केन, वल्ली बडुरी । अमरपतिशास्त्रक अनुसार ये  
कोमल छूटे पीचे जिनमें काण्ड, जर्पात् मोटे तने मही होते और  
जपने बडपर ऊपरकी ओर उठकर नहीं बढ़ सकते ।

१ न प्रकाशः सर्वो यस्य स अप्रकाशः ।

२ भीनदशासमीने इत छंदमें—फला और वेली दोनों समानार्थवाची  
शब्दोंका साथ-साथ प्रयोग किया है जो कि उचित-माप्रतीत नहीं है। अथवा  
भीनदशासमीने इन शब्दोंका विभिन्न अर्थक व्यतनस्वरूप प्रयोग किया हो ता यह  
बत विचारयोग्य है। अमरकोशकारने ता इन दोनों शब्दोंको समानार्थवाची ही  
माना है जैसा कि उदाहरणस्वरूप लिखा जा चुका है । पद्यचन्द्र बोधमें एक  
वेस शब्दका अर्थ 'उपकन' और मिलना है परंतु इतकी पुष्टिमें न तो कोई



दुम, गुस्म, छग, बेन्नी आदि सरस शब्दोंके सुन्दर प्रयोग, जैसे—  
 "अधिक धम्मर होत मेरेन की दुम" तर किब बिबमावत । तरदास—

धम्मरन ही मिला है और न इसकी व्युत्पत्ति । हेमचन्द्रने अपने कोपमें  
 इत अर्थका प्रयोग करते उदाहरणमें मिला है—

अप्योपाम्यां वने केळमारामाः इतिमे वने ।

अपडे महोरवने अरनी संरुत-इमेकी विवसनरीमें—कोपमें केळ  
 एष्यका 'उपवन' अर्थके अनंतर—'कुंड' अर्थ और माना है । अतः अर्थ  
 को कुछ हा उक्त दोनों अर्थोंकी तो वहाँ संगति नहीं बैठती परंतु स्थाका  
 बड़ी बेसी और केळी का—बेसीका छोटी-छोटी जैसे जैसे जमेसी आदिकी  
 अथवा पुष्पीपर केसनेवासी केडें जैसे कुम्हड़ारिकी अर्थ मान लें तो फिर  
 पुनश्चिके दोष न आकर अर्थकी संगति बैठ जाती है । विशेष विह पाठकोंके  
 ऊपर निर्भर है । एक महात्मुभावका कहना है कि छटा पुष्पवती हांती है और  
 केळ नहीं यह बात भी नहीं बैठती । अबमें बिते कि छटा कहत है उसमें  
 भी फूल हैं और केळमें भी । एक महात्मुभावका कहना है—गुस्म और छग  
 एक ही शब्द है पृथक्-पृथक् नहीं और इसका अर्थ भीत को कि बकब  
 एक हृच्छिरोप होय है । परंतु उदाहरण का प्रमाण देनेमें अप्य भी अस्मर्थ  
 हैं । श्रीनरदासकी तर छटा और बेसीका छाप-छाप प्रयोग भी विरास  
 नहीं मिलत केवल 'अपवन' कविने अपने धम्मरगीतमें इन दोनों शब्दोंका  
 साथ-साथ प्रयोग किया है । जैसे—

केळी का बनाओ तो बनाओ बनएव नू को

नाच नाच गइ गाइ सुबस मुनाळें में ।

अथा दुम बेसी रेंगरेसी को करे ती करे—

राबरे ही भोगन में पुष्प-तर बळें में ॥

ओ वै रब-रनुअ फनाओ मल माओ परी—

तो वै पर-परकब को सीस वै पराळें में ।

बेही कर पाळें सन्नपाळें भी रापेरेनी

बाव दे निफुंन को सेरेई कहाळें में ॥

—पुरुषोत्तमदासजीके प्रात

“गुस्म क्त्वा” है रक्षिप इदि तौ तत्र रंजित मत्र रंजु ।

नागरीदास

“ये (रक्षि) श्रीमद्भागवतु अरही ते तद्वर कपरोही ।”

—सूरदास

कुछ ऐसी ही शुभ चाहना श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीमें भी की

है, जैसे—

आसामहो खरणरेणुशुगमह स्यां  
वृन्दावने किमपि गुस्मलशौषधीनाम् ।

या दुस्त्यञ्ज स्वजनमार्यपथ च हित्वा  
मेतुर्मुह्यपदवीं भुतिभिर्विमृग्याम् ॥<sup>१</sup>

—श्रीमद्भागवत १ । १७ । ११

अप्यत्र—

‘अस्ये मन्मथस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।  
यासां हरिकयेच्छोभं पुनाति भुवनत्रयम् ॥’<sup>२</sup>

—श्रीमद्भागवत १ । १७ । १३

नागरीदासजी कहते हैं—

रुखी बार-बार मिर नाचत ।

गर-नाह कद, पुष्पकि बिहक है कर पौहन सी हाचत ॥

१ मैं इन गोरियोकी चरण-रेणु-रंजित वृंदावनमें अथवा गुस्म क्त्वा और औषधमेंसे कोई भी हो जाऊँ—वन बाड़े तो बड़ा उत्तम हो क्योंकि हन्तों ( गोरियो ) ने छोड़े जानेमें अथमय्य करने पनि पुष्पदिक और स्मार्त-मार्गा का त्याग कर वेहोदय हैंदि जाने काम मगधन् इष्यवी पदवी-को प्राप्त की ।

२ मैं नंद और मन्मथी इन तत्र रक्षिणोकी चरण-रजकी बार-बार बंधना करवा हूँ, क्योंकि इनके गये गये हरिगीत विमुक्तको पवित्र करनेवाले हैं ।

भ्रम गोपी तुम रंगी खोम रंग तन्वी सखक बिल खेम ।  
 गुल्म कला है रहिबे इहि ओं तब रंजित ब्रह्म-रंग ॥  
 प्रेम-भक्ति-रम सुधा पियो मी भव बिल भेगत न जाइ ।  
 तुम मेरी गुरु कही छमहुँ सब परत तिहारे पाँइ ॥  
 यों कहि कबी उठै गजन को फेरि सकत कीहि पीठि ।  
 नागर मन ह्यो गप राखिजे तैम पहुँचायौ नीठि ॥

—नगरसमुच्चय

भारतेदु कावू हरिश्चन्द्रजी कहत हैं—

‘मन के कला-मला माहि कीजै ।

गोपी-वद-वक्य-वाचन की रज बामें सिर दीजै ॥

भाषत भाष कुत्र की गतिरैव रूप-सुधा बिल पीजै ।

धीराये राखे मुल पह पर ‘हरीचंद्र’ को दीजै ॥

—मेधमाशिका

३८

साधु-संग-श्रेष्ठ पुरुषोत्तम सग, सोहकत, अष्टे मनुष्योक्त  
 साध, उत्तम स्तुतोंकर साध । परस—एक कल्पित फयर बिसकी  
 ककत कदा जाता है कि यदि उससे मोहा छुलाया जाय तो सोना  
 हो जाय । संस्कृतमें इस्कर नाम—‘स्पर्शमणि’ कहते हैं । कथन—  
 सुवर्ण, सोभा गया—

स्वर्णं सुवर्णं फलकं हिरण्यं हेमहाटकम् ।

सपनीयं शातकुंभं गार्गेय भर्मं कर्तुरम् ॥

श्यामीकरं जातस्य महारजसकर्षमे ।

रक्षम बार्णस्यं जम्बूनवमष्टापथोऽस्त्रियाम् ॥

—अमरकोश २ । ९ । ९४, ९५

साधु-संग, पारस और कंचन आदि सरस शब्दोंका सुन्दर प्रयोग—

‘साधु-संग कर्षू ना क्षीम्यो रश्मि चंचे ह्रीः ।

—माभाषास

‘पारस’ के संग ठोंका बिगस्यो ।

सो ठोंका ‘कंचन’ हो निरस्यो ॥

—श्रीरदास

ए २ गति महिमाका वर्णन करते हुए भागवतमें महर्षि कहते हैं—

‘मुर्याम लवेनापि न स्वर्गं नापूर्वधम् ।

भगवत्सगिसगस्य मर्त्यानां किमुताशियाः ॥’

—श्रीमद्भागवत १ । १८ । १३

आगे चलकर उद्धरके प्रति भगवान् कहते हैं—

‘न रोधयसि मा योगो न सांख्य धम एष च ।

न स्वाध्यायस्तपस्याग इष्टापूर्ते न दक्षिणा ॥

‘भ्रतानि यत्रादृष्टांसि तीर्थानि नियमायमा ।

यथायगन्धे सत्सगस्सथसगापद्यो हि माम् ॥’

—श्रीमद्भागवत ११ । १ । १ २

१ यदि भगवान्में आनन्द २ ठोंका लणभर भी रंग प्राप्त हो तो इसमें स्वर्ग और मोक्षरक्षी तुलना नहीं हो सकती फिर अन्य अमिस्मित पदार्थोंकी क्या बात ।

२ सगूर्ण असाक्षियोंको बुर करनपात्र सम्यग मुझे किस प्रकार अपने बचमें करल दे दमा न भोग न मास्य न धर्म न स्वध्याय न तपः न त्याग न इष्टापूर्त, अर्थात् दहतोंकी भलाईका कार्य न दक्षिण बत न पद न येद न तार्थ और न निष्पत्ती कर सकन हैं ।

पञ्चपुराणमें कहा है—

भास्योदयेन यद्ब्रह्मसमाहितेन  
 सतसगमेव लभते पुरुषो यदा वै ।  
 यद्ब्रह्महेतुहृतमाहमशा यन्नर  
 मारां विभायहि तदोदयते त्रिवेकः ॥<sup>१</sup>

—पञ्चपुराण ६।१९।०६

संसारकी मधुर महिमा गते हुए लभ्यात्मसामायणमें लिखा है—

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वास्तातिशास्तात्मनां  
 मत्सेवाभिगतात्मनां च विमलज्ञानरमता सर्वदा ।  
 संगं यां कुरुते सरोधतमतिस्तस्मैबन्धनन्यधी-  
 मौक्षस्तस्य कटे स्थिताऽहमनिशं हृदया भवेत्ताम्यथा ॥<sup>१</sup>

—अभ्युदयसामय्य ३।४।५५

मर्तृहरिणी कहते हैं—

‘आक्य धियो हरसि सिञ्चति वाचि सन्धं  
 मानोन्नतिं दिशति पावमगच्छति ।

१. जब बहुत अन्तर्के पुण्य-पुञ्जने भास्योदय होने पर पुरुषको सतसगमें प्राप्ति होती है तब ही अज्ञानरूप माह और मदरूप अन्धकारका नाश कर त्रिवेकस्व सूर्य उदय होता है ।

२. जो तत्परतापूर्वक साधु-सेवामें अन्तर्बुद्धि रखता हुआ मेरे मर्तों का निर्मल और शास्त्रविच्छाले योगिजोडा मेरी सेवा-पूजामें अनुरक्त भी मर्तोंका और निर्मल हृदयियोंका यथा ही संग करना है उनके मोक्ष करवाया गया रहता है तब मैं अर्निग उसकी हृदयिक नियम बना रहता हूँ अन्ध कित्ती उपासो में दर्शन नहीं दे सकता ।

चेतः प्रसादयति विष्णु तमोति कीर्ति  
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥<sup>१</sup>

—नीतिछन्दः

अपवा—

‘तस्य चित्तय सततं चित्ते  
परिहर चित्तां नदपरचित्ते ।  
सप्यमिह सज्जनसंगतिरेक्य  
भवति भयान्तवतरणे नीच्य ॥

—कृत्वच्छि

सत्संगतिपर इम-भाग-साहित्यकाशके सुन्दर सूर्य श्री ‘सुर’  
कहते हैं—

अ दिन संत-पार्श्वों में गणत ।

तीरव कोटि असन्न करे कच, इरसेन ही ते पावत ॥  
वेद नपौ दिन-दिन-प्रति बनकी करन-कर्मक चित्त कावत ।  
मन-बच-करम और बाँहे आनति सुमरति श्री सुँमरावत ॥  
मिष्याकश्च उपाधि-रहित है विमक-विमक अस गणत ।  
बचन-काम-कठिन से पढ़िछे सोरु कवि महावत ॥  
संगति रहे सज्ज की लज्जुनि मय-दुख दुरि बसवत ।  
‘सुरशक्त’ का अमम-माम लें सुत परम-शक्ति पावत ॥

—सुरनागर

१ सत्संगति पुण्यैक्य क्या उरार नही कर सकती, वह (सत्संगति)  
बुद्धिची बढ़ाछे इरती है बायीमे न्ययका संभार करती है सम्मान बढ़ती  
है, पापको दूर करती है निचको आनन्दित करती है और सम्पूर्ण विषयमौ-  
में कीर्तिका विचार करती है ।

२ चित्तमें निरन्तर लक्षणा चिन्तन कचे का न करो, बनकी चित्ता श्री  
कोहो का न कोहो कसेके सम्बन्धी एक धनकी संवर्धन नौकाही संकर  
वास्तवसे पार करनेको काछी है ।

गास्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

बिबि सतसंग ब्रिषेक न होई राम-रुग बिबि सुखम न साई ।  
 सत-संगति मुर-संगक-मुख्य सोई कइ सित्रि मर-प्रायन कृष्य ।  
 सब क्वि-कषत्र हरि-भगत सुहाई पाप-वर्षि कुशाव सुहाई ।  
 अस बिचार जोइ कर सतसंग राम भगत तेहि सुखम बिहात ॥  
 कात स्वर्ग भयवर्ग-मुख्य भयिष तुका इक जंग ।  
 तुक न ताहि सकक मित्रि को सुख सब सत-संग ॥  
 नबिब सत-संग न हरि-कषा तेहि बिब मोह न माग ।  
 मोह गर्पे बिब राम-पद होदि न दद अनुराग ॥  
 बिब सतसंग भगति बदि होई, ते मर-निर्ब-पदे सब सोई ।  
 "अबै प्रदे दीनदवासु राषव साधु संगति पाइये ।  
 तेहि काम-वास समागमारिक पाप-नासि बसाइये ॥  
 जिनके मिळै सुख-दुख-ममान भमावतारिक गु भय ।  
 मय मोह कोम बिपाद कोष सुयोष तें सह बदि गय ॥

—बिनवर्षि

परम रसिक नागरीनासजी कहते हैं—

'सब सुग लौम-मरनें तपें ।  
 और उर न कहुँ भावैर इहई क भयें ॥  
 दुख-मूक प्रबल-पारग कदि न मानत कोइ ।  
 मुख राया बिहि बिबिनि को मन जानि है दुख सोइ ॥  
 मतमंग भंडुइ प्रब-परोबर कीरतन-मुख-नाम ।  
 कीजिये हरि केनि तिन को भैंतर नागरी नास ॥

- १ रामायण बानकांड ।
- २ रामायण उग्रकांड ।
- ३ रामायण मुद्गरकांड ।
- ४ रामायण उत्तरकांड ।

“मन बह कीच सगी नीच ।

उच्च-पद्म को चढ़त बाही कइपि मिचरी मीच ॥  
 मदन पाप को गवन करही म्यों बनी रद छेड़ ।  
 प्रबल अति नहिं दृढ़न रोके, रबौन भूरे की मेंड ॥  
 मिरथ आही रंग अपुन होत बाही रंग ।  
 बेहु ‘भागरिदास’ को पाते प्रमू मत्तमग ॥

६

“बिन सतसग मति प-दंग ।

फिरत डौबाडोछ मन उबाँ बिन कर्माँस तुरंग ॥  
 कबहुँ मिरि-गिरिडठल अति लम चढ़त अपेच ठतग ।  
 कबहुँ मुरख अमत जातुर तपज अग-अमंग ॥  
 कहीं तप मत्त हीन संजम कहा न्हामें गग ।  
 ‘नामनागरि’ बिन सपन सकल सखन भंग ॥

—नागरसमुच्चय

कबीर साहब कर्माँसे हैं—

“कबीर’ सगति साथी की कदे न विरफळ होइ ।  
 चहुँ होम्यी बौबन मीच न कइमी कोइ ॥”

७

“कबीर सगति साथ की योग करीज जाइ ।  
 दुरमति दूरि गैबाहमी दसी मुमति पताइ ॥”

८

मधुरा आवै द्वारिका मान जावै अगप्राय ।  
 माघ-सौमति हरि-आगत पिन कछु न आवै हाथ ॥

९

“मेरे सगि होइ जणे मूक भैष्ण णक रौम ।  
 बी ई दाता मुक्ति का वो मुमिरावै बौम ॥”

१०



“कबीर सोइ दिव मरु, जा दिव संत मिळहि ।  
बंढ मरें मरि-मरिफ पाव सरौरौ ब्यहि ॥”



“कबीर” जपन का बिदा बैठपा ब्यक-ब्यकस ।  
बाव मरीका कर कया जे होते बच पास ॥”

—कबीर-पावकी

“संघत कीजे संत की, जिनका पूरा मन ।  
कलठोके ही वृत्ति हैं काम मरीका बन ॥



“कबीर” समत साध की हरे और की ब्यधि ।  
संगत बुरी बसाव की ब्यठे देहर ब्यधि ॥”



“कबीरा” संगत साधकी की की मूली जाइ ।  
बीर-बाइ भोजन मिठे साकर-सांग व जाइ ॥”



“कबीरा” समत साध की ब्यों गंभी का बात ।  
जी कुछ गंभी दे ब्यों ती भी बात-मुखास ॥”



“रिद्धि-सिद्धि मोगू नहीं मोगू तुम वै येह ।  
जिमि-दिब संगति साधकी कर “कबीरा” मोहि दिब ॥



१ कबीर साहबका उक्त दोहा—बेतानकी गोबामा सुकलीराकके नाममे भी मिलती है । जैसे—

“सुलखी संगत-रापु की, हरे और की ब्यधि ।

संघति बुरी तु नीब की, ब्यठे पहर ब्यधि ॥”

परंतु यह दोहा “सुकली-साधकी” या “सुकली-सतसई” नहीं है ।

“रौम बुद्ध्या मोक्षार्थं दिवा ‘अधीरा’ रोह ।  
 ओ सुख साधु-सय मां सो वैकुण्ठ न होह ॥”



“एक बही आधी बही आधी हूँ सैं आध ।  
 ‘अधीर’ संपत् साध की करै कोटि अपराध ॥”

—संतवानीसंग्रह

सुन्दरदासजी कहते हैं—

“भ्रीति प्रबन्ध कौ परब्रह्महिं बीह सचै कष्टु मपत्त श्रीकौ ।  
 सुख हवै मन होह सो निरमल हूँत प्रमाथ मिटै सचअधीकौ ॥  
 योहलम्बाँन अर्बत चले कहैं ‘सुंदर’ जैसे प्रपाह नरीकौ ।  
 तदि तैं जीबि करै भिसि-बासर साधु कीसंगसर्दौ भति बीकौ ॥”



लत मिछै, पुत्रि मात मिछै सुख-प्राप्त मिछै लुचती सुखनार्ह ।  
 राज मिछै मज-बाज मिछें, सब सब मिछें मन-बौधिल फार्ह ॥  
 वै लोक मिछै सुर-लोक मिछै विवि-लोक मिछै वैकुण्ठुं ऊर्ह ।  
 सुंदर बीह मिछै सबहीं सुख संत-समागम हुरकम भार्ह ॥

—सुन्दरवित्ताम

अनमें श्रीमद्भगीवगोस्वामीजीकी उद्धव प्रति उक्ति भी देखिये  
 और मनन करिये, जसे—

तं भीमबुद्धय धदि हृष्णप्रेष्ठयरोऽपि या ।  
 गोपीपदाङ्गभूक्तिस्वृक्त्तुण्डमाप्मयाञ्चत ॥”<sup>१</sup>

—भीमदागतत वैष्णव तोपिणी टीका

१ मैं उन कृष्णके परम भेद तत्त्वा उद्धव—मछकी बंदना करता हूँ जो कि गोपी-पाद-पद्म-भूक्ति-रहित हृम दाना चाहते हैं ।

६९

उद्धवका मधुरा प्रत्यागमन

मग—मार्ग रस्ता बगर वात्र राह ।

अथर्न यत्तर्भ मागाप्यपन्थान पवयी सृतिः ॥

—अमरश्लेष १ । १ । १५

अभिस्रसि—अभिष्णप, आवष्टा, कर्मना, आशा ।

दृष्टकांसा स्पृहेहा वृद्धवांछानिप्सामनोरथा ।

कामाभिलापस्तर्पय साऽस्पर्ष्य अमरसाद्वयोः ॥

—अमरश्लेष १ । ७ । २७, २८

मग और अभिस्रसि शब्दक सुन्दर प्रयोग, यथा—

"मित ही इहि मग स्रति हीन छै तुम सब निपट मबेरें ।

—गंगवारै

किने मोक बेचीगी म्वास्त्रिनि कहि मन सो 'अभिस्रसि' ।"

—भामह्वरनशात

धीमन्नागवतमे श्रीकृष्ण कहते हैं—

मय वापीरनुसाप्य यशोवा मन्त्रमेव च ।

गोपालामन्त्र्य दाशाहो वाप्यघारुह्ये रथम् ॥ १

—धीमन्नागवत १ । ४० । १४

रथरूपनी कहते हैं—

"शब्द न प्रम बलिदान के पिबक पा-वर भूम ।

कतु न पस्य उद्धव नके गतै पावन भूम ॥

—उपाध्यायश्लोक

१ इन प्रश्नर उद्धवजी गोविण्णि ब्रह्मगते और शप नंगे भय्य गि और गोवामे मिमहर मधुर आनेके निमित्त रथर चले ।

ब्रह्म-माया-माताके लखिने स्वर्गीय रत्नाकर-प्रीने उद्वलके मथुरा  
प्रत्यगामनपर बड़ी सुमधुर सुकियाँ कड़ी हैं जैसे—

‘बोईं जित-वित ते बिराई-हेतु ऊपब की  
गोपी-भरी आरति सम्हारति न सौंसुरी ।  
कई रतनाकर मयूर-वराह कोऊ कपे  
कोऊ गुन-अंखी केमाई प्रेम-बोसुरी ॥  
माक-भरी कोऊ कपे कतिर सखाय रही  
कोऊ मही मंठ नाबि दूककति पौंसुरी ।  
पीठ-पट बंधु, असुमति नवनीत मयो  
‘कीरति-कुमारी सुरबारी रही बौंसुरी ॥’



‘कोऊ सोरि हाथ कोऊ बाहु नजता सों माथ  
भापन की सखल कपकना बहि जगत हैं ।  
कई रतनाकर कस्तुर उति ऊपब के,  
क्यतर द्वै प्रेम सों सफळ मदि जात हैं ॥  
मबधु न पावत सो माव वैमगप्रब जो  
ताकि-तुकि भौवन इनो-से ठहि जात हैं ।

१ निम कवि करते हैं—

प्रात ही जगोपा-नंद यू सों अनुनामन मे  
बड़ ही उनामन से मिले हैं सम्मान या ।  
निम बू सुकसि से रोदेस्ये बय भर्त्सन की  
रथ पै चढ़े हैं ऊपौ बड़ उनमोन गो ॥  
उपमोन-बेत बहु भेंद दई नंदराज  
नैन-भरि कही प्रदो कदियो यो कौंगद ना ।  
भापन की औप आन भौम हम पारि रहे  
येगि ब्रह्म आश्रमे यै रागे पनौन मो ॥

रंजक हमारी सुभों रंजक हमारी सुभों  
 रंजक हमारी सुभों कहि रहि जात हैं ॥  
 \*शक्ति-शक्ति छाती पाती-किरान बनवपौ सबै,  
 श्योत किराने कौ पें न कोऊ करि जात है ।  
 कई 'गतनाकर' फुरति बहि जात कहु,  
 हाथ धरवौ ही-तक यहरि धरि जात है ॥  
 'कौबी कौ बिहोरें केरि मँकु धरि ओरें वै-  
 देसौ बंग-ताप कौ प्रताप भरि जात है ।  
 सुनि जाति जाही केकिनी के मँकु बंक कगों  
 अंक कगों कगारु बरि बर जात है ॥



कोऊ बडे कौपि संग कोऊ उर-कौपि बडे,  
 कोऊ बडे कहुक भग्यावि हसकक से ।  
 कई 'स्तनाकर' सुदेस तजि कोऊ बडे  
 कोऊ बडे कदत सिदेस अवरिक से ॥  
 औसु बडे काहु के सु काहु के ईमास बडे  
 काहु के द्विप पें परहास बडे हस से ।  
 कपक क ककत कलावत कली कौ कक-  
 ककक बडे कौ ककके हू भपु कक से ॥



'श्रीश्री' प्रेम-प्रेम-गण्डार्-गुन कपक कौ  
 द्विप सौ इमेक-हकडार् बहिराह कें ।  
 कई 'गतनाकर' त्यों कंचन यनार् काहु  
 श्योत-अभिमान की तमार् विनसाह कें ॥  
 कातकि कौ बीक मों यमाइ चहुँ बीरनि ली  
 निज बिरहानक तराह विनिकाह कें ।

गोप की बहरी घोंस-बूँटी के सहारों मात्र  
कल-चित्त परि की भस्म भुरकाह के ॥ १

'गोपी ग्याह बंद जसुधा सों ली बिदा है उडे,  
कहत ब पीह वै उद्यमन धगत है ।

कहे 'रतनाकर' सँभारि सारथी वै सीदि,  
हीदिनि-बचाह कधवी चोर ज्यों मगत है ॥

कुंजव की कुंज की कर्मिणी को कपूरी-दूसा  
देहि-देहि जौस जो उद्यम उद्यमन है ।

रव तें उठरि पप-पावन जहाँ-हीं-तहाँ  
बिहस-बिहसि पूरि-सोईन कगत है ॥

'भूके जोग-जोग घोंस-जोग-निहारि कचो  
सजुबि सँभले उर-अंतर हरास-जो ।

कहे 'रतनाकर' प्रमाद सब उठे भए  
सुँने भए जेन-जेन धरम उदास-जो ॥

सँभरी पिदा सोंगत ज्यों सँभ उर भँस-जो  
कर्मियों सोंग-गोंग-निज-दिव के दुखस-जो ।

बिहसति सोंस-जो कलन ककि जात केरि-  
जौस-जो गिरत पुनि उद्यत उद्यम-जो ॥

—उद्यम

१ कविबन्धुग्यो कहते हैं—

'एवरे कहे सँ हो गयो हो बस-धर्मन वै  
देवति ही माहि कियो जने-द-भयण है ।

कहे सँ विहायी अत गत में मभूके उठे  
परत बन्द को बपल ज्यों अंगण है ॥

'ज्यल कवि' कहे त्यागी कष्ट-दवादिनि की  
दौरयो में तहाँ तें सोह सुखयो बुधाय है ।

योपी-विहायिनि में जोग उदि गयो ऐम  
ईसँ उदि अत परे पाक में पाय है ॥

राजत—सुशोभित बैठे । रस-मरे—रससे मरे, प्रेम-संपुक्त,  
मीठे मधुर, अल्पदे । स्वबिले—प्रिय, प्यारे, दुष्टारे, नटछट ।

राजत, रस-मरे और अद्विले शब्दोंका सुन्दर प्रयोग, पदा—

राजत' कौन है सुभग तरोमीं मती सूखे है छले ।

—कल्याणराव

'रस-मरे' लारे अति कत्रारे मीनों पीय परे सी मधुकर ।

—गुरारीदास

'रहि-रहि बैर के 'काकिने' कित पेशी इतराव ।

—सुरदास मदनमोहन

श्रीमद्भागवतमें उक्त भावपर श्रीशुक कहते हैं—

कृष्णाय प्रणम्याद् भक्त्युत्प्रेरुं प्रतीकस्ताम् ।

वसुदेवाय रामाय वाडे लोपायकाम्यदात् ॥

—श्रीमद्भागवत १ । ४० । १९

अर्थात् उद्धव, मयुरामे पहुँचकर, श्रीकृष्ण और वज्रामसे प्रणामकर तथा ब्रह्म शर्मियोक्री मति विशेषता शिनेय रूपसे प्रार्थना कर नन्दशक्तिद्वारा दी गयी भेंट वसुदेवजी और महाराज उग्रसेनको दत्ते हुए ।

श्रीमती भक्त्य-भावपर सुरदास 'निज' जी कहते हैं—

वा किधि मुकवि निज' वैह मज-मज्जन की

भक्तपर उद्धर माहता ही भाए है ।

राम-कृष्ण-शक्ति स्वमित मधुपुरी-मोहि

मभा-सीधि उमसेन मू की सीरा भाए है ॥

नद की नजर है अनंद सों नृपति धारें  
 कुम्भ-जल लू के पग बौंसुल मिराए हैं ।  
 यदि बसुदेव लू कों सब की कुम्भ कहि  
 बाम्नी जो रही सो जौनि हरि मुमिकराए हैं ॥

—गोपीप्रियमीमूषप्रवाह

अथवा—

कमुक देरि करि के निष्पन्न होस-इवास सम्हारि ।  
 उद्वह बोझी छौम सों हूँ मिया-पग-धारि ॥  
 भौंखिब में छायो अनुताग कदना की बह  
 उर में सीमाथी प्रेम पुंज की मँझाल है ।  
 'नवबीत' प्यारे भा गरे में प्रीति-कौंसी परी  
 हरी मति मेरी देखि छोपिब की हार है ॥  
 प्रीम होत छाती बात सुन्य तें कहत नाथ  
 खोग की सहाते सोनौ जस्यो तत-काज है ।  
 कदा कहों आप सों कृपास म्पिरी नद-काज  
 मज-काज हराक कहिये कों कम-जस है ॥

—नवनीत कवि

रत्नाकरजी कहते हैं—

'कक-बिठ-पारद की दम-कंचुकी के दूरि  
 अत्र-मग-भूरि में-भूरि मुम-सीधी छै ।  
 कहे 'रतनाकर' सु जागिनि-बिर्षाव भाव  
 अमित प्रमोद-गदौन-नाथक तुभीधी छै ॥  
 जरि बट-अंतर ही आह-भूम धारि सबै  
 गंधी-पिरहागिनि निरंतर अगीधी छै ।  
 अए कौटि कषत्र विभूति मध्य-भायनि की  
 अविनि की रचिर रसायन रसीधी छै ॥



'आपु' कीटि करिअध बधायें नैव ऊची जव  
 सब सुख-सुधन की सुखी-सों कउन है ।  
 की 'रतनाकर' गीधायें गुन-गौरव औ-  
 गत्व-गती की परिपूरण पवन है ॥  
 आपु बेंन-नीर पीर-रसक कम्मयें तर,  
 शीकटा अधीन्य के मास्-सों कउन है ।  
 प्रेम-रस अक्षिर बिराग सुमरी में परि  
 म्बान-गूदरी में अनुत्प-सो रवण है ॥  
 'ग्रीही' कसु कइव सरेसै कम्पौ एवो हो कम्पौ  
 प्रेम-पूरि उमगि गरे को कम्पौ क्यवे है ।  
 की 'रतनाकर' न पौह टिक पौबे नैकु  
 ऐसी ह्य-हारन सधेगि कज्जो क्यवे है ॥  
 म्बुपुरि-नाहन की धेगि कसु क्योत गरी  
 काह क्यो वर के न जी वे क्यवी क्यवे है ।  
 क्यवी मम्बो भूपति-मगौरव-की हो ती धव  
 साय क्यवी छोई पुष-पाय क्यवी क्यवे है ॥

—उद्धवधरक

७१

भगवान् श्रीकृष्णसे उद्धवक्य गोकुल-वृषान्त-कथन

मूँटी—मुट्टी, हाथकी वह मुदा—बनानेकर 'रंग' जो कि  
 रेंगलियोक्यो ह्येरीपर मोहनसे—दधानेसे बनती है, किसी बरानके  
 छियानेकी एक क्रिया । क्यलं-की—अधय मानते हैं, सकार केते हैं  
 शरण हैं । मेअै—गेरो, पक्के, पेंके बाल्ये ।

मूँटी, क्यलंकी और मेअै आदि सुन्दर कर्मके सरस प्रयोग,  
 यथा—

'भरि मूर्खी' मूर्खी मुख सेही, स्वर्णा कहत सब बाये ।

—परमानन्ददास

'हृष्य अश्रु' हे हसीवर, बाप तुम जगजंबूई ।

—सुरदास

'गहि दीऊ पौह' कौमसुंदर तब भेंजुक धरनी 'मेखी' ।

—परमानन्ददास

कुछ ऐसा ही प्रेम-मरा उल्लाहना स्वर्गीय सत्यनारायणजी  
कविरामने भी दिया है, जैसे—

भाजन बाप सत्रों के कोरे ।

हीन-बुद्धी को तुम कौं औचित स्त्रे बौंनिधि के मोरे ॥  
 किंतु बात यह तुम सुभाष में पैकहु जानत नौहीं ।  
 मुनि-मुनि मुखस राजरो तुबदिग भाजन कौं ककचौही ॥  
 बस बरें तुम कौं बस-मोहन मोह न तुम कौं करी ॥  
 कल्या-निधि तुब हूँ न पकौ-कल्या-विदु सैमाबै ॥  
 केति एक कौं बेति वृत्तैहि दीनी बस बस-मौहीं ।  
 ऐसी हेर-केर निर नूतन करनी रहत सत्रों हीं ॥  
 भौंति-भौंति के गोपिन के को तुम प्रसु थीर-पुराप ।  
 भक्ति उदारता को छे बेही प्रीपदि कौं पकराप ॥  
 रत्नकर कौं मक्त सुभा कौं ककस व्याप जो पाबी ।  
 मंद-मंद मुक्तिगत मचोहर, स्त्रे बेबैन कौं प्यापी ॥  
 मत्त पकड़ कुबळिया के को खेक-प्रौन हरिबीप ।  
 बही दबा परसाह बपाविधि सौं गजेंद्र कौं बीप ॥

● उक्तभाषणर रचनिधिबी करते हैं—

धुमठ बग के रचन कौं मोह बगल के आदि ।

निरमाही भी होइ पर कौन भावरव आदि ॥

—रतनद्वारा

करि के निचल बाकि-राजन की राजपाट की जायी ।  
 तहँ सुखीय बिनीयन की करि अति अहिर्लोक विद्यायी ॥  
 पोंडरीक की सरबसु अतिअति माक-मला को कियो ।  
 ता की बिम सुवामा के सिर करि सनेह मदि दीपी ॥  
 ऐसी एमा पकटी के गुन भेति-भेति खुति गावें ।  
 सेस महेस सुरेस गनेसहँ सहसा कर म पावें ॥  
 इत माया जगज-सगर तुम डोबहु भारत-जैया ।  
 रवि महाभारत कहूँ करावत जगु में जैया जैया ॥  
 या करन जग में प्रसिद्ध अति निपटी रकम' कदाभी ।  
 बड़े-बड़े तुम 'मग्य हूँगारे' बनों सीधी सुखवासी ॥

अवध—

'मायब तुमहँ भए के-सक ।

बुद्धी हाक के तीव पात हौ करै क्यों म कोक जल ॥  
 मल-जमल एक से गिरखत कहा होत गुण-गणें ।  
 जैसेहि कीर-रुचाए तुम को बैसँहि सीग-दिखाएँ ॥  
 सबै घौन बाहुँस-पसेरी गिय तोकन सौँ कौम ।  
 पकिहारी नहिँ नेंकु बिहित तुमहँ छँच-जीच की कौम ॥  
 के पैरी के खेय के सम तर मति-गति एरसाही ।  
 कसु की कसु मसु काज-करन में तुमहिँ काज नहिँ जावे ॥  
 जगज-पिता कहिबाहूँ भए तुम कब पैये के-वीर ।  
 दिन-दिन हुपुन बदावत की नित होह-जोपरी कीर त  
 जग करि ओरि धारना पैही बिम-माया धरि राखी ।  
 'मल' रीब-बुधियनु के दित की मरप-हरप कभिसाखी ॥

७२

मातरु—नहीं तो ।

नातरु शब्दका सरल प्रयोग, क्या—

बकी हरी मग तजी सीबरे 'मातरु गुळचा बीदा ।

—मधुरमयी

श्रीमाधव महाधायत्री अपने 'उद्भव वृत्' महाकव्यमें कहते हैं—

वीतासंगा शयनयमनस्नानपानाशानाद्यौ

गायस्थस्यश्चरितगुणिताः संतत गीतगायाः ।

श्रीदासीन्यं किमपि सकलां बंधुभूवे बहृत्यो

गोप्यो स्त्रीलासितियु भयतो योगिनीषद्भर्मति ॥

अर्थात् हे भगवन, गोपियों शयन, बसन, स्नान, पान और भोजन आदि सम्पूर्ण विषयोंसे आसक्ति हटाकर निरन्तर आपके ही चरित्रोंसे चर्चित गीतोंको गातीं अपने बन्धु-जनोंके प्रति अति उदासीनता दिखाती हुई आपकी छीसा-भूमि ब्रजमें योगिनियोंके सम्भ्रमण कर रही हैं ।

कोई कवि कहता है—

शीर्णा गोकुलमडली पञ्चकुल शप्पायन स्पन्दत

मूक्ष कोकिन्संहति शिलिकुल न व्याकुसं नृत्यति ।

सर्वे स्थद्विरहण हन्त नितरां गोविन्दैर्द्वैर्भ्य गताः

किन्त्वेक्य यमुना फुगगमयमानेश्रायुभिषर्षते ॥'

अर्थात् हे गोविन्द, आपके बिना गो-बायकोंकी मदली अस्त व्यस्त—नितर नितर हो गयी है, गौण भास चरनेकी चेष्टा नहीं करतीं,

कन्येयमोंने बोलना छोड़ दिया है और व्याकुल मयूर अब आपके बिना नाचते नहीं इस प्रकार आपके सिखसे सभी दीन और क्षीण हो रहे हैं, परन्तु एक यमुना ही गृग-भोचनी वजाफानाओंके रोदनके कारण आँसुओंसे निरन्तर बह रही है ।

धीसूर कहते हैं—

‘रहत रेंगि-दिन हरि-हरि-हरि-रद ।

कितबत इकठक मग-बखोर-धीं अब तें तुम किसुरे नागर-बद ॥  
भरि-भरि नैन-जीर छारत हैं स-बक करति बति कंजुकि के पद ।  
‘जहाँ तिरह की छरवा-भति कियो नैन प्रेम सिख-सीस सहस बद ॥  
जैसे तुग के अप्र बोस-कन प्रीन रहत धौं अशुधिहि के छद ।  
सूरदास’ प्रभु मिकौ कृपा करि जो दिन बड़े तेक जाए निकर ॥

‘दिन-दख जोप कडी गोपाक ।

पापन के बहसेर मिटावौ केहु आपने म्वाक ॥  
बोचति माहि मोर छ-दिन तें बोक न बरपा-बख ।  
सुग वृबरे तिहारि बरस-बिन सुबत न बेंनु-रसाक ॥  
हरषै न होत बबै हुंदावन मावत तनकन कौम तमाक ।  
सूरदास’ मैवा’ जनाय है मत्र बखिये नैनुषाक ॥

—सूरदास

नागरीदासजी कहते हैं—

‘कीकें सुभे कौम-सुभौन ।

कौन मावें बात बीरस सकक मत्र रस-कौन ॥  
तुम छुई बिधि-बेद-बकता मबद श्री भगमौन ।  
तुहि मबोहर मंहसी मी कयो न राक्यौ म्यौन ॥  
कबहुँ तुम कौं छे नचायो जोरि पौननि-पौन ।  
कबहुँ प्चायो सुखद चरनन कियो वन बच मौन ॥

कवहुँ बेंनी गूँधि बिज-कर पग महावर सौँन ।  
 कवहुँ डाँड़े जोरि-कर करि दीव-भित-स्वमौँन ॥  
 प्रेम-जागें नेंम की कसु कसुत नौँहि निर्दौँन ।  
 रिखी डी हूँदे वहाँ वरों नचछ-‘बागर’ प्रौँन ॥

—भ्रमरसमुच्चय

सुकप्रि नंदरामजी कहते हैं—

‘सीर समीरम की बह इकनि कैकिवा-कुकनि वरों सहि जाहगी ।  
 कैसी बिहाक परी बह बास तधी-तन-तापम सों रहि जाहगी ॥  
 हाव कसु पुनि कगिहि नौँहि नेंद्राम’ द्विपु की द्विपें रहि जाहगी ।  
 हाक मिस्री नेंद्रकण्ड न ली भँसुधान की चार-ही में रहि जाहगी ॥

—द्वारा

निज कवि फमनि हैं—

बंद छठ गौहू अपनंद नीक बननी जी—  
 असुमति गोपी आछ सला छौँ बरे रहैं ।  
 गणव बच्छ, पंछी पसु भँसुवा न गूलै दग  
 बेधी तुम कक, पात मुरसि बरे रहैं ॥  
 निज जूँ तिहारी एक आगम की आस ही वै  
 सौँसन में राखें प्रौँन नौँकन बरे रहैं ।  
 जोलिन न क्येलेँ नेंद्र सुकहुँ न कोछे-  
 तन तनक न कोछेँ सच मरे से परे रहैं ॥

‘भापरजी कहते हैं—

‘पुरो नेंद्र बंद अरविद-मुनी गोहूँन की  
 तुम बिन बंद बौँदिवी-कौँ बरिबी करेँ ।  
 कहे ‘पदमाकर’ पुराने पीरे पौँन हूँ तें  
 निपर निर्दौँन पीरी पीरी बरिबी करेँ ॥

हृदयमन चंद्र चू की आगही गली से मली  
 बेलनि के नीर तें नदी-सी हरिबो करे ।  
 मिठि-मिठुरे हो एवों ही बिहुर-मिठुरे केरि  
 पाही एक जासा वै एवोंसा भरिबो करे ॥

—अग्निनोर

चतुर्वेद उरणमत्रो कइसे हैं—

एहो बंक कोचन, मिठोचनि सिहारी लीकी  
 चुमी कित-बीबि की कसक हरिबो करे ।  
 अंतर दरज बुकि चोकिकी बरनि मनो  
 मरुन-सुमार बरराज गविपी करे ॥  
 की 'उरसाम' धेरे गुंजन कस्यम ही  
 मेरे जौन ताही के उचौन पस्बो करे ।  
 मिठि-मिठुरे हो एवों ही बिहुर-मिठुरे केरि  
 पाही एक जासा वै एवोंसा-भरिबो करे ॥

—गोपीप्रेमसिपूपप्रयाज

७३

कवि-द्वारा भगवत्-दृशा वर्णन

गात-शरीर, गात्र, देह, तन, अंग ।

गार्त्रं यपुः संहत्म शरीरं यप्य विग्रहः ।

कायो देहः इन्द्रियपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः ॥

—अमरकोश २।६।७, ७२

कल्पतरुकेन्द्र—बृहत् विशेष, स्वर्गकन्द्र—दक्षताओंका एक बृहत्,  
 जिसके त्रिये कहा जाता है कि वह बिना मांगे सब कुछ देता है,  
 अभिलषित—इच्छाके मानिक फल दनवाला, सुरद्रुम\* । तत्रदि—

\* इच्छित फल देनेवाला ।

उमड़कर, निकलकर, फूटकर, प्रसफुटित होकर, फूलकर ।

कल्पतरोरुह शब्दका प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता, अतः अतः अतः और उकड़ि शब्दोंके (अन्य) प्रयोग लिये जाते हैं, यथा—

‘सौम-यात’ बौबन की सोमा मंड हैंसनि मेरी जिव ककचये ।

—निष्पुदात

आए उकड़ि कंबुकी कुच कसु सोम कहत न जाये ।

—स्यामदात

कुछ ऐसी ही दफनीय दशप्रका वर्णन स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ दास ‘रत्नाकर’ ने भी किया है जैसे—

‘जाए हौरि पौरि-कों कबदि सुनि कबच की  
और ही बिछोकि वसा रग-भरि केति है ।

कई ‘रत्नाकर’ बिछोकि बिललात उन्हीं  
ए ऊ कर कौपल कोजें चरि केति है ॥

आवति कहूक वूडिबे जी कहिबे कों मन  
परत न समहस पै दाऊ वरि केति है ।

बौबन उदाम मौस-भरि उकसींई करि  
सों करि नेनलि निचोंई करि केति है ॥

—उदयरातक

७४

### उद्व-प्रति भगवान्का प्रमोपालम्भ

सपत्न—स्वस्य चित्त होकर, सावधान हाकर, चौकस्त हो, मन को डौंस देकर सचेत होकर । त्यागन—लेने, लेनेको, देनेके लिये । ओनि—जाकर । मो में—मुझमें । अंतर—तृपकता में, विभिन्नता अन्वयाव, फल ।



अतरमवकाशावधिपरिघामास्तर्धमेवतावर्ध्वे ।

छिद्रात्पीपयिनावहिरयसरमर्ध्वेऽतरात्मनि ॥ ४ ॥

—अमरकोष १।१।१८०

तरंगनि—तरंगों, लहरों, पानीकी उछलने जो कि हवाके कारण उत्पन्न होती हैं<sup>१</sup> छिछोरे ।

मगस्तरय ऊर्ध्वौ स्त्रियां वीधि अयोर्मिषु ।

—अमरकोष १।१।५

वारि—जल, पानी, नीर, अम्बु ।

मापः स्त्री मूञ्जि वार्योरि सलिल कमलं उखम् ।

पपः किल्लाछम्ममृत जीवनं सुवन धनम् ।

—अमरकोष १।१।१

सधेन न्यवन, बौनि, अंतर, तरंगनि और वारि शब्दके सुन्दर प्रयोग ।

‘करि अवेता डै वाम इरी की वार्ते पाप कसौइ ।

—बानरहित

मरहण भोज सुबळ मज्जुमगळ परणु ‘स्वावन’ छक ।

—अनुमाशान

‘बौनि’ छेइ तुम एक अपणी वासक, वळ, वकवारी ।

—परमानन्ददास

होऊ हूँ त्वंम ‘तरंगनि’ सीधी मज्जुनीं जगत बैकुण्ठ की किसेवी ।

—हीतरवामी

परमत ‘वारि’ सबळ जप माऊं ज्यो इरि-इनि हिरन की सिन्धा ।

—ब्रजपति

१ वायुमा नचादिअस्स सिर्बगूळंअन्नम् ।

श्रीसूनी कहते हैं—

‘ऊषी मऊँ बरौ ब समुझमौ ।

पुन सो बब पौ कहा कइत हो मै कइ कहि पछपौ ॥  
कइ बाबत ही बके चतुर वै बहौ ब कसु कहि जायौ ।  
‘सूरदास’ बज-बासिन की हित हरि-हिय मँसि बुरापी ॥

‘ऊषी मोहि बज बिसरत नौहीं ।

हुँदावन गोकुल तब बाबत सभब तूँब की छौहीं ॥  
महत-समै मरत बसुमति औ नंद वैलि मुक पाबत ।  
मोकल-रोटी-दही सँओपौ अति हित सी हु कनकत ॥  
गोपी ब्याक बक सँग खेळत सब दिन हँसत सिरात ।  
‘सूरदास’ बनि-बनि बज-बासी बिन सौं हरि मुसिकत ॥

‘ऊषी मोहि बज भूकत नौहीं ।

हस-मुता-कृष्ण की सँमा बह कइ ब की छौहीं ॥  
बह सुरमी गऊ, बच्छ, हौंदिनी किरक-बुहावन औंहीं ।  
ब्याक-बाक निकि कस्त कुक्याहक, निरछत गहि-गहि नौंहीं ॥  
किस बहुत-मोहि हम कीकी बसुमति-नंद निबौंहीं ।  
बज-बज सुरति होत बा मुक की सँगत नम नम मँषी ॥  
पै इरिकर रबी हु कनक की मनि-मुछा बकि नौंहीं ।  
‘सूरदास’ प्रमु मुमरि-मुमरि-मुक कहि-कहि बौं पछतौंहीं ॥

—सूरदास

उदय-प्रति मगवान्-द्वारा कहलाते हुए श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

‘मोहि गोपी-जन कहि बिसरत ।

उबकी प्रीति-रीति भंतर की तनक न मुक तें बिसरत ॥  
सबहि चतुर सब नौंनद-मूरति सब तन प्रेम बखेद ।  
दिन में धीराबा के मेरे एक प्रीत है-बंद ॥

अपि बिभी ह्ये भ्रमरावति-ञ्चै रसौ सचक मुक्त ह्येह ।  
 तद्यपि सुधि व्यक्त मज्ज की ज्व तव सुधिकी सुधि व्यह ॥  
 कर्षी परम प्रबोध सत्ता विम तुम विम कासीं कर्हिपे ।  
 'आगरिदास' हुसह मन-ही-मव विरह-वीर विम सङ्घिपे ॥ ७

हमारे परम माननीय स्वर्गीय कवि मकमीतजी कहते हैं—

उदि गई सिद्धता तिहारी उचवेस ही की  
 हृदि भई भक्ति दिपे भक्त-भूरि भरे तें ।  
 'ब्रह्मवीत' सगुन स्वरूप जो ममात्मी व्यह  
 निरगुन-विसारि भावो मीति उर धारे तें ॥  
 उम ही की बीर तें सिद्धरस करन कासी  
 मयि व्यसो विरह-द्वयसि-हर करे तें ।  
 जोग भरि बावो भी विद्योग भरि पावो कर्षी  
 बीवत ए भावो भैवा भाव्यन ह्येमारे तें ॥  
 'उद्धव विष्णु किलोकि के कलि कुबजा धर्मिनीव ।  
 गोपिक-सुत दरसन विपु, नैव-नन्दन भगमोन ॥

तरंगनि-वारिण एक सुमपुर सूक्ति और सुनिये, जैसे—

'सत्यपि भेदापगम माय तवाह न मामन्वितस्त्वम् ।  
 सामुद्रो हि तरंगः कञ्चन समुद्रो न तारंगः ॥

—श्रीमद्भक्तिसुखाप्तिसंग्रहः, १

● उक्त श्लोकर भक्तिपुराण की एक सुमपुर सूक्ति हमें भी बार  
 बार गयी है जैसे—

न तवा न विपत्तमा ब्रह्म रुद्रश्च पार्ष्णि ।  
 न च ह्यग्नीर्न चाराम्य च बवा गौरीकन्दो मम ॥

—भक्तिपुराण

अपार-ब्रह्म, रुद्र हरमी और स्वयं मेरी भारमा भी मुझे उतनी  
 प्रिय नहीं है किन्तु कि गोपिनी है ।

अर्थात् हे नाप, मुझमें और आपमें भेद न होनेपर भी मैं तो आपका ही हूँ, किंतु आप मेरे नहीं हैं, क्योंकि तरंगें समुद्रकी होती हैं, तरंगका समुद्र नहीं ।

७५

### कवि-कथन

व्यामोहक (पद्यतर्गत)—मोह उत्पन्न करनेवाली, विमोहक, मया । अर्थ—जात्री, परदा, माया । पुञ्जनी—देनेवाली; पूर्ण करनेवाली । परिपूर्ण, शोत-प्रेत ।

व्यामोहक, ज्ञारी और पुञ्जनी शब्दोंका सुन्दर प्रयोग, यथा—

सकल लोक विचाराइ मात मुक्त करि गई व्यामोहक-ज्ञारी ।

—परमानन्ददास

प्रेम-पुञ्जनी रस-मै लीला मधु और मुनाषी ।

—इन्द्रावनदास

॥ इति शुभम् ॥



● श्रीनन्ददासजीके इस छंदमें—'प्रेम-रस-पुञ्जनी' क 'पुञ्जनीका अर्थ करने हुए भीविद्यार्थी हरि और ब्रह्मरत्नदासजी अर्थात् इसका अर्थ भेदिके बिना वा देरी मान्य है जो कि उचित प्रतीत नहीं होता । कारण, पुञ्ज शब्द से पुञ्जनी नहीं मन्त्र है अपितु यह किवाबिहार है—सकर्मक क्रिया है और इसका अर्थ जैसा कि ऊपर दिया गया है—होता है । उदाहरण भी मोग्ग दे आगे भूल-चूक छेनी-देनी ।

परिशिष्ट

## परिशिष्ट ( "कृ" )



भीष्टुक उवाच

वृष्णीनां प्रघरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ।  
 शिष्यो बृहस्पतेः सास्ताबुद्धयो बुद्धिसत्तमा ॥ १ ॥  
 तमाह भगवान् प्रेष्टं भक्तमेकान्तिनं कबिह् ।  
 गृहीत्या पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥  
 गच्छोद्यव मञ्ज सौम्य पित्रोर्नां प्रीतिमायह ।  
 गोपीनां मद्वियोगार्धि मत्सम्प्लेशैर्षिमोक्षय ॥ ३ ॥  
 ता मम्मनस्क्य मत्प्राणा मर्त्ये त्यक्तवैदिक्यः ।  
 ये त्यक्तस्त्रोकधर्माश्च मर्त्ये तान् विभम्यहम् ॥ ४ ॥

१—भीष्टुकदेवकी बोले—वृष्णियोंके सर्वभेद मन्त्री, मन्त्रान् वृष्णके  
 प्यारे लता और घरबागतीके बुल हरनेबासे बृहस्पतिके मायात्  
 शिष्य बन्यात् परम बुद्धिमान् वा बुद्धिमानोंमें भेद उद्भवको मन्त्रानने बुद्धि  
 और उनका शय अपने हाथमें से तथा एष्यन्तमें से जाकर बोले— हे  
 उद्भव ! हे सौम्य ( निर्मल ) ! तुम मन्त्रको आओ । वहाँ मेरे वियोग-  
 पीडित पिता माता और गोपियोंको मेरा उद्विष्ट देकर उनके बिरह  
 दुःखको दूर करो; क्योंकि इन गोपियोंका मन मुझमें ही लगा रहा है और  
 मेरे लिये ही उन अपने अपने देहके कृष्योंको छोड़ लिया है । उनमें ता बल  
 ही बना जो कोई भी मेरे लिये एक और पमक्य त्याग कर देता है उनका  
 पछन-प्येपव मैं ही करता हूँ ॥ १-४ ॥

मयि ताः प्रेयसा प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलस्त्रिय ।  
 स्मरन्स्योऽहं विमुह्यन्ति विरहोत्कण्ठपयिङ्गला ॥ ५ ॥  
 धारयत्यतिक्रम्येयं प्रायः प्राप्यान् कथञ्चन ।  
 प्रत्यागमनसद्वेशीर्षल्लभ्यो मं मदारिमकाः ॥ ६ ॥

भीष्मक उवाच

इत्युक्तं ब्रह्मणो राजन् सर्वदा भर्तुराहताः ।  
 आदाय रथमारुह्य प्रययौ नदगोकुलम् ॥ ७ ॥  
 प्राप्तो नक्षत्रजधीमान् निम्बोबन्धि विभावसी ।  
 छन्नयाम प्रविशता पशूनां क्षुररेणुभिः ॥ ८ ॥  
 यासितार्थेऽभियुष्यद्विर्भावितं गुप्तिभिरुर्वैः ।  
 धारयतीभिश्च धार्याभिरुभोभादैः सवत्सकम् ॥ ९ ॥  
 इतस्ततो पिल्लंघनिर्गोयास्वैर्मण्डित सितैः ।  
 गोदाहशम्बाभिरयं वेणुना निःस्वमेन च ॥ १० ॥

मैं उनका प्रियसे मी प्रिय हूँ इसलिये मेरे विषम होनेसे वे  
 गोकुलकी स्त्रियों—नक्षत्रनारियों मुझे स्मरण कर-कर मोहित हो फिरदखी  
 उरकण्ठसे विद्वह हो जाती हैं ॥ ५ ॥  
 वे बड़ी कठिनार्थसे कितनी प्रकार प्राणोंको रत करके मेरे संदेश पानेकी  
 अभिलाषासे ही भी रही हैं ॥ ६ ॥

भीष्मकदेवकी बोले—हे राजन् । इस प्रकार मगधानके कहनेपर उद्यम  
 गतिमें संदेश कहनेके लिये रथपर बैठकर ब्रह्मको पक ॥ ७ ॥  
 स्याम्नाज समय लौटते हुए पशुभोंकी क्षुररेणुसे रक्षित रथद्वारा  
 उद्यम नंदके ब्रह्ममें पहुँचे ॥ ८ ॥  
 पर ब्रह्म पुनःकही गौर्भक्षि लिये अग्रसमें सहनेवासे मत्तगले हुएमौ

से शम्पायमान थीं । गौर अपने लक्ष्मि भरले मारुन्धित हाथे हुए मी  
 भ्रान्ते-भ्रान्ते पशुद्वारा बौद्धी थीं—उनको अस्त्रिगानके लिये उनकी भर जाती  
 हैं । इपर-उपर बौद्धते हुए लगे गौवाके पशुद्वारा मुग्धोन्मत्त ब्रह्म  
 गोदानके शम्पों संवरित और बन्दी-धनिते प्रपित है ॥ ९ ॥

गार्यतीभिश्च कर्माणि शुभानि पल्लवृष्णयोः ।  
 स्वरुहताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुधिराञ्जितम् ॥ ११ ॥  
 अग्न्यक्षातिधिग्नेषिप्रपितृश्रेयार्चनाच्चितैः ।  
 धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपायासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥  
 सर्वतः पुष्पितयनं त्रिज्याच्छिक्नुलन्वदितम् ।  
 हंसधरद्वयाक्षीर्षैः पर्यर्च्यैश्च मण्डितम् ॥ १३ ॥  
 तमागत समागम्य हृष्णस्वानुषरं प्रियम् ।  
 नवः प्रीतः परिष्वन्य वासुवेशभियार्कयत् ॥ १४ ॥  
 भोजितं परमान्नेन संपिष्टं कशिपी सुखम् ।  
 गतधम पर्यपृच्छत्पादसबाह्वप्रदिभिः ॥ १५ ॥  
 कश्चिर्दृगं महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ।  
 आस्ते कुशास्यपस्याधैर्मुक्ते मुचः सुहृद्वृत्तः ॥ १६ ॥

और वह ब्रह्म श्रीहृष्ण और कर्ममद्वारा किये गये शुभ कर्मोंका  
 गहन करनेवाली सुन्दर अस्त्रकारोंसे अर्पित गङ्गा-वासा और गोपीसे  
 सुषोभित है ॥ ११ ॥

वह ब्रह्म अग्नि, सूर्य, अतिथि, गे, ब्राह्मण और पितृदेवताकी पूजाके  
 धूप, दीप और माल्यसे सुशोभित गोपीक घरोंसे बड़ा मन्दोहर है ॥ १२ ॥

शारों और कृन्ध हुए बनाते सुशोभित पक्षी और अमरममूर्होंने  
 शब्दापमान है और इन चरद्वय ( ब्रह्मकृष्णकुट ) आदिसे सुख पद-ममूर्हते  
 मणित है ॥ १३ ॥

श्रीहृष्णके अत्यन्त प्रिय अनुचर उदयको अस्या देव्यकर भीर्नद वावा  
 अति प्रसन्न हुए और उनका आर्त्तियन कर ( उनका ) अर्पन किया ॥ १४ ॥

रत्नसे मोहनक उतरल्ल उद पर्यगार तुल्यपूर्वक बैठाकर नंद वावा  
 उनकी पाद-सेवा करते हुए वह पूछने लगे ॥ १५ ॥

उदयकीसे वावा नंद सोने कि हे महाभाग ! हमारे मित्र-शूर-मुच  
 बसुदेव फणन-रिमुक्त हो सुहृदोंके साथ पुष्पादि-नदित कुशादता हैं ॥ १६ ॥



दिष्टया कसो हतः पापः सानुगः स्मेत पाप्मना ।  
 साधूनां भ्रमरील्लाना पवूनां द्वेषि या सदा ॥ १७ ॥  
 अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।  
 गोपाम्यश्च चारमनाथं नाथो वृन्दावन गिरिम् ॥ १८ ॥  
 अप्यायास्यति गोपिन्ः स्वजनान्मसकृदीक्षितुम् ।  
 तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनखं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥  
 दावान्नेर्वातवर्षाश्च वृषसर्पाश्च रक्षिताः ।  
 दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥  
 स्मरतां कृष्णधीयाधि स्त्रीभ्यपागमिरीक्षितम् ।  
 हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥  
 सरिच्छेद्यनोद्देशान्मुकुन्दपद्मपिठान् ।  
 भाङ्गिनीशमाष्वनां मनो याति तदारमताम् ॥ २२ ॥

पानी कंस भ्रमने भ्रमराके छाय भ्रमने पपझर माय गना, अन्ध  
 दुग्ध क्येकि वह स्या भ्रमरीक और साधु गार्हति होव करता या ॥ १७ ॥

क्या कृष्ण भ्रमरी माता और सुहृद् सखाओंके छाय हमारी गौत्र्ये,  
 गोपों और भ्रमने द्वारा रक्षित बच, वृषाकन तथा गोवर्धनको कभी  
 बन्द करते हैं ? ॥ १८ ॥

हे उद्वेग ! क्या गौर्विह भ्रमने कनोंको देखने नहीं ( प्रथमे  
 आवेंगे । क्या फिर हम उस सुन्दर नासिद्ध और नैत्रोद्यते हंसते हुए  
 मुलको देखेंगे ॥ १९ ॥

क्येकि दावान्म पवन क्या अरिष्टाक्षर और अस्मिन्सर्वे  
 उसने हमारी रक्षा की है । बड़ी-बड़ी मृत्युओंसे भी उस सुहृद् आत्मा  
 कृष्णने हमारी रक्षा की है ॥ २० ॥ भीकृष्णक शत्रु परित्र, उनके स्त्रीक  
 सक्षित नैत्रोद्यते कन्याभय देखना, उनका हँसना बाळना, ये सब स्मरण  
 करनेसे हमारी क्रियाएँ—आंगिक कर्म सब क्षिप्त हो जाते हैं ॥ २१ ॥ नदी,  
 पर्वत और वनके वे प्रदेश—सब पिरोय को मुकुन्द भावान्के पदसे सुषोभि  
 हैं अथवा वहाँ वह लेते हैं देखनेसे हमलोकोके मन कृष्ण-मय हो जाते हैं ॥ २२ ॥

मम्ये कृष्णं च राम च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।  
सुरार्णा महदर्याय गर्गस्य पञ्चमं यथा ॥ २३ ॥  
कंस नागापुत्रमाण महौ गजपति तथा ।  
अत्रभिष्टां स्त्रीसयैव पशुनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥  
ताकृष्य महासार धनुर्पश्चिमिवेभराट् ।  
बभञ्जिवेन हस्तेन सताहमवध्वाङ्घ्रिम् ॥ २५ ॥  
प्रसन्नो धनुकोऽरिष्टस्वप्थापतां पञ्चवयः ।  
दैत्याः सुरासुगजितो हता येनेह स्त्रीलया ॥ २६ ॥

भीष्मक उवाच

इति सस्मृत्य सन्मृत्य नंदः कृष्णानुरक्तधीः ।  
अस्त्युत्कटोऽभयतर्ष्णी प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥  
यशोदा पञ्चमानामि पुत्रम्य चरितानि च ।  
शृण्वन्त्यभूप्यघास्त्राक्षीस्नेहध्रुतपयोधरा ॥ २८ ॥

हम मानते हैं कि भीष्मक और बजराम दोनों देवताओंमें श्रेष्ठ देवता हैं, देवताओंके पक्षे कार्य करनेके लिये पकारे हैं जैसा कि गर्गने कहा था ॥ २३ ॥

उन्होंने इस प्रकार हाथियोंके बलवाले कंसको उसके मस्तकेके और कुबलवापीट हाथीको सहज ही ऐसे मारा जैसे सिंह मृगोंके मारता है ॥ २४ ॥

उस हीन तासके परावर लक्षे धनुर्को उन्होंने इस प्रकार तोड़ घाटा जिस प्रकार हाथी किसी बलईको लड़ टाले और सात दिनोंके एक हाथपर गेवर्धन पर्वतको भी धारण किया था ॥ २५ ॥

किन्होंने मुर और अमुषीको भी जीत लिया—ऐसे प्रसन्न भेनुक अरिष्ट वृषाकर्ष और पञ्चसुर अरि देवताको मारा और सहज ही मारा ।

भीष्मकरेव बोले कि राजन् ! इस प्रकार भीष्मकमें अनुरक्त शय्य नंद उन ही बलोंको याद कर कर उलझासे गला मार जानेके कारण प्रेममें विह्वल हो चुप हो गये और माता बसोदा भी पुत्रके बर्णन लिये गये इस परित्रय सुनकर भौंसुभोंठे वृष्णीके भिगोने लगी तथा स्नेहके कारण उनके कान-हवसे दूध टपकने लगा ॥ २७-२८ ॥

तयोरित्यं भगवति कृष्णे नक्षत्रशोषयोः ।  
 वीक्ष्यानुराग परम नक्षत्रशोषयो मुदा ॥ २९ ॥

उद्भव उवाच  
 युवा दसाप्यतमौ नूनं बेहिमामिह मानव ।  
 नारायण्येऽस्तिष्ठगुरौ पत्न्यता मतिरीदृशी ॥ २७ ॥  
 एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुंदाः पुरुषः प्रधानम् ।  
 अक्षयीय मूतेषु यिलक्षणस्य ज्ञानस्य शेषात् इमौ पुराणौ ॥ २१ ॥  
 परमिजनः प्राणवियोगप्रसङ्गे स्वप्नं समापेक्ष्य मन्ये विद्युत्तम् ।  
 निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं प्रकृतमयोऽर्कधर्णा ॥ २२ ॥  
 तस्मिन्भवताघस्तिष्ठात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्च्छौ ।  
 मायं विघ्नतां नितरां महात्मन्किं वाघशिष्ट युधयोः सुहृत्स्यम् ॥ २३ ॥

बाबा नंद और यशोदाका भगवान् कृष्णके प्रति इत प्रस्मरण  
 अनुपाग देल उद्भव बने आनंदको प्राप्त हो बाबा नंदते बोले ॥ २९ ॥  
 उद्भव बोले इ मानद ( प्रतिष्ठा करने योग्य ) । यह बात निश्चय  
 है कि आप और मैं यशोदा दोनों बड़ी सुंदरखाण ( स्तुति ) के योग्य  
 हो, क्योंकि आप लोगनि सब शोकोके गुरु नारायणके प्रति इत प्रस्मर  
 पुष्टि लगायी है ॥ ३ ॥

ये राम और कृष्ण दोनों वीर्य और बौनि होनेके संसारके उपादान  
 और निमित्तके कारण हैं । प्रकृति और पुरुष इन दोनोंके ही आर्षीन हैं  
 वे दोनों पुराण पुरुष हैं जो उन मूर्खोंमें प्रतिष्ठ हो विश्वज्वल ज्ञानका नियमन  
 करते हैं ॥ ३१ ॥

जिन कृष्णके प्रति पुरुष प्राण-वियोगके समक खणमात्र भी निर्मल  
 मन लगाने तो शीघ्र ही कर्म-बाधनाओंको दूर कर और दिव्य ज्ञानी बन  
 सर्व-सा प्रकाशित हो परमगति वे कुंठको पाता है ॥ ३२ ॥  
 हे महात्मन! यद्यपि सब संसारके हेतु मर्त्यके पावन प्रेमके अरण मर्त्य-  
 रूप ( मनुष्यरूप ) धारण करनेवाले भी नारायणके प्रति आप लोगोंने वैसी  
 आदरना की है उतते आपकी भव बौन-सी कम्पनीय अमना बाधी रही ॥ ३३ ॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन मज्जमच्युतः ।  
 प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवत्सहात्मर्ता पतिः ॥ ३४ ॥  
 हत्वा कंस रंगमध्ये प्रतीपं सूर्यनात्वताम् ।  
 यद्वाह वाः समागत्य कृष्णः सत्त्वं करोति तत् ॥ ३५ ॥  
 मा सिघ्रतं महाभागौ प्रक्षयः कृष्णमन्तिके ।  
 भ्रष्टर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥  
 न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिच्चाप्रियो वास्यमानिनः ।  
 नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥  
 न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादपः ।  
 नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥  
 न खाद्यं कर्म वा लोके सत्सन्निभयोनिषु ।  
 ब्रविहार्थः सोऽपि साधूना परिश्रान्ताय करुणत ॥ ३९ ॥

तयारि खास्यतो ( सादरों ) के प्रति अभ्युत भगवान् चोड़े ही दिनमें  
 मात्र पधारंगे और अन्न लोकोमे मुक्त देंगे ॥ ३४ ॥

क्योंकि रंगभूमिमें सादरोंके शत्रु कंसको मारकर जो कुछ धरसे  
 भगवान् श्रीकृष्णने कहा है, उसे वे अचरब ही मत्स्य करेंगे ॥ ३५ ॥

हे महाभाग । भाव लेना न करें क्योंकि श्रीकृष्णका भार मरने पास  
 अचरब ही दलेंगे । वे तो मय भूतोंके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान हैं  
 बिना प्रथम लड़कीके भीतर भग्नि रहती है ॥ ३६ ॥

बादा वे मान-रहित हैं उनका कोई प्रिय और अप्रिय नहीं है सब  
 को समान मानते हैं, इतलिये उनके कोई उत्तम और अधम नहीं हैं ॥ ३७ ॥

उनके न कोई माता है न पिता है, न भार्या है और न सुतल्लि ही  
 है । उनके न कोई अत्मीय है और न पराया न देह है न जन्म है ॥ ३८ ॥

बचपि इन सत् भगवत् मिमित्त बोनिषमें इनका कोई भी कर्म नहीं  
 है तयारि साधुभोंकी रक्षाके लिये वे अनेकाने प्रवृत्त होने ही हैं ॥ ३९ ॥

सस्य रसस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।  
 श्रीहृत्प्रतीतोऽत्र गुणैः सृष्टस्यवति हृत्स्यञ्ज ॥ ४० ॥  
 यथा अमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीय महीपते ।  
 खिप्ते कतरि सत्रात्मा कर्त्तव्याहंभिया स्मृतः ॥ ४१ ॥  
 युययोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ।  
 सर्वेषामारमजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥

दृष्ट भुत भूतभवद्भविष्यत्स्थास्तुभ्यरिण्युर्महत्स्पर्कं च ।  
 यिनाभ्युतादस्तुतर्यं म धाव्य स एव सर्व परमार्थभूतः ॥ ४१ ॥  
 एव मिशा सा सुवतोर्व्यतीता नदस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।  
 गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्यास्तूस्समभ्यर्च्य दधीन्यमम्भन् ॥

वे गुण-रहित होकर भी सब, सब और तमादि गुणोंको मक्के हैं।  
 श्रीदा करते हैं तथा संवारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रक्षयके कारण होते हैं ॥ ४० ॥

जिस प्रकार भूमते हुए पुरुषकी दृष्टिमें पृथ्वी भी भूमती हुई नक  
 जाती है उसी प्रकार आत्माको जो अहमर्थ—मैं-यना है, उसको नि  
 वेहादिकमें आरोपकर आत्मा वेहादिको कर्त्ता मानता है ॥ ४१ ॥

आत्मान् इति केवल आपके ही पुत्र नहीं हैं, अपितु वे सबके पुत्र  
 आत्मा पिता और माता हैं अस्तु वे ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥

अमरमें जो ईश्वर्य ( देखने लायक ) या भुत ( मुक्त जानेका )  
 भूत वा भविष्यत् स्थिर या चल छोटा वा बड़ा जो कुछ भी है वह सब  
 उस अमृतमय है । उनके बिना कुछ भी नहीं है इतलिये वे ही परवर्त  
 होनेसे सर्वमय हैं ॥ ४३ ॥

श्रीहृत्प्रदेव महाराज परीक्षितमें बोधे कि राजन् वाच नंदते हृत्  
 एत उद्वेगको इस प्रकार करते-करते ही वह रात्रि सबके समान इतलित है  
 यही प्रातःकाल सब गोपियों उनी और नित्यकर्मके अनन्तर विष कर्म  
 विधि-वहित बालुदेवोंका पूजन कर यधि मयने सर्गी ॥ ४४ ॥

ता श्रीपद्मीपैर्मणिभिर्धरेज् रज्जुर्दिकर्णमुज्ज्वलकण्डला ।  
 चलद्विस्तम्बस्तनहारकुंडलस्त्रिपत्कपोलाद्यणकुंडुमानना ॥ ४५ ॥  
 उद्गापतीन्नामरधिदसोचनं यजांगनात्तां त्रियमस्युशवृष्यनिः ।  
 इष्मद्वन् निर्मग्यनशाश्रुमिधितो निरम्यते येन विशाममंगलम् ॥ ४६ ॥  
 भगवत्सुदितं सूर्ये नंदद्वारि व्रजौकसा ।  
 इष्टा रथ शातक्रैभ कस्याप्यमिति चाप्रयन् ॥ ४७ ॥  
 अहूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधका ।  
 येन मीतो मञ्जुपुरीं कृष्यः कमलसोचना ॥ ४८ ॥  
 किं साधयिष्यत्यस्माभिर्मर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ।  
 इति स्त्रीणा ववतीन्नामुखयोऽगात्कृताद्विक्र ॥ ४९ ॥  
 इति भीमकागक्ते मद्रापुराणे दशमस्कन्धे पूर्यर्षि नन्दघोषव्रतनरु नाम  
 पञ्चमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

उक्तं । उनके मणिबन्धिया भाभूयव हीचैते प्रकथित होनेके कारण  
 वड़े सुन्दर दिलवासी पढ़ने लगे । इधि-मयनके समय रम्क-रज्जुके आकर्षणसे  
 —धर-बार लींचनेसे, उनही भुजा, कण्ठ, मांस, निर्वचदेश, कटिभ्रमण  
 लान, हार और कुण्डल सब चंचल होने लगे । उनका कुंडुम-संज्ञित  
 मुख अस्म होनेके कारण विशेष सुन्दर लगने लगा ॥ ४५ ॥

कमल-सोचन भाग्यनुके चारु चरित्र गहन करनेके कारण ब्रह्म-सुन्दरिबौकी  
 ओरसपूर्व संकुस-ज्वनि उत्पन्न हुई वह इधि-मयनकी सुन्दर स्वर-बहरीके साथ मिस  
 कर भाकाग्रमें बैठ गयी जिससे वही विशामोका अमंगलनाश होने लगा ॥ ४६ ॥

जब सूर्योदय हुआ तो ब्रह्म-वासी पञ्च नंदके द्वारपर लड़े सुंदर रथ  
 की रेलकर आराममें पूछने लगे कि यह क्या कितना है ॥ ४७ ॥

क्या अहूर फिर क्या है ? ओ बंगही भर्ष-सिद्धिके सिधे हमारे प्यारे  
 कामल-सोचन कृष्णको मञ्जुपुर से क्या था ? ॥ ४८ ॥

क्या अब हमारे प्रात-रहित शरीरने यह भगना कार्य अल्प अभीष्ट कार्य  
 सिद्ध करना प्यारता है ? इन प्रकार प्रियेक करने-मुननेमें ही भीठ्यव  
 लान-सेष्यारि कर वही ( मन्क पर ) भ्र गये ॥ ४९ ॥

## भीष्मक उवाच

तवीक्ष्य पृष्णानुषर प्रहस्रियः प्रहंनबाहुं नवकंस्तोचनम् ।  
 पीताम्बरं पुष्करमास्त्रिन कसम्मुक्तादिर्दं मयिमृष्टकुंडलम् ॥ १ ॥  
 द्युविश्रिताः कषेऽयमपीक्ष्यवर्षाः कुतश्च कस्याप्युतधेपमूपजः ।  
 इति स्र सर्वाः परियमुहासुक्त्रस्तमुचमदलोकपदांप्रजाभयम् ॥ २ ॥  
 तं प्रथयेष्यायताः सुमन्सुतं स्वमीडहासेक्षणधनुतादिभिः ।  
 एवस्यपृष्णानुपविष्टमासने विष्टाय सविशद्वरं रमापतेः ॥ ३ ॥  
 जन्मीमस्त्वां यदुपतेः पार्यं च समुपागतम् ।  
 भवेत् प्रेयिताः पित्रोर्भयात्प्रियचित्कीर्षया ॥ ४ ॥

भीष्मकदेवकी बोले—उबन् । मधीन कमरके समान नेत्रयके,  
 ब्याहानुबाहु पीताम्बरधरी कमर-मास्त्रिकाधोति मुक्त और मणि-बद्धित  
 कुंडलधोति धांभायमान मुसबाके मगतानुके अनुबर ( उदय ) को गोपियेने  
 देला, प्रबकी क्षियेने उधे निस्तर ॥ १ ॥

उत्तमदलोक मगतानुके चरण-कमरके आभयमे रहनेवाके उदयकी  
 बन्धुत-क्रेती ही पेश-भूषा देलकर गोपियाँ निहायके क्षय आपसमे पूछने  
 लीं कि यह मनदर हसबाय कौन है ? कहते माया है ? अदि करती  
 हुई तर्कडा-बय उनको चारों ओरसे पेर दिया ॥ २ ॥

जब गोपियेने जाना कि ये प्रिय कृष्णके सखा हैं और उनका  
 लवेहा लेकर आवे हैं तब किन्नर हो बजावत कुछ-कुछ मुस्कराती  
 तथा कदाचलम्य मधुर वचनों-द्वारा उनका उत्तर करती हुई, एकान्तमें  
 के बकर उत्तम व्यसनर उधे बैठाय और पूछने लगी ॥ ३ ॥

गोपी बोलीं कि हम आपको जानती हैं कि आप यदुपतिके पार्यं  
 ( पाठमें रहनेवासे, मंत्री, मीर मजिस्त्रिन ) हो और आपको आपके स्वामीने  
 मन्त्र-पिताकी प्रतयवाके निमित्त भेजा है । इसीलिये आप नहीं आवे  
 हैं ॥ ४ ॥

अभ्यया गोमजे तस्य क्षरणीयं न शक्यते ।  
 स्नेहानुबन्धो यन्धुना मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥  
 अभ्येप्यर्यङ्गता मैत्री पाषण्डयविद्वानम् ।  
 पुत्रिभ स्त्रीषु हता यद्वत्सुमनस्त्रिय यदुपदे ॥ ६ ॥  
 निःस्यं त्यजति गणिक्रमं शक्यं नृपतिं प्रजाः ।  
 अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो इत्यक्षिणम् ॥ ७ ॥  
 खगा धीतफला दूर्ध्वं मुक्त्वा खातिथयो गृहम् ।  
 दग्धं सृगास्ताचारण्यं आरो मुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥

नहीं तो इस गोमर्जेके ब्रजमें अब उनकी प्यारी देवी कोई भी बसू नहीं दिससकती पड़ती थी उन्हें यहाँकी याद दिखने परंतु ही, किनके स्नेह-बन्धनमें बँधकर आपको बहो उनकी प्रणामार्थ भेजा है सो ठीक ही है, क्योंकि स्नेहका भेद बन्धन मुनियोंसे भी कठिनतासे तोड़ा जाता है ॥५॥

आ आपने नहीं है उनसे मतलब निकल जाने तककी ही मित्रता होती है—रहती है अब प्रयोजन सिद्ध हो गया तब मित्रता कैसी ! उदाहरणरूपमें अन्य स्त्रियोंके साथ पुरुषोंकी अपथ्य नवविकसित पूर्योंके साथ मारेकी ( बेनी ) मित्रता रली आ सकती है ॥ ६ ॥

पनहीन पुरुषको बेरथा अममर्थ राजाको प्रजा पिघा पद स्नेहपर अभ्यापकको विचार्यी यद्यमानसे दक्षिण से लेनेक बाद श्रुतिव ( वह करानेवाला ), फल बीतनेपर पेड़ ( हथ ) को पक्षी भोजनके अन्तर अतिथि अब खानेके बाद वनको मृग भागे पीछे प्रमत्तकरा परकीको प्तर पुरुष छोड़ देते हैं, हममें क्या कहन्य और सुनना ॥ ७ ॥

अपथा किन प्रकार कल्पदित हमको पक्षी भोजनके अन्तर किन प्रकार अतिथि परकी कर हुए वनको किन प्रकार मृग और भोगक पञ्चात् किन प्रकार आर पुरुष स्त्रीको छोड़ देते हैं उसी प्रकार हमको छोड़ दिया ॥ ८ ॥



इति गोष्यो हि गोषिन्ने गतयाङ्गायमानसाः ।  
 कृष्णवृत्ते प्रज याते उद्यमे त्यक्तौकिकाः ॥ ९ ॥  
 गायत्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतद्वियः ।  
 तस्य सस्मृत्य सस्मृत्य यामि कैशोरवात्मयो ॥ १० ॥  
 काश्चिन्मधुकरं हृष्टा ध्यायंती कृष्णसगमम् ।  
 प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्केवमप्रपीत् ॥ ११ ॥

गोपुत्राव

मधुप कित्तवचन्धो भा स्पृशाग्नि सपत्न्या  
 कुम्बविलुम्बितमाङ्गाङ्कुम्बस्मभुभिर्नः ॥  
 बहत्तु मधुपतिस्त्वामानिनीर्णं प्रसाद्य  
 यदुसवसि विडम्प्य यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

इस तरह मधु, कचन और शरीरसे गोविंदमें आसक्त गोषिणों ने मगवान् कुम्बके दूत उदवचने ब्रह्मने पाकर—उनके साथ संभाषण करते हुए अपने लक्ष्य लौकिक कर्मोंको ज्ञेय दिया ॥ ९ ॥

पहिले वे अपने प्रियके कर्मों ( कर्मों ) को गान करने लगीं और फिर उनके बाह्य और किशोरवत्सामें क्रिये गये कर्मोंको बह करके कथा ज्ञेय करने करने लगीं ॥ १० ॥

कृष्ण मगवान्के सुखमक्य ध्यान करती हुई वे गोपिणीं, किटी मधुकर को देख और उसे अपने प्रियका दूत मानकर कसना कर, बह बहने लगीं ॥ ११ ॥

गोपिणीं शोभी कि हे मधुप ! तुम कपटीके मित्र हो अतः हमारे परब्रह्मके शरीर न करो क्योंकि तुम मीतके स्तनोंपर विदुम्बित माध्यके कुम्ब ( बरम ) को सग्य लाये हो । अरे, ऐसे मानिनीके उभायक प्रसादको जो तेरा मधुपति ( भीकृष्ण ) ही प्राप्त करने लयक है, वही इस प्रकारको पाकर खुद-सम्भ्रमें देखने लयक है अतः कि तू दूत बना दे ॥ १२ ॥

सद्यश्चरसुधां स्वा मोहिनीं पापयित्वा  
 सुमनस इष सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भयादक ।  
 परिषरति कथं तत्पावपद्म तु पद्मा  
 ह्यपि बत हतचेता उत्तमश्लोकजल्यैः ॥ १३ ॥  
 किमिह बहु पद्मे गापसि त्व बहुना  
 मधिपतिमगृहाणाममतो नः पुत्रजम् ।  
 विप्रसक्तसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः  
 क्षपितकुचकञ्जस्ते कल्पयतीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥  
 विधिमुवि च रसात्या काः क्षिपस्तदुत्पत्ता  
 कपटठधिरहासभविशुम्भस्य धाः स्युः ।  
 खरपरज उपास्ते यस्य मूर्तिर्व्यं का  
 अपि च कृपणपते ह्युत्तमश्लोकशाम्भः ॥ १५ ॥

अपनी मोहनेवाली अमर सुधाका एक बार पान करके उन्हींने हमें छोड़ दिया; किन्तु उन्हें नव विकसित पुष्पीका रस डेकर तू (तुम्हें) छोड़ देता है। कस्मी उनके पाद-पद्मका सेवन क्यों करती है? मानस होता है कि वह उन उत्तम श्लोक (मगान्) के बच्चों-हाथ बिलके सुरासे अनेक ही ऐश करती है ॥ १३ ॥

हे पद्म ! हम किना पर-हारवाली कनकरिचोंके आगे (छापने) पुत्रने जाने-पहिचाने बहुपति (भीकृष्ण) का क्यों बहुत बलान (बढ़ाई) करता है? वह कीर्ति-कथा तो उक्त अर्जुनके लक्षाभी लक्षियोंको ही आकर सुना; उनके आगे ही आकर वह जो कि उनकी प्यारी है और किनके सुनीच कामादिरोग उनके हारसे अनेके करण मिट गया है; वे ही तैरे मनोरमको पूरा करेंगे ॥ १४ ॥

त्रिमुष्णमें कौन ऐसी स्त्री है जो उसे दुर्लभ हो? जिसे कि वह प्राप्त न कर सके? क्योंकि (उनका) कपटमयुक्त मंत्र होती और मोहोका विचित्र-विश्वत बड़ा मुरर है—मन्त्रकरे। किनके कारण-रक्षी उपसना महादरमी निरय किया करती हैं उसके लिये हम क्या हैं? फिर भी जो हीन-गुणियोंपर दया-दृष्टि रखते हैं—करते हैं उन्हें उत्तमश्लोक नामसे पुष्पा जाता है औरोंको नहीं ॥ १५ ॥

## श्रीशुक उवाच

मघोदधो मिश्रम्यैषं कृष्णदर्शनलाटसा ।  
सांख्यप्रियत्विशीर्गोपीरिदमभास्त ॥ २२ ॥

## उवाच उवाच

महो घृणं स पूर्णार्थो भयस्यो श्लोकश्रुतिताः ।  
वासुदेवे भगवति वासामिस्परित मनाः ॥ २३ ॥  
दानप्रतप्तपोहोमजपलघ्वाप्यसंयमैः ।  
श्रेयोभिर्विधिधंश्याम्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥  
भगवत्पुत्रमदसोके भवतीभिर्नुत्तमा ।  
भक्तिः प्रयतिता विदुषा मुनीनामपि दुर्द्धमा ॥ २५ ॥  
विदुषा पुत्रान्पतीत्येहस्त्वजगत्प्रयत्नानि च ।  
दित्या कृषीत पूर्य यत्कृष्णाक्ष्यं पुरुष परम् ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेव बोले कि उवाच, कृष्ण-दर्शन-लाटसासे उल्लिखित गोपियों को इस प्रकार कहे-मुनते देल उन ( गोपियों ) को प्रियके लक्षितों संकल्पते तेते हुए यह बोले ॥ २२ ॥

उवाच बोले कि जिनके वासुदेव महात्मानमें इस प्रकार मन भक्ति हो गये हैं—सग गये हैं, उनके लक्षण मन्तेय पूर्ण हो गये फिर वे श्लोक श्रुति क्यों न हों ? ॥ २३ ॥

दान, इत तप, होम कर, त्यागनाथ और संकम आदि किये भी भेयत्कर बर्न हैं, उन लक्षणे श्रीकृष्ण महात्माकी भक्ति विदुषी की जाती है—प्रतिश्रुति की जाती है ॥ २४ ॥

इन्हों ( गोपियों ) ने उत्तम लक्षणे महात्माके प्रति बहुत उत्तम के की है, जो मुनियोंको भी दुर्द्धम है ॥ २५ ॥

पति, पुत्र, देह, स्वजन और पर—इन लक्षणे छोड़कर, इन्होंने उत म पुरुष श्रीकृष्णको बर—वाहा, जो बड़ा मुन्दर है ॥ २६ ॥

सर्वात्मभावोऽभिगतो मवतीन्मधोस्तजे ।  
 बिरहेण महाभागा महाम्मेऽनुग्रहः कृताः ॥ २७ ॥  
 भूयता प्रियसन्देशो भयतीर्णा सुखावहाः ।  
 पमादायागतो भद्रा महं भर्तुं रहस्कराः ॥ २८ ॥

श्रीमत्प्रनुवाच

भयतीर्णां वियोगो मे नहि सर्वात्मना कश्चित् ।  
 यथा भूतानि भूतेषु च वाच्यमिर्ज्वलं मही ॥ २९ ॥  
 तथाह च मगजाप्यमूर्तेद्रियगुणाभयाः ॥ २९-३० ॥  
 आत्मस्यैवात्मनारमान सुप्ते ह्यस्यनुपाख्ये ।  
 आत्ममायानुभावेन भूर्तेद्रियगुणात्मन्य ॥ ३० ॥

आपस्यका उन अपोखन मतान्में विरहे कारण आत्ममत्त हो गया है—हर समय उन्हें अपने पास देखती हो अतः है महामग्नः। तुमने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ २७ ॥

अब आप मुझके देनेवाले अपने प्रियके संदेशोंको सुनें। है मगज-कारिण्यो। इसीके विषये मैं क्यों भ्रमा हूँ और इसी वार्षिके विषये मेरे स्वामीने मुझे क्यों मेवा है ॥ २८ ॥

मगजान्ने कहा है कि हमारा और तुम्हारा किसी तरह किसी समय, कभी भी और कहींपर भी वियोग नहीं है। त्रिज प्रकार आकाश वायु अग्नि चंद्र और पृथ्वी-आदि पंचभूतोंका, इन पंच-भूतोंसे बने शरीरधरो प्राणीसे नहीं हटा ॥ २९ ॥

उभी प्रकार मैं भी मन और प्राणतः भूतेन्द्रिय-गुणोंका आभव होकर रहता हूँ अर्थात् उनसे मैं पृथक् नहीं हूँ ॥ २९ २ ॥

मैं दिव्य-ज्ञान-संकल्पके प्रभावने भूत-इन्द्रिय-गुणोंको उनपर रूप होकर अभिन्न बगलमें पृथक् शरीर होनेके कारण माया-रूप सुबडा हूँ—बनाता हूँ पाप्मन करता हूँ अर्थात् रक्षा करता हूँ और नाश करता हूँ ॥ ३० ॥

आरमा ज्ञानमयः शुद्धा ध्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।  
 सुषुप्तिस्वप्नत्राप्रसिद्धिमापावृत्तिभिर्पीयते ॥ ३१ ॥  
 येनेन्द्रियार्थाग्न्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थिताः ।  
 तच्चित्तम्यार्थिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥  
 एतर्भूतः अमाद्यायो योगा स्वांश्वं मनीषिणाम् ।  
 त्यागस्तपो व्रमः सत्यं समुद्रात्ता इवात्मना ॥ ३३ ॥  
 यस्त्वं मवतीर्ता वै दूरे वर्ते मियो वराम् ।  
 मनसः समिष्टपार्थं मधुनुष्यात्काम्यया ॥ ३४ ॥  
 यथा दूरचरे प्रष्टे मन आधिपत्य वर्तते ।  
 स्त्रीर्था च न तथा खेनः समिष्टष्टेऽसिगोचरे ॥ ३५ ॥

आत्मा तो ज्ञानमय होनेके कारण शुद्ध स्वरूप है—गुणरहित और  
 सुषुप्ति रहित है—अज्ञ है। अतः माया और प्रकृतिसे सम्बन्ध होनेके  
 कारण ( वह ) आपत् स्वप्न और सुषुप्ति-रूप अवस्थाओंमें प्रकथित होता  
 रहता है ॥ ३१ ॥

जैसे मनमें स्वप्नके अनंतर स्वप्न बनिष्ठ विषयोंका अन्विष्ट-ज्ञान  
 बना रहता है, वैसे ही आपत् अवस्थामें मन द्वारा इन्द्रिय-बनिष्ठ विषयोंका  
 बोध स्वप्न बना रहता है—होता रहता है अतएव उक्त अवस्थामें मनको  
 रोक्नेपर सावधान होनेके कारण मरे स्वरूपको जानने लगता है ॥ ३२ ॥

वर इत प्रभर मनस्य रोकना ही समस्त विद्वान्नेका अभिमत है।  
 बरी वैचार्य है यही योग है बरी साम्य है बरी धाम-धम है और बरी लय  
 है, क्योंकि मन्त्रियोंकी सम्पत्ति—अर्जुन समुद्रमें ही तो होती है ॥ ३३ ॥

मैं तुम्हारी इच्छित्त प्रिय विनाय बन इच्छिये दूर रहता हूँ कि तुम्हारा  
 मन प्रकाश हो जाय क्योंकि एकाग्र मन होनेपर ही मेरा ध्यान होगा, मन  
 स्थिर होनेपर ही मेरे ध्यानकी कामना होगी ॥ ३४ ॥

जैसे विक्रमक दूर रहनेके कारण शिवोंका मन (उत्तममें) लगा रहता है,  
 आश्चर्य बना रहता है वैसे मन पासमें—तामीपमें, नेत्रोंके आगे होनेके  
 कारण नहीं लगता ॥ ३५ ॥

मय्याषेष्ट्य मनः कृत्स्नं विमुक्त्रशेषवृत्ति यत् ।  
 अनुस्मरन्स्यो मां नित्यमविराम्मानुवैष्यथ ॥ ३६ ॥  
 या मया ब्रह्मिष्ठता राश्यां वनेऽस्मिन्नत्र ब्रह्मस्थिताः ।  
 अलम्बरासाः कल्याण्यो माऽऽपुमद्भीर्यधिन्तया ॥ ३७ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य ब्रजयोपितः ।  
 ता कथुक्त्वथ प्रीतास्तत्संवेशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

शेष्य ऊचुः

दिष्टयाहित्ये हतः कंसो यदूर्तां सादुगोऽपहृत् ।  
 दिष्टयासैर्बन्धसर्वापैः कुन्त्यास्तेऽभ्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥  
 कश्चिद्ब्रह्मज्ञः सौम्य करोति पुरयोपिताम् ।  
 प्रीतिं मः स्निग्धसमीहहासोद्गारेक्षणार्थितः ॥ ४० ॥

अतः सय विद्योसे हटाये हुए एकाम मनको मुझमें लगानेसे मेरा ध्यान करने और स्मरण करनेसे थोड़े ही समयक अनंतर मुझको मिठोमयी ॥ ३६ ॥

हे कल्याणियो ! ब्रजमें पछले—रहते हुए जे वनमें उत्रिके समय (मैंने) श्रीका की त्रिनक साथ भनेघनेक लख लेके, उनके अतिरिक्त जो और अलम्बरासा हैं व मरं परक्रमक धिन्तवन कर मुझे प्य गर्वी ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवकी शंख कि राजन, गणियो प्रियतमके दाम-संदेशको इस प्रकार मुन और उच संदेशमे प्रियता स्मरण होनेरु बड़ी प्रसन्न हो ब्रह्मसे बोधी ॥ ३८ ॥

गणियो बोधी कि, मादबोधे हृद्य देनेवाक्य कंस मरा यह सुन्दर बुद्धि । अतः सर्वाथं ठिद्य प्राप्त, अथात् पूर्ण मनोरपी अपने प्रियोके साथ अभ्युत इस समय कुद्यप है बहुत सुन्दर है ॥ ३९ ॥

हे सौम्य ! यपदेशके छोट मध्य नगर-निवास्त्रिनिषोधी मनोहर हस्त-मुक्त कजा और उदार कयाधोसे पूजित होकर कभी हमारी प्रीतिधी बातें भी करते हैं ! ॥ ४ ॥

कथं रतिविशेषः प्रियः चरयेत्प्रियाम् ।  
 नालुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभासितः ॥ ४१ ॥  
 अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।  
 गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां प्राग्या स्वैरकथांठरे ॥ ४२ ॥  
 ताः किं मिशा स्मरति यास्तु तदा प्रियाभि  
 वृन्दावने कुमुदकुम्भशशाङ्करम्ये ।  
 रेमे कृष्णचरणनूपुररासगोष्ठ्या—  
 मस्माभिरीडितमनोऽकथाः कदाचित् ॥ ४३ ॥  
 अन्येष्वतीह वागार्हस्तम्भाः स्वहृत्तया शुचा ।  
 संश्लेषयन्तु नो गावैर्ययैद्रो धनमंशुवैः ॥ ४४ ॥  
 कस्मात्कृष्ण इत्यर्थेति प्रातरात्म्यो हताहितः ।  
 नरेन्द्रकन्या लब्धाद्य मीतः सत्यसुहृद्बभूवः ॥ ४५ ॥

यह रति-विशेष होनेके कारण मुझ्से प्रिय, प्रकृत होकर  
 इनके मुझ्से बाक्योंमें भूख केते म बंध बागमा ! अर्थात् अस्वय बंध  
 बागमा ॥ ४१ ॥

हे साधु ! कभी पुरस्त्रीणोंके समूहमें प्रवृत्त (भासक) गोविन्द, अपनी इच्छित  
 कथाओंमें प्रसंगानुसार हम प्राग्याओं-गोष्ठीमें भी ने वाद करते हैं ॥ ४२ ॥

वे ( श्रीकृष्ण ) कभी कुमुद कुम्भ और इंदु तथा चरनेसे मुण्डोमित  
 वृन्दावनकी उन रम्य-राशियोंकी भी स्मरण करते हैं किन्तु हम प्यारियोंके  
 साथ चरण-नूपुर चरनेसे परिपूर्ण शस रमा या और किन्तु हमने उसकी  
 मनोहर कथा गावी थी ॥ ४३ ॥

\* दायाह अभी यहाँ आकर हमारे संस्र माधको, किम प्रकर मेप  
 नको स्तिस करता है ठही तरह अपने अंगोंसे स्तिस करेंगे ? ॥ ४४ ॥

कृष्ण यहाँ क्यों आयेंगे ? उन्होंने अपने शत्रुको मार किया उरका  
 उस भी के निश चक्रवाभक्ति साथ विवाह कर किया और अपने  
 प्रदोषों पा भी किया ॥ ४५ ॥

किपस्माभिवर्तौषोभिर्भ्यामिया मरुत्तमन ।  
 धीपतेगामक्षमस्य प्रियेनाय सुत्तमन ॥ ४६ ॥  
 पर सौख्य द्वि मैगक्ष्य व्यम्बिष्यत्या दिगन्ता ।  
 वस्त्रास्तीना न कृष्णे मयाप्यागा दुग्धया ॥ ४७ ॥  
 क उम्सइत सम्यन्मुमुक्षमस्याकर्मविद्म् ।  
 मलिच्छतोऽपि यस्य धीरगात्र व्ययत्र कश्चिन् ॥ ४८ ॥  
 सगिच्छैल्यनोदंगा गायो येणुरया इमे ।  
 संकषणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥  
 पुन पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुत वत ।  
 धीनिषेजस्तत्पद्मैर्धिस्मर्तु मैव शक्नुमाः ॥ ५० ॥

क्व आपसङ्गम, अर्थात् पूर्वङ्गम मरुत्तमा इम बंगम्भी किम्बोसे अपचा  
 अप्य किम्बोसे कृतकृत्य हो मरेगा ? कुछ कार्य था लक्ष्म्या । क्योंकि पर  
 कस्मीना प्रति है ॥ ४६ ॥

निराशा बड़ी सुन्दर है, पर स्वेरणी ( वेसा ) विगम्बने कहा था  
 और इसे हम भी जानती हैं, फिर भी कृष्ण प्रति हमारी पुरखना ( सुल्लते  
 परिपूष ) भाषा नहीं बुझती—नहीं बुझती ॥ ४७ ॥

उन उत्तम रसोक-द्वारा कही पाते किगो छोड़ी खोजी—किगो  
 त्यागी खोजी, क्योंकि ( उनही ) पात्रमि भागक मरमी ठाके न गाहनेपर  
 मी ( कन्ध ) मंग छोड़ना नहीं पाहती ॥ ४८ ॥

हे प्रभो भीकृष्णने यमुना नदी, गारुड गिरि और कनोके इन  
 प्रदेसोंमें संकषणके साथ बहुत परित्र किये हैं ॥ ४९ ॥

वे सब स्थान ( जहाँ जहाँ उग्रनि मीदा की भी ) नन्दगोपसुत  
 बार-बार यात्र करते हैं और हम भी मरमीनिषेज ( पर ) न उग गत्य  
 विद्मोको ( मही, दीव और कनोके ) देखकर उनको भूष मही मही ॥ ५० ॥



गत्या लङ्कितपोद्धारहासलीलाश्लोकनीः ।  
 माध्व्या गिरा हृतधियाः कथं तं विस्मरामहे ॥ ५१ ॥  
 हे माध ! हे रम्यनाथ ॥ प्रकृमाघार्तिनाशन ।  
 मध्रमुत्तर गोविन्द गोकुलं वृजिगर्जयात् ॥ ५२ ॥

श्रीशुक उवाच

उतस्ताः कृष्णसंशयीभ्यपितविरहज्वराः ।  
 उतस्य पूज्यार्थकृत्वात्मात्मभोक्तृजम् ॥ ५३ ॥  
 उवाच कतिचिन्मासान् गोपीमां विनुद्वद् शुभम् ।  
 कृष्णस्त्रील्लक्ष्यां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥  
 पाषन्त्यहामि मन्दस्य प्रयेऽघात्सीत्स उद्ववः ।  
 प्रजौकसां क्षणप्रयप्यासकृष्णस्य चर्तया ॥ ५५ ॥

उनकी मन्दोहर आँक, सुन्दर हँसी—उदार हास, कौतुकचरित वेकना  
 और मधुर बोकना हमारे हृदयोंमें कत रहा है,—रम रहा है हम ठाँहें कैसे  
 मूर्खें ॥ ५१ ॥

हे माध, हे रम्यनाथ हे प्रकृमाध, हे आर्तनाशन ( बुल्लोसि  
 बुझानेवाले ), हे गोविन्द, तुम्हारे शिर पर कुल-समुद्रमें डूबे हुए प्रकृमाधीप  
 उदार करो ॥ ५२ ॥

श्रीशुक बोले कि गोपियोंने इत प्रकृमा करने और सुननेके अनंतर  
 भीकृष्णके संदेशोंसे अपने बुल्लोकमें कुछ काम कर उद्वकी आत्माके  
 अचेष्टब भगवान्की आत्मासे मित्र—पृथक् न मान उन ( उद्वव ) का  
 पूजन किया ॥ ५३ ॥

और उद्वव भी, भीकृष्णकीताकी कमनीय कथाओंके निरंतर मान-  
 प्राय गोपियोंका शोक-सम्म करते हुए गोकुलमें कितने ही दिन  
 विरमे रहे ॥ ५४ ॥

उद्वव धीनंदवायाके प्रथमें कितने भी दिन रहे । वे दिन भीकृष्ण  
 की निरंतर बात-चीत होनेके कारण धन-समाप्त व्यतीत हो गये ॥ ५५ ॥

सखिन्मगिरिद्रोष्णीर्षीसन्नु सुमिताम्भुमान् ।

हृष्य सस्मारयस्मेमे हरिवासो वञ्जीकस्ताम् ॥ ५६ ॥

हृष्टैयमादि गोपीनां हृष्यायेशात्मविह्वलम् ।

उत्सवः परमधीतस्ता नमस्यन्निबं जगौ ॥ ५७ ॥

पताः परं तनुभृतो भुवि गोपयष्यो

गोविंद् एव निखिलात्मनि कृदभाषाः ।

वाञ्छन्ति यद्गद्यभियो मुनयो वय च

चिं प्रह्वजम्मभिरन्तक्यारसस्य ॥ ५८ ॥

वे बधुना मयी, निहुंज्जदि, वन गोवर्धनगिरिची कंदव और प्रकुक्षित  
हृषोकि किन्मे मगवान् भीहृष्यमे श्रीहार्ण श्री बर्धन करते-करते श्रीकृष्णकी  
कर दिखते रहे ॥ ५६ ॥

उत्सव, गोविन्दोत्री भीहृष्यमें आतरिक अत्यंत आत्तिके करण  
उत्सव विपुल-विक्रम्याओ बेलकर बड़े प्रथम हुए और उन्हें ( गोविन्दोत्री )  
ममस्वर कर इस तरह बोले ॥ ५७ ॥

इस पृष्ठीपर शरीरको अपना माननेवाले श्रीश्रीमें इन गोप-बधुदियोंका  
जन्म ही भय है—इनका जन्म लेना ही तार्पक है क्योंकि इन्होंने  
तबके आत्मा श्रीगोविंदमें अपने सब कष्ट भाव, प्रसिद्ध भाव स्पष्ट दिये हैं  
किन्हें कि संशयसे विरक्त रहनेवाले मुनि और संशयमें स्थित आतक हम  
तब चारते हैं । अतः भगवत्कथारतके प्वाहनेवासेष्व आत्मन कुष्में  
लेना ही कुछ विशेष कारण नहीं है—प्रयोजन नहीं है ॥ ५८ ॥

• कदिमावके कर्षमें भी नागवन्द टीक्यारोष्य विमिह मय है, कोर  
इसका कर्ष प्रेव मान्य है तो कोर स्वर्गीर कुन कोर वैशारिची किनाजोभी मानता  
है तो कोर जन्म-मरस्ते दिहति—व्यारि-वारि ।

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीभ्योभिवारबुधाः  
 कृत्वे ङ वीप परमात्मनि कडभावाः ।  
 नन्वीद्वयोऽनुभङ्गोऽपिबुयोऽपि साक्षा-  
 च्छ्रेपस्तभोत्पन्नराज इषोपयुक्ता ॥५९॥  
 नायं भिर्योऽग उ नितान्तरतो प्रसावः  
 स्वयोपितां प्रकिमगंधकां कुतोऽन्याः ।  
 रासोत्सवेऽस्य मुद्गद्वचगृहीतार्कठ—  
 छम्प्यारिवां य उदगात्त्वञ्जवसुधीनाम् ॥६०॥  
 व्यासामहो वरपरेणुजुपामह स्यां  
 वृन्दावने किमपि गुल्मस्रतौपधीनाम् ।  
 पा दुस्त्वर्जं स्वजनमार्यपय च हित्वा  
 मेतुर्मुद्गद्वचपदवीं भुक्तिभिर्विमृश्यात् ॥ ६१ ॥

अहो कहीं वे व्यभिचार-दृष्टिसे दूषित वनचरियों और कहीं इनका परमात्मा भीकृष्णमें कवि-श्यावा—वैमाशक्ति ! कोई भी मज्जनी हो और किसी व्यक्तिके कहीं न हो, ईश्वरसे प्रेम करनेपर उलझ करवान होता ही है । जिस प्रकार अमृतके गुणको न खाननेवाला उलझ लेकन करनेसे अमर हो जाता है ॥ ५९ ॥

मगवानसे नितान्त प्रेम ( अत्यन्त प्रेम ) करनेवाली क्यही और कमजोर भी क्यही कर्मिवाली देव-कन्याएँ, निरंतर लंघने रहकर भी वह प्रसन्नता और प्रसाद न पा लयीं, जिसे कि रासोत्सवमें भीकृष्णकी सुखकोंसे व्याख्यान कर कर-मुन्दरिचोने कहा था ॥ ६ ॥

यदि मैं, गोविन्दकी चरक-रज सेवन करनेवाली वृन्दावनी गुल्म-क्या और बोधि ही बन जाऊँ—तो मरा क्या लज्जा हो जाय, क्योंकि इन्होंने ( स्वयं न छोड़े जानेवाले ) दुस्त्वर्ज स्वजनोप और कार्य श्रेष्ठ पयक त्याग कर भक्तिमें मो जिसे हँदनेमें असमर्थ हैं ऐसे भीमुद्गद मगवानको मजा दे—यका दे ॥ ६१ ॥

या वै श्रियास्त्रिभुजमजादिभिद्यत्तकर्मै-

योगेस्वरैरपि यद्दत्तमनि रासगोष्ठ्याम् ।

हृष्यस्य तद्भगवत्तदधरप्यारयिन्

म्यस्तं स्तनेषु विजडुः परिरम्य तापम् ॥ ६२ ॥

यन्वे मन्वद्भ्रजलीर्ष्य पादरेणुमभीक्ष्णशाः ।

यासा हरिकयोद्गीर्तिं पुनाति मुपनत्रयम् ॥ ६३ ॥

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां मन्वद्भव च ।

गोपालामगम्य द्वाशार्हो यास्पम्मादकहे रथम् ॥ ६४ ॥

तं निर्गतं समानाद्य न्यूनोपायनपाण्ययः ।

मंदाद्योऽनुरागेण प्रावोचन्मधुलोचनः ॥ ६५ ॥

इन गोपिकेने कस्मी, अस्तत्रम बह्य और शिव-शाय पूजित भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत किन्हीं कि योगेश्वर उदा अपने अन्त-करणमें ध्यान बघ करते हैं उक्त-श्लोकीके समय अपने सनोसर रक्त और तन्से आर्क्षियन कर ( अपने ) पापेभ्य नाश किया था ॥ ६२ ॥

मैं इन नंद-भ्राज-श्रियोक्षी निरंतर बंदना करता हूँ, क्योंकि इनके द्वारा गयी गयी हरि-कथा टीनों सुबनोंको पवित्र करनेवाली है ॥ ६३ ॥

श्रीशुक बोले कि इसके अनंतर द्वाशार्ह ( उद्भव ), योगेश्वर, कपोदासे और बाबा नंदसे आस्य लेकर और गोपेति मिळकर जानेके क्रिये—मधुगुण बालित आनेके क्रिये रथपर बैठे ॥ ६४ ॥

मंदारिक उन्हें ( उद्भवको ) जाते देनकर अपनी आँखोंमें मधुगुण-के आँसुओंको भर—प्रेमासुओंसे आर्क्षियन कर, हाथोंमें उन्हें देनेके क्रिये अनेकानेक मोंटरी बस्तुएँ ले बर बोले ॥ ६५ ॥

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाङ्गुलाद्ययाः ।  
 पाषोऽभिधायिनीर्नाम्नां कथयस्तत्रहृणाविपु ॥ ६६ ॥  
 कर्मभिर्धाम्यमाणानां यत्र ङापीक्ष्यरेच्छया ।  
 मंगलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥  
 एव सभाश्रितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।  
 उद्वहः पुनरागच्छन्मधुरां कृष्णपाश्र्विताम् ॥ ६८ ॥  
 कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्तयुक्तेक प्रज्ञौकस्ताम् ।  
 वसुदेवाय रामाय राज्ञे शोपायमास्यदात् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रे पूर्वांशे ब्रह्मप्रणिपत्ते  
 छन्दोविशेषोऽध्यायः ।



हमलोगोंके मनकी लारी वृत्तियों उन ( श्रीकृष्ण ) के करबोंमें,  
 बचन उनके नामोंका मान करनेमें और शरीर उनके प्रणाम करनेमें  
 लगे रहें ॥ ६६ ॥

ईश्वरकी इच्छासे हमने जो कुछ भी मागलम्ब आचरण और दानादि  
 किये हैं उन कर्मों-द्वारा धूमने हुए—प्रसंगे हुए हम किसी योगिमें जायें,  
 परंतु हमारी प्रीति परमेश्वर-श्रीकृष्णमें ही लगी रहे ॥ ६७ ॥

राजन् उद्वहजी इत प्रभर कृष्ण मछ गणोंसे पूजा करनेपर पुनः  
 श्रीकृष्ण-पाश्र्वित मधुरामें आवे ॥ ६८ ॥

श्रीकृष्णको प्रणाम करनेके समन्वय सब-बासिकोंकी भक्तिकी भूरि-भूरि  
 प्रशंसा कर—उनकी मर्त्यके इच्छामें आकर, वसुदेवजीको राम ( कल्याण )  
 को और महाशय उमतेवको नंदारिह-द्वारा ही गयी भेंटें हैं ॥ ६९ ॥

## परिशिष्ट—( 'सू' ) \*

कधी की उपदेश सुनीं किमि कीं है ।  
निगुमि स्वामि सौदेस परापो कीं है ॥



कोउ जावत उदि धेर वहाँ नैर-सुवन पवारे ।  
सरस बँनु बुनि होठ मभों व्याप मज पवारे ॥  
बाद सब इक गमि के, कधी देखे जाइ ।  
के जाप मगराज-वर धौनर कर न समाइ ॥ १ ॥



बरस भारती तिळक, दूब यधि मावें हींहीं ।  
कंचन-ककस मराइ बहुरि परिकमा कींहीं ॥  
गोप-भीर धौगन मई सुरि बैठे इक अवति ।  
जक-स्यारी जागें घरी रूँछति हरि-कुसकाति ॥ २ ॥



कुसक-सैम बसुरेव कुसक देखि-कुवजराक ।  
कुसक-सैम मरुवन कुसक नीके बकराक ॥  
रूँछि कुसक गोपाक की रहे मरुक गदि पाँइ ।  
मैम-मगाव कधी भव देवत मज के भाइ ॥ ३ ॥

---

० सुरदासजीका 'भ्रमरगीत' बहुत प्रसिद्ध है और उसकी सुमधुर पदावली यहलोकमें अत्यंत प्रसिद्ध है । सुरदासजीके उस भ्रमरगीतमेंसे कुछ संमद पूर्वीय लम्पारकींसी सज्ञ-बृहत्के अनुसार ठन चुध है, अतः इसे न बुरा कर हम भीसूची लक्ष्म एक नयी मात रचना किछ पाठकींसी मेंट परिष्कार (मृत) करते की जारी है भूख-पूक लेनी-देनी ।

मन में ऊपी कई कृतिपू नहीं गोपाकहि ।  
 मज की इत-विसारि, जोग सिद्धरें मज-वाकहि ॥  
 हवकी प्रीति परतंग धीं बारत है मज बेह ।  
 वे हरि-दीपक-ओति ज्यों नेक न उमकें नेह ॥ ४ ॥

ॐ

ऊची कर ली बरी किसी हरि मू की पाती ।  
 पही परत नहि नेंकु, रहे पीपी करि छाती ॥  
 पाती बौधि न जावई रहे नैन अरु-पुरि ।  
 बेसि प्रेम गोपीन की ज्यौन-गरब मजा कुरि ॥ ५ ॥

ॐ

छिदि इत-उत बैहराह नीर नंतबके सोये ।  
 डौनी कया प्रबोधि तबहि छिदि श्लेष-सँमोये ॥  
 ओ मज सुबिचार प्यानही पाकत नर अचकार ।  
 ते मज सिख सब गोपिका बेहि मू बिचै-विसार ॥ ६ ॥

ॐ

सुधि कथा के बचन रही के भीये तारे ।  
 मोंभों मोंगति सुधा भौंनि क्याकनि-दिय करे ॥  
 हौम नैवारि क्य जौनही जोग-सुपति की शीति ।  
 बेद-नंदन-अत छौंदि के को छिदि वृंशै धौति ॥ ७ ॥

ॐ

अगमत अगाह अपार आदि अबागत है सौक ।  
 अपदि पिरंजव भौंम ताहि एंजे सब कोऊ ॥  
 नैन वासिका अम है तहाँ अछा क्य वास ।  
 अबागासी विवसै नहीं सहज ओति परगस ॥ ८ ॥

ॐ

ऊषी को पग-पौनि कहि ऊखरु क्यों बौने ।  
 नैन आसिन्हा मुक्त न खोरि-दधि कौने खावे ॥  
 तब तु सिन्हाए गोद में, बोकि तोतरे बँन ।  
 ऊषी ताहि बताव ही कहि न सूँ नैन ॥ ९ ॥

ॐ

माया अमित अकारी ता कौचन हुइ जगै ।  
 म्बौनी बँन जलंत ताहि सूँ परमाखे ॥  
 मूँगी मिगम-मुखाइ कें, कही भेद ससुखाइ ।  
 आदि-अंत आकी नहीं कौन पिता को माइ ॥ १० ॥

ॐ

ऊषी बर बी पूर कही मन कई-कई बापै ।  
 जपनी बर परिहरै कही को पूर बतावै ॥  
 मूलक आदुब जाति है हमहि सिखारै जोग ।  
 हम सौं मूँगी कहत हैं हम मूँगी के योग ? ॥ ११ ॥

ॐ

प्रेम प्रेम तें होइ प्रेम तें पर है रहिये ।  
 प्रेम-बँची संसार प्रेम-परमारथ कहिये ॥  
 कौ बिसये प्रेम की बीबन-मुक्ति रसाक ।  
 सौँची निसये प्रेम की आदिर मिले गुपाक ॥ १२ ॥

ॐ

ऊषी कहि सत-भाव न्याइ तुम्हरे-मुक्त सौँचै ।  
 जोग-प्रेम-रस-क्या कहा कंचन के कौँचै ॥  
 आके पर है बुझिये, ग्रहिये सोई बँन ।  
 मनुष्य हमारी नीं कही जोग अली के प्रेम ॥ १३ ॥

ॐ

पाठान्तर—

१ हमरी मूँगी कहत हैं के मूँके तब सग ।  
 मूँको हम तें कहत है, हम मूँगी को जोग ॥



सुनि गोविन्द के बेंग नेंम ऊपौ लख मूठे<sup>१</sup> ।  
 ब्रह्म-बलिता-गुन-गात, फिरत कुंडल में फूके<sup>२</sup> ॥  
 सुनि गोविन्द के पौंह परि बहत धरु इहि नेंम<sup>३</sup> ।  
 बाह-बाह हुम धेंदि ही कबी करके प्रेम ॥ १३ ॥



बहि गोपी धनि म्याक बज सुरमी-नव-बाही ।  
 बनि इहि पावन मूमि अहौ गोविंद अमिछारी ॥  
 उपदेशनि जापी हुतो मोहि मपी उपवेश ।  
 कबी कहुपति वै कहे धरि गोपी कौ मेव ॥ १५ ॥



मूके कहुपति नाम बहत गोपक गुसीह ।  
 एक बार मत्र बाह देहु गोविंद निखराई ॥  
 बुंदावन-मुक-कौंनि कें कही कसे ही कण्ठ ।  
 गीतरथें प्रभु बौधि कें, कबी पकरे पौंह ॥ १६ ॥



लखौ ब्रह्म कौ प्रेम-बेम बनौं सब बाह ।  
 ईमग्यो नेंनव-जीर बात कहु कही न बाह ॥  
 'धर' कौम मूठठ भए, रही नेंन एक छाह ।  
 पौंठिपील-पटसौं कही मक बाह अोग-सिखाह ॥ १७ ॥



१ नेंम ऊपौ कौ मूठे - ।

२ गदहत गुन गोपक, फिर कुंडल में फूके ॥

३ लैन गोविन्द के पौंह परि बहत धरु वै नेंम ।

# परिशिष्ट—(“ग”)

## जुक्ति-समूह



दोष

कभी नू सौ इक सैंमें बड़े कही जजराज ।  
गोकुल-गौम सिधारिये, परमारय के काज ॥ १ ॥



उकही ली अत-ही कम्पी हौम सौ कभी प्रीति ।  
काते हौम की वे छई जाइ सिखाबी रीति ॥ २ ॥



कभी नू गोपीन की जाइ देहु हौम योग ।  
जाते उनकी बर घटे हाएव वीरव लोग ॥ ३ ॥



१ यह कव्यत्मक कृति पहले भीषोमें कपी मुद्रितक हिंदी-केलक वं हरिदासजी शर्मा कोहामंडी आगराके यहाँ देलनेमें आयी थी। अतः कोकोकिबोध इत्यादि सुंदर संग्रहरूप कृष्ण-कव्य, विशेषकर अदब-गोपी-संवादके रूपमें बड़ा सुंदर लगा। इसके पूर्व कोकोकियेके कुंभमें बड़ी एक रम्य-रचना ‘जीव-भानंद’ कृत “दुःखान भगवत दशम” देलनेमें आयी थी, वह भी अस्मन् सुंदर थी। अस्तु, इन दोनों कव्य-रत्नोंके सुसंपादित रूपमें प्रकाशनकी खर्चा कभी पर बह हो न सक्त। इधर भीमदत्तजीके ‘प्रजलीत’ के साथ उसे देनेकी शर आयी, एक मित्रने इसके हस्तलिखित रूपमें प्राप्तिकी सूचना दी, अतः चौड़ा गया और केन-केन प्रतिसिद्धि कर के व्याप्त बरी आब परिशिष्ट “ग” रूपमें प्रस्तुत है। रचना केही है, उसे बिना पाठक देखें और समझें। —संपादक

## भ्रमर-व्रति

भौंकर सीं ऊचो बडे, बाबा के महराम ।

बरमारब मिकबी मबी,—“एक रंथ है कज” ॥ ७ ॥



ऊपी को कबो मुँबीं शीरी देकन गारि ।

“मुँको कबी बंगकिका मारी-माठ पुकारि” ॥ ५ ॥



कुमार-तेम की कृति के ले जोहं फिर बोम ।

ऊचो सों फिर कृति-ही कदा कदाई है लोम ॥ ६ ॥

## उदय-वचन

हैम सीं कदा गुपाक के कोपिँन सीं कति श्रिति ।

काते मो को के कदि कदा कदाबी रिति ॥ ७ ॥



तब हैम सिभ्य हेंन को कापू गोकुल-मोम ।

मिहके को के कटन है बोग बटापी लोम ॥ ८ ॥



काते गोपी सफर हुँम केहु काप दे अंग ।

मिहिके ही तब हुँम कृष्णसो तजि ही दार्शनसोम ॥ ९ ॥

## गोपी-वचन

ओम केहु री स्तर है मबी देत ही सीक ।

मोम तबे जोगहिँ मजे “बोको-डोके भीक” ॥ १ ॥



ऊची हीरा-मोम तजि केहि गरी मे कोच ।

“जोई काहिँन-कपिये, सोई मेचिये मोच” ॥ ११ ॥



ऊची केहि सुयोग की मोम केहिँ निहराह ।

“बर की नाग न कृषिये, बोमी-रूँजे काह” ॥ १२ ॥

कुंडलिन्या

बुद्धी कबो बू सकल हँमने तुम्हरो ध्यान ।  
 जबकेन के उपदेश को रूप मज में ध्यान ॥  
 रूप मज में ध्यान हिए की नौही ज्ञानत ।  
 "सुखी-बुद्धी नौहि गुणक को बिसैव सु ठोमत्" ॥  
 "कई सरो सिबकक" राबरी मौत सँबुसै ।  
 राहो मौब है सरो बात हँम तें बहिँ बुद्धी" ॥ ११ ॥



कबी बू गोपाक की नौहि मीति में साक ।  
 "चार दिवो की बौद्धी केरि जेबेरी पाक" ॥  
 "जेरि जेबेरी पाक" राक तँव हँमने कीन्हो ।  
 ताको दे फल मयो जोग गोधिँ न तुम हीन्हो ॥  
 "कई सरो सिबकक" तुम्हें जौन्यो हम सुबो ।  
 रीति-करेन न जयोति भौकिदे अपन कबी ॥ १२ ॥



दासी "कुमजा" कंसकी ता की अधिक मित्राज ।  
 "नाज गण्डरिया में कणे मयो कुरिअटै-राज" ॥  
 "मयो कुरिअटै राज" केनम सीं कुचरी बिगरी ।  
 वे नौहि नहिँ कई जाति हँम जौम सिगरी ॥  
 "कई सरो सिबकक" कबी दे बोरी रासी ।  
 "वे अहीर के पुत कबी बरबारी दासी" ॥ १५ ॥



आधी वा गोपाक के, कबू की नहिँ पीर ।  
 "कौम-सरो बुल-बीसरै छप न हैत अहीर" ॥  
 "छप न हैत अहीर" मीति उबनें कई पाई ।  
 "छेरी की बिब जाइ मृपति के मनें न भाई" ॥

## अमर-श्रीत

कई सड़ों सिक्काका' खोंमके डर ना छाडी ।  
 तुम हूवो-हिं' पचिमती करी गणक सिर काडी ॥ १९ ॥



कचो के मने नहीं प्रीति तु हूंम सीं राकि ।  
 'भाव जो झगताहवा वैल भोंमि साकि' ॥  
 वैल भोंमि साकि' तैसोई ती ई सब सीं ।  
 कय व बुझियत बात मुहागिळ मोंके सब सीं ॥  
 'अर सड़ों सिक्काका' खोंम हूंमती ई सुधी ।  
 हूंमि प्रेम जो नेम और नहिं' जोस्त कचो ॥ २० ॥

### दोहा

दासी सीं कचो करी हूंम सीं प्रीति दुराह ।  
 'अहुर चोक विगरीवी' कचो चार्टन बाह' ॥ २८ ॥

### कुंडलिया

खोंम-सैनेसे के सुगत लम्बो सचो डर सेठ ।  
 'नय विगरीवी के मय, बंटी केरि फुलेक' ॥  
 बंटी केरि फुलेक' जोग का परमो मोंके ।  
 बयेंव मोंकदे होंमि मशै हूंम तेंव में राबे ॥  
 'कई सड़ों सिक्काका' लिखी वै बोर पुरांमि ।  
 प्रेम-हिं' सेवत करिक, जोग हूंम सीं हूंम जोंमि ॥ २९ ॥



जोंम-ही उबधें सचो है ई बुद्धि मरीस ।  
 'टीकनार दुल्लड मुनी ई बरजदर किम' ॥  
 ई बरजदर किम' जोग देवे' व जो लय ।  
 जो कचो बरज-मोंकि' बदे मोंके वय कय ॥  
 'अर सड़ों सिक्काका' कय-मोंकदे' व मोंकत ।  
 जोंमि मूरत है कय बयन मूरत हो जोंकत ॥ ३० ॥

ज्य गुणाक सों प्रीति कर हैम बौझों रस-रास ।  
 "नही-किमारे ककरा अब-तब होइ विवास" ॥  
 'अब-तब होइ विवास' हितै छैनं स्ते मूछै ।  
 हैम जौमठ-ही बौझिं नेह वै दुख की मूछै ॥  
 'कई सखीं सिबछाक' बार मोंहिनी-अक सों ।  
 बचन न पापी कबौ कमेक, वा गुणाक सों ॥ २१ ॥

ॐ

बिगरी हैमरी वा तबकौ छोरी प्रीति अटक ।  
 'बोबी-बेटा बौझ सी खीटी और अटक' ॥  
 सीटी और अटक' हैमरी कहर है बिंन को ।  
 बर-बर-स्पागौ कौनिगई अब कइहिं किंको ॥  
 'कई सखीं सिबछाक' बह बरबोमी सिगरी ।  
 'बौझ ताकी छै कया बोबी की विगरी' ॥ २२ ॥

ॐ

पाबौ अब सों मेंम हैम मेंम रछी न सुषाम ।  
 "अग-कगति झीपरा ओ निकसी स्ते काम" ॥  
 'ओ निकसी सो काम' हैमरें नौहिं ब हरण ।  
 बौझ अबसों मिछै कौहिं तो तुम्ह सों सिपछा ॥  
 'कई सखीं सिबछाक' हैमरें किसचै अचौ ।  
 "बोई बौझै गंग सोई हैमने कर पापौ" ॥ २३ ॥

ॐ

अचौ कगरी होइ ली ली मम पीर विराह ।  
 'धुरी पराण पैठ में मोंनीं मुम में जाह' ॥  
 'मोंनीं मुम में जाह' अगे गोवि न बौ अब-नी ।  
 करते राम-बिहाम र्यनि अब हो कई तब-नी ॥  
 'कई सखीं सिबछाक' 'भीत गो की बंनमाछी ।  
 कुबज्य सों रति आप देत सिपछा हैम अचौ ॥ २४ ॥

ॐ

हीन्हीं सोग हिमें सखि कईं जोग उपदेस ।  
 जैसे कंथा पर रहे जैसे गण्ड बिदेस ॥  
 जैसे गण्ड बिदेस' हिमारों कीनों का-री ।  
 अगरी कबों-कबों सखी हिमें ल्यों-रबों मरि मारी ॥  
 'कई सखी सिबकाक' इतौ अपराध न कीन्हीं ।  
 भिन्न तौन शीरष इंक सखी, गोविंन कौं हीन्हीं ॥ २५ ॥

कबो न, तब-ही सु किय जोग दिवा अपेसक ।  
 "भीसर-भूकी होमिनी गावै सरग-पठाक" ॥  
 'गावै सरग-पठाक' रास काई सुख क्याए ।  
 इतोकहाँ बच ल्यों सुधा-रस अपर-पिकाए ॥  
 'कई सखी सिबकाक' कीन्हीं-ही ईस सूबो ।  
 तब यदि हीन्हीं लौंस देठ सिष्य बच कबो ॥ २६ ॥

मौके कबो कईं-कौं देख्यो अपनी माग ।  
 "बरकी मारी बच गार्इ बच-ई काणी क्याय" ॥  
 'बच-ई काणी काग' कौंस-बैच छाजे सखि के ।  
 करी कौंस सौं प्रीति कबो सुकर्मक सिर बत्रि के ॥  
 'कई सखी सिबकाक' कीन्हे ठे बैर सु राके ।  
 इवें कर्मन कौं होय पुरी कबों उबकों धीने ॥ २७ ॥

कबी बस्ये रात्रि के कर्तव-महि बने ।  
 'एक कोका कास्य, हूँ नौम को' ॥  
 हूँ नौम को' बहीर को पीर कईं-री ।  
 मूखी इस-ही सखी कपट को लौंस सुगरी ॥  
 'कई सखी सिबकाक' कीन्ती हरि को सूबो ।  
 'बाहर टटिया कुनक,—गुजराती कबी' ॥ २८ ॥

ऊषी कुबजा सों करी प्रीति हूँमें दे पीठ ।  
 “मार्जेन सार्जेन हरि मिळे झूठे परे बसीठ” ॥  
 “झूठे परे बसोड छगो-री आप बाट को ।  
 ‘घोषी को कृकरा मयी माधर-हि’ भाटको” ॥  
 कहे सर्गो सिबल्लक’ कनी ऐसो बनमाळी ।  
 आप करत है भोग जोग गोंपि’न को आळी ॥ २९ ॥

७

ऊषो आगे ना हती वा सुम्बान की छोइ ।  
 ‘ज्यों-ज्यों भीजेकोमरी खों-खों मारी होइ” ॥  
 ‘खों-खों मारी होइ’ जोग बे हूँमें सिखबे ।  
 ओरेंन नूँमें सर्गुब-आप कुल्लेब-सुबकाबे ॥  
 कहे सर्गो सिबल्लक’ जौगती हरि को सुखी ।  
 कुबजा सों करि भोग देदि सिच्छा सों ऊषी ॥ ३ ॥

७

ऊषो खोंम-सुहाग की कुबजा के मिर सिद्ध ।  
 “बरकी जोगी जोगको घोंन गोंडि को सिद्ध” ॥  
 जौन गोंडि की सिद्ध’ पदको हूँमें जोग है ।  
 छखिपेँ ये सुपिबेच बाहि वामी सु भोग है ॥  
 कहे सर्गो सिबल्लक’ जौगती-ही हरि-सुधौ ।  
 सिल्लवापस जाइय मली जेरी सुभ ऊषी” ॥ ३१ ॥

चौपई

ऊषी यहाँ भोग के जपे । ज्यों-ज्योंमें में बोन बजपे” ॥  
 यही जोग बिम्परी भाई । ‘घोषी फडकेँ उब-उब जाई” ॥ ३२ ॥

८

हरे बसत ताकोँ तु अपी । जीर्जेन-गुरि दूर ले गयी ॥  
 केहु प्रीति जो हूँमेरे पाम । ‘गपेँ भ्रंङ्क का उर की आस” ॥ ३३ ॥



## अमर-गोत्र

मिस-दिन प्राण हमारे बनें। "पूटे-बासँन कम तक पुहें ॥  
इक ठीमरती काँम वियोग। ता पर कइत केपुरी जोग" ॥ ३३ ॥

हुदि कती कुबज-सी तिया। गँदिवा गँई कुँइहार म्हीतिवा" ॥  
बुधो सु-ओ करती है पैर। "अइ में बसँ मगर जो पैर" ॥ ३५ ॥

प्रीति करी हम पायी जोग। माग धापने कुबज भोग" ॥  
"करँम-हीन जव खेती करे। बैल मरे कै सूखा परै ॥ ३६ ॥  
जोने हमरी सखी बकाह। बंधो पीसै कुप्य-काह" ॥  
और कइक केहु मजवाप। बगुका-मारें बखना हाम्य" ॥ ३७ ॥

देहु जोग सिर सूक सुबारो। "बेरी करतव काठेन मारो ॥  
कधी को मठ सूपी जौनी। पा सों कपटी भीरन मान्यो ॥ ३८ ॥

बाकी ए ईन मनुर्वेन-मौहें। कोधी मरे सैगाधी चौहें ॥  
छोटे कधी बड़े तमौसै। "हाधी कटै तइ बखिया सै ॥ ३९ ॥

कधी तोपिन सों काकज। सूधी पर मिदिबेन को राज" ॥  
ईन हुननेन सों छाछी करै। "यही धार कमरा वर परै ॥ ४० ॥

"दुइका बधि भीतै संघाम। बयें तारबै तुरकैन को दौम" ॥  
जिवनें प्रेम-सुखा-वस बखना। "कथा मन बकइ बमि कक्यौ" ॥ ४१ ॥

भीच-प्रसंग जौम की भूक। लठही कुठिया मलमल सूक" ॥  
देखी वा करवा की नेक। सीन-ईहुर परवौ पुकेक" ॥ ४२ ॥

ऊषी वृ, ईम कीं बै मई। "बौस वगइ उतराई वई" ॥  
ऊषी मज कीं पैकीं वई। "नौच न जावै जीगल देही" ॥ ३३ ॥



धौंभी बात वजावै कींन। "मंस न कुरी कुरी गोन" ॥  
कींनै मंस मंस कीं छोर। "परवैन देखै रोवै खोर" ॥ ३४ ॥



"वीकीं भवनी नौहि कैंमाइ। कैंस रोप वेंह-री माई" ॥  
वईकीं ना हमरी उज-सप। "मरे संसुदर वींवा इप" ॥ ३५ ॥



ऊषी वृ, ईमरी बै मूक। "प्रीति करी, सो बुझ कौ मूक" ॥  
मज पै कींनै वगइ वई। "पौषी वनिचौ स्त्रीचौ वई" ॥ ३६ ॥



ईम कीं ऊषी वींन वतावै। "कोऊ मरै मकरै गवै" ॥  
कपटी बुझअ सोइत गइ। "गज-भर मियौ, सवा गज डाही" ॥ ३७ ॥



कींनै-मूक कींन मिहारौ। नैनन भागै उरठ व छारौ ॥  
है परी वईन के बिस्तर। "खेरिन के बेगारी मिस्तर" ॥ ३८ ॥



नैन-मूक के वींनै धरै। "वुईयो-दारे पाधर सरै" ॥  
करी प्रीति सो वींनै हैसी। ऊषा वृ, करिहै को देसी ॥ ३९ ॥



ऊषी ईमरै ना बिसवास। हूयै रिचियौ वर में वास" ॥  
बुझअ सो उज खेरी प्रीति। ऊषी यहै वईन की रीति ॥ ५ ॥



जसो होत सरिज भाग में। "हैइ वगइवैन मियौ वाग में" ॥  
जोग नहीं जो ईमरी कींन। मज में बुझौ सखेरी वींन ॥ ५१ ॥



कभी नू, हँम कौ बै मई । पाइया-मइत मेरि हँ मई" ॥  
 कुबडा करी खाँम पडरायी । प्रीति न नैकौ हँम सौं मीकी ॥ ५२ ॥

ॐ

जीव परपौ जेवकीं मनसूबा । ओगी बहँ कुबाचें लुंवा" ॥  
 कुबडा कें लु अटारी-अटा । "बहँ जेवकीं लौंके मँ अटा" ॥ ५३ ॥

ॐ

लो बाँहँ सो दासी करे । ली गुपाक नू का मव हरे ॥  
 कभी नू, कसु कइत न भावै । "वर कौ मेदी कका बावै" ॥ ५४ ॥

ॐ

होयी प्रीति चारदिँव खाँम । कभी करी हँमै बरबोम ॥  
 हाइ हँमै दे जीजाकींजी । "बलिबा घोरी, हल्य घोनी" ॥ ५५ ॥

ॐ

कभी मकी बनों वै योग । का कीं सकळ हँसत हँ योग ॥  
 खाँम करी कुबडा सौं प्रीति । "बंघौ सुस्र कदि मकीति" ॥ ५६ ॥

ॐ

होव हँमारी छती बरैज । "भूँव-मुबाइत जोरे परैज" ॥ ५७ ॥

छाया

कहाँ खाँम की बाँहँ प्रबटत कभी योग लई ।  
 हँम हँमकीं ली ब्याह "गवत गीत मसीत के" ॥ ५८ ॥

कुंभिया

बाइ कभी तुँम भळे देत जोग उपरैस ।  
 भाँवुँव मीकीं मंगले द्वार लरे दरबेस" ॥  
 "द्वार लरे दरबेस" देस भँग भूरि छमापें ।  
 मापें रानी जरा भँगोदि बसेन रँगापें ॥  
 कइ सगुँ मिवलका धरैज वै कैसी काइ ।  
 भवईव कीं हँ योग बहँ म्योकी मज ब्याइ ॥ ५९ ॥

घोरई

ऊधौ ईम देली अकयाहि। ऐछे-ओछे बरिपा याह" ॥  
 कर्म बरि गोपि" न के मीत। "होत बंजुरी खाबी सीत" ॥ ९० ॥

✽

बब काहे को दरद ईमारी। ऐली-ऐले याहर भारी" ॥  
 ईमरे एहो मोंम की मोंम। "अपेई बधि टोंदि ओई ईम" ॥ ९१ ॥

✽

बा ए पूरे बा ए बाबे। ओगी कूर मोंम ही साये ॥ ९२ ॥  
 सोरठा

हे बहीर की कति देत ईमें हरि जोग हों।  
 मीहम बई कवाठि अपें महटा बॉस की ॥ ९३ ॥

छंद बमका

ऊबी कों न बरहक करो मत करो तंग।  
 नंग के बर नंग काए पैहैर भाव शंग ॥ ९४ ॥

छोरठा

घरी जोग बकसीस ऊधौ कू, वी प्रीति फल।  
 "अमर-गीतों सीस ओईम को अय डर कर" ॥ ९५ ॥

✽

करो पैठ उपहास ऊबी सी दा पावरी।  
 "अपेई" व सुव-कपास ओरी मोंकाटी-कटा" ॥ ९६ ॥

घोरई

हरसिब देते बकी कृपाती। ऐछे पाती जरती छलते ॥  
 मीठे कर्म ओरे शिद देह। तामें बरुत कर्मोपय रीह ॥ ९७ ॥

✽

भल्ले करो ऊबी कपहेस। "ईमि एकर मे रयापी देस" ॥  
 तामें बात कदै ओरद केंस। "जाको कमी तापी मोंस" ॥ ९८ ॥

कुंडलिन्या

तुम मूर्खी पूरे बनो हों यदि म्यांने पाँव ।  
 "गुर के तुम बात करे तोर-तोरे के खान्" ॥  
 'छोर-छोर के खाठ' खाठ ई यकी खोग सों ।  
 बापुन बीचे रोग, इयापी हौम भोग सों ॥  
 'कई सर्वां सिबखाख' सर्वां के हौ तुम मूर्खी ।  
 'सूसर के बी उख बात ईममे जब मूर्खी" ॥ ६९ ॥

शौर्य

कहै काकी करती माय । बोवें कुच्छा कीचै हाय" ॥  
 कपी न, मज में फिरि भीमें । कहियो जाह तने मुक्त पामें ॥ ७० ॥  
 \*  
 मार हमारो ईन सों सूर्य । "सौप मरो का छाटी दूटे" ॥  
 कबी ईन बावैल रस पाँही । समझ केज अपने मन मूर्खी ॥ ७१ ॥  
 \*  
 मूर्खी न मूर्खी कपी मज की । कक छोटी बामिब मज की" ॥ ७२ ॥

दोहा

भापा-शक्ति-समूह की बरम्बों सिब परसाय ।  
 कपी अब गोपीन की सेकर द्विप संवाय ॥ ७३ ॥  
 \*  
 जाकों तुम रस-रस की होत बवाह प्रकास ।  
 गोविंद गोपीरैन-सहित करे करे में वास ॥ ७४ ॥  
 \*  
 अष्टारस बसु पट गिनै संवत करी विचार ।  
 मायब मुकस्य पंचमी भविति नकत गुस्वार ॥ ७५ ॥

अपार

संयत् १८८६ वि०

॥ इति भीमदासिनकृत "शक्ति-समूह" समाप्त ॥

# सचित्र, सक्षिप्त भक्त-चरित-मालाकी पुस्तकें

(सम्पादक—श्रीहनुमानप्रसादजी बोहार)

- भक्त-वासुदेव-पृष्ठ ७६, सचित्र, इसमें गेहलन्द, मोहन, पद्मा,  
कन्नदास और सुकन्धाकी कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-नागी-पृष्ठ ६८, एक तिरंग तथा पौंस छादे चित्र इसमें शकटी,  
श्रीगणेश, करमैत्रीदास, कन्नादास और रविदासी कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-पञ्चरत्न-पृष्ठ ८८, एक तिरंग तथा एक छादा चित्र इसमें  
एतनाव दामोदर, गोरास, शम्भोबा और श्रीधरदासकी  
कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-शभक्त-पृष्ठ ९८ एक रंगिन तथा स्याद छादे चित्र,  
इसमें शिवि, रतिदेव, अम्बरीश, मीमा, अर्जुन, मुद्राम्य और  
चक्रिकाकी कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-चन्द्रिका-पृष्ठ ८८, एक तिरंग चित्र, इसमें शास्त्री चक्रवर्ती,  
महाभारत भीष्मोत्तिपत्त, मत्तवर विष्णुदासकी वीनकभुदास,  
यक्त माणवदास और पद्म महासिद्धी मुन्दर कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-सप्तरत्न-पृष्ठ ८८ रचित्र इसमें दामाकी पत्त, मन्दिश  
माथी, कृष्ण कुम्हार, परमेशी दबी, खु केवर, एमदास कमार  
और लाल्नेगदी कथाएँ हैं। मूल्य १२
- भक्त-कुसुम-पृष्ठ ८४, रचित्र, इसमें जगन्नाथदास विष्णुदास,  
शास्त्रीमामदास, दक्षिणी तुलसीदास, गेहलन्ददास और  
हजिरादासकी कथाएँ हैं। मूल्य १२
- श्रेणी भक्त-पृष्ठ ८८, एक तिरंग चित्र, इसमें निखनदास, बरदेर,  
रु-कनाकन हरिदास और एतनायदासकी कथाएँ हैं। मूल्य १२

- प्राचीन भक्त-द्वय १५२, चार बहुरंगी चित्र, इसमें मयंकेश्वर, महर्षि  
 अमरक और रामा शङ्ख कण्ठ उच्छ्वस आरम्भक, पुण्डरीक,  
 जोषणक और विष्णुदास, देवमन्त्री मद्रतनु, एषापीय, राम  
 मुरय, ने मित्र मक, विचक्रेतु, इन्द्रपुर एवं वृहस्पति चन्द्रकी  
 कथाएँ हैं । मूल्य ५०
- भक्त-सौरभ-द्वय १९ एक तिरंग चित्र, इसमें श्रीमन्महादेवकी,  
 मामा श्रीप्रसादाचार्यकी, शंकर पण्डित, प्रतापराव और  
 गिरिकरकी कथाएँ हैं । मूल्य ३१
- भक्त-स्वरोज-द्वय १ ४, एक तिरंग चित्र, इसमें गङ्गाभरदास, श्रीनिवास  
 आचार्य, श्रीपट, गंगाधर मह जोडनाथ जोषणादास, मुण्डरिदास,  
 हरिदास, सुबनसिंह चौगन और अन्नवसिष्ठीकी कथाएँ हैं । मूल्य ३०
- भक्त-सुमन-द्वय ११२ दो तिरंगी तथा दो छाद चित्र इसमें विष्णु-  
 चित्र, विष्णोदासराव नामदेव, रौका-बौका, बहुरंगी, पुरन्दरदास,  
 गोपधनाथ बोय परम्यनन्द, मनकोठी दौकळ और सदन  
 कथाएँ हैं । मूल्य ३०
- भक्त-सुधाकर-द्वय १, भक्त रत्नकर, लखारकी गोवर्धन,  
 रामरति, शकु मन्त्र भण्डिकी १२ कथाएँ हैं चित्र १९, मूल्य ५
- भक्त-महिलारव-द्वय १ रानी रत्नाश्री हरदेवी, निर्मल्य  
 श्रीधरती नरम्यती भण्डिकी ९ कथाएँ हैं चित्र ७, मूल्य ४५
- भक्त-दियाकर-द्वय १, भक्त तुम्ह, वंशानन्द पद्मानाथ, किरण  
 और नन्दी बेस्य भण्डिकी ८ कथाएँ हैं, चित्र ८ मूल्य ४५
- भक्त-रत्नाकर-द्वय १, भक्त माधवदासकी भक्त विमलश्रीके मने  
 मन्त्रक मन्त्रान्त भण्डिकी १४ कथाएँ हैं चित्र ८ मूल्य ४५  
 के लुटे-दाकड, श्री-गुरद-सपडे फने बोण्य बनी सुन्दर और  
 निहामर पुनर्के हैं । एक-एक प्रति बचइय फस रजने बोण्य है ।

